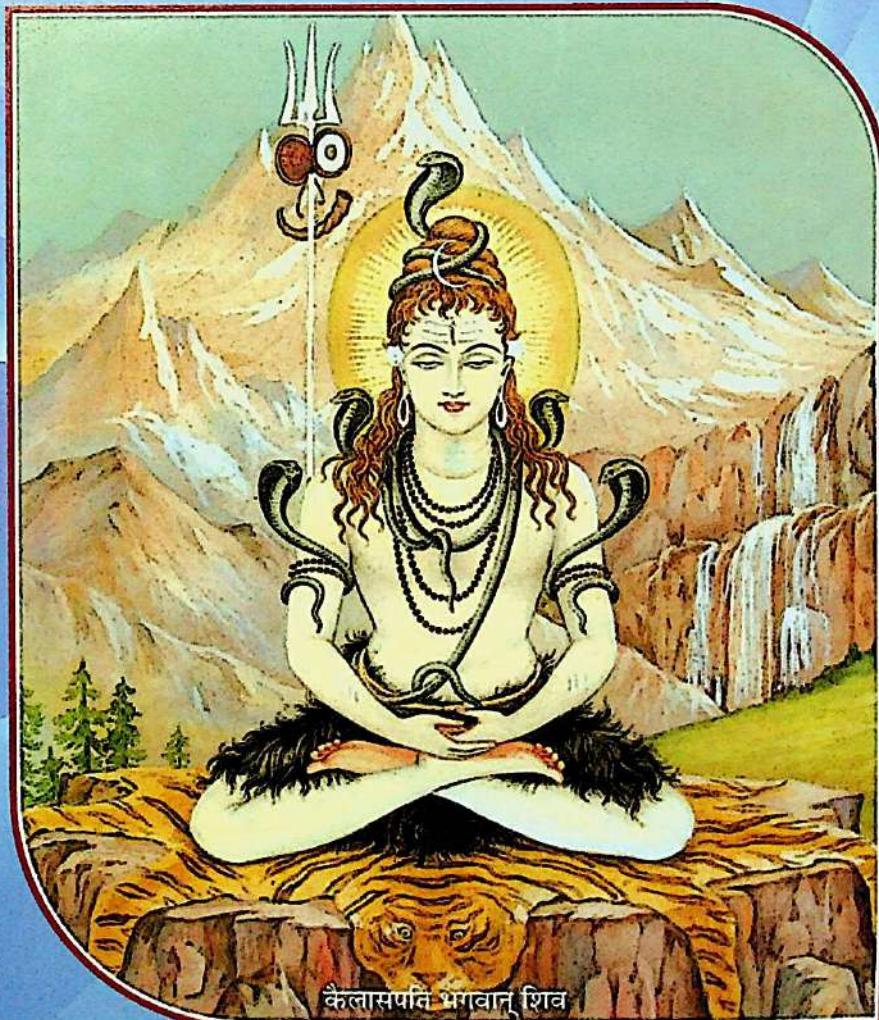


* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

पृष्ठा २५०



कैलासपति भगवान् शिव

वर्ष
१२

श्रीशिवमहापुराणाङ्क

[हिन्दी भाषानुवाद — उत्तरार्ध, श्लोकाङ्कसहित]

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
१



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server

विनाश निवेदन

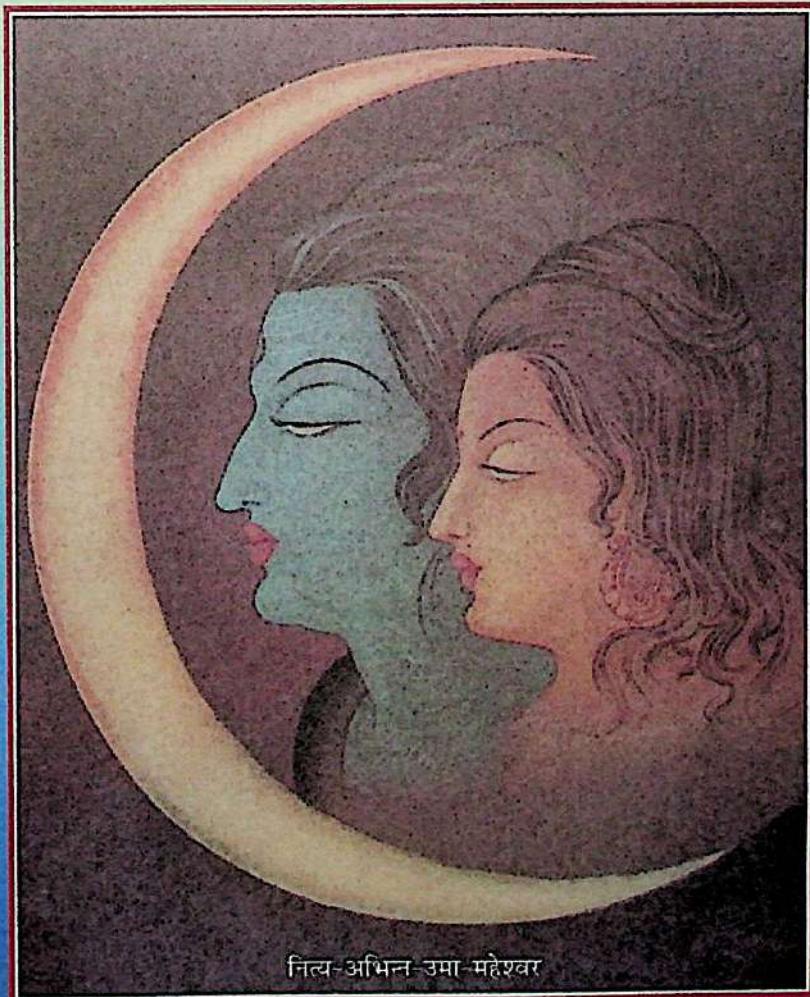
पिछले वर्ष 'श्रीशिवमहापुराणाङ्क'- पूर्वार्ध (प्रथम खण्ड) विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। इस वर्ष 'श्रीशिवमहापुराणाङ्क' का उत्तरार्ध (द्वितीय खण्ड) प्रकाशित किया गया है। नये सदस्योंको भी सम्पूर्ण 'श्रीशिवमहापुराणाङ्क' उपलब्ध करानेके लिये पिछले वर्षका केवल विशेषाङ्क उपलब्ध करानेकी योजना है। प्रथम खण्ड (केवल विशेषाङ्क) मूल्य ₹ १४०, डाक खर्च ₹ ३५/- अतिरिक्त।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर



*ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण



नित्य-अभिन्न-उमा-महेश्वर

वर्ष
१२

श्रीशिवमहापुराणाङ्क

संख्या
१

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
 उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
 साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
 हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
 हरे राम हरे राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
 जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥

जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥

जय रघुनन्दन जय सियाराम। द्रव्ज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥

रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,००,०००)

परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर शिव

प्रणवार्थः शिवः साक्षात्प्राधान्येन प्रकीर्तिः। श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च॥
 यतो वाचो निवर्तने अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं यस्य वै विद्वान् बिभेति कुतश्चन॥
 यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्णवन्द्रपूर्वकम्। सह भूतेन्द्रियग्रामैः प्रथमं सम्प्रसूयते॥
 न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन। यस्मिन्न भासते विद्युन् च सूर्यो न चन्द्रमाः॥
 यस्य भासा विभातीदं जगत्सर्वं समन्ततः। सर्वेश्वर्येण सम्पन्नो नामा सर्वेश्वरः स्वयम्॥

[भगवान् स्कन्द कहते हैं—हे मुनीश्वर वामदेव !] प्रणवके अर्थ साक्षात् शिव ही हैं। श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणों, तथा आगमोंमें प्रधानतया उन्हींको प्रणवका वाच्यार्थ बताया गया है। जहाँसे मनसहित बाणी आदि सभी इन्द्रियों उस परमेश्वरको न पाकर लौट आती हैं, जिसके आनन्दका अनुभव करनेवाला पुरुष किसीसे डरता नहीं, ब्रह्म-विष्णु तथा इन्द्रसहित यह सम्पूर्ण जगत् भूतों और इन्द्रिय-समुदायके साथ सर्वप्रथम जिससे प्रकट होता है, जो परमात्मा स्वयं किसीसे और कभी भी उत्पन्न नहीं होता, जिसके निकट विद्युत्, सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश काम नहीं देता तथा जिसके प्रकाशसे ही यह सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे प्रकाशित होता है, वह परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं ही सर्वेश्वर 'शिव' नाम धारण करता है। [श्रीशिवमहापुराण, कैलाससंहिता]

* कृपया नियम अनियम पृष्ठपर देखें।

एकवर्षीय शुल्क
₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय॥
 जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अरिजलालन् जय जय॥
 जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क
₹ १२५०

| | | |
|-------------------|-------------------------------|----------------------|
| विदेशमें Air Mail | वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000) | Us Cheque Collection |
| शुल्क | पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15,000) | Charges 65 Extra |

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोवन्दका

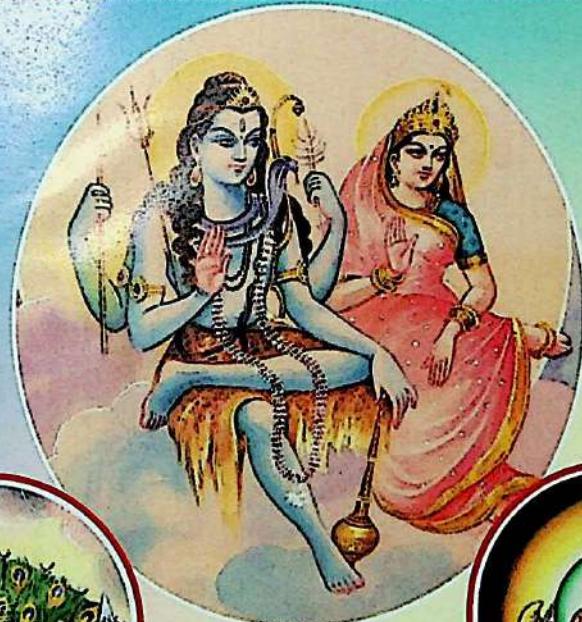
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी घोड़ार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लकड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | 09235400242/244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२९३००५, गोरखपुर को भेजें।
 Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु gitapress.org पर .Online Magazine Subscription option को click करें।
 अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।



ॐ



नमः शिवाय



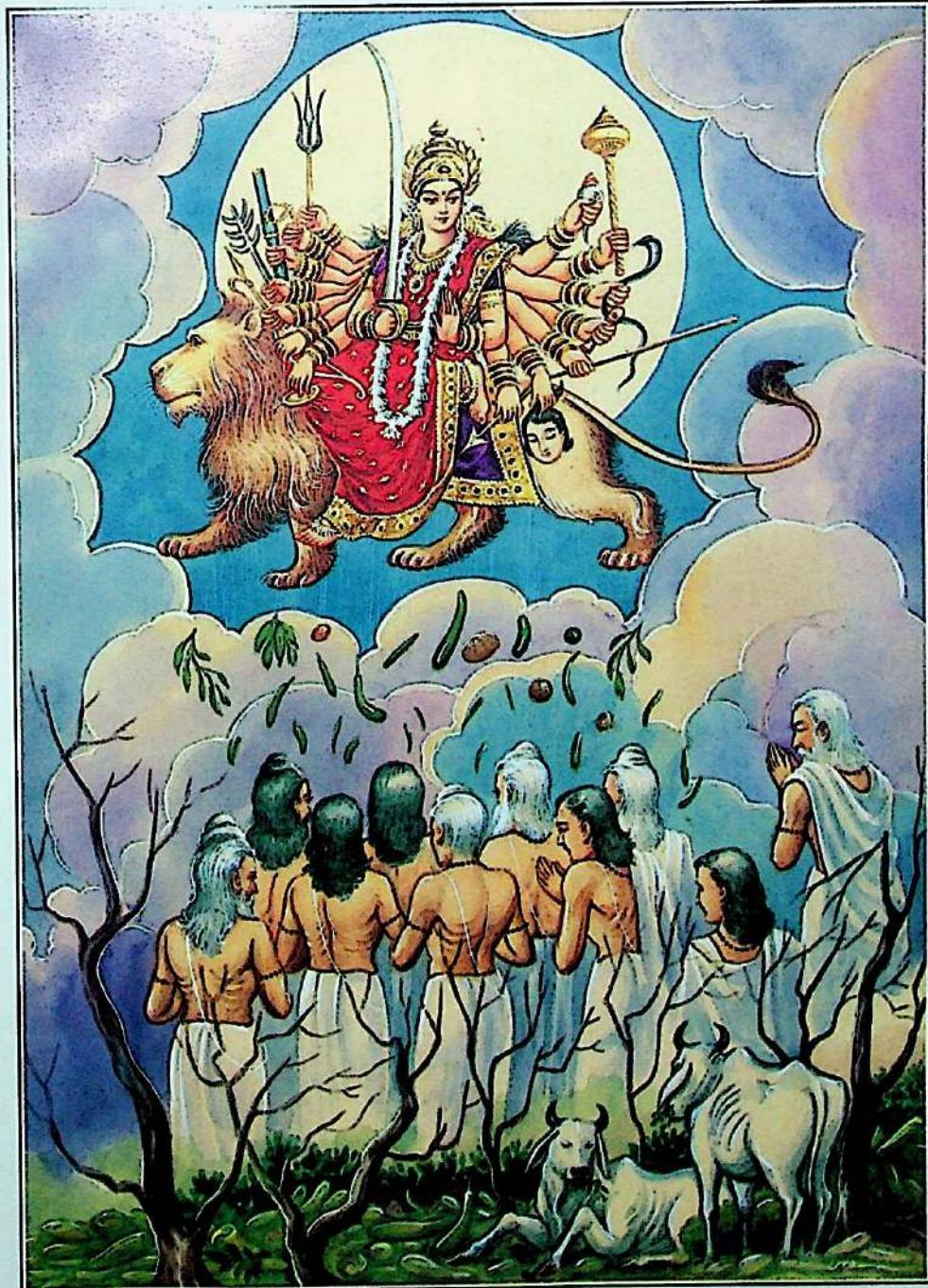
ॐ नमः शिवाय



भगवान् सदाशिवद्वारा विष्णुजीको चक्र प्रदान

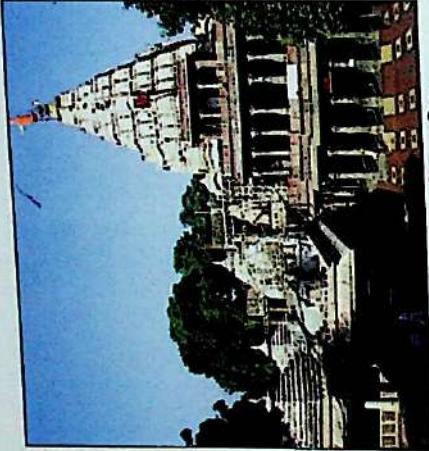
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

em Discord Server https://dsc.gg/dharma_1 | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh



भगवती शाकम्भरी देवी

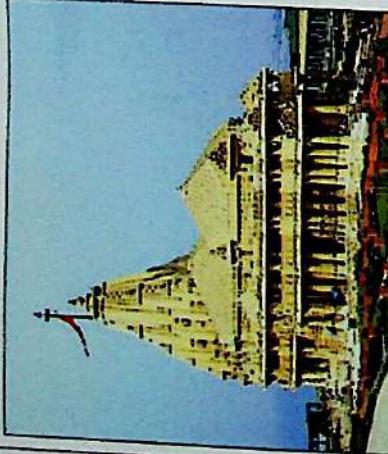
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग — १



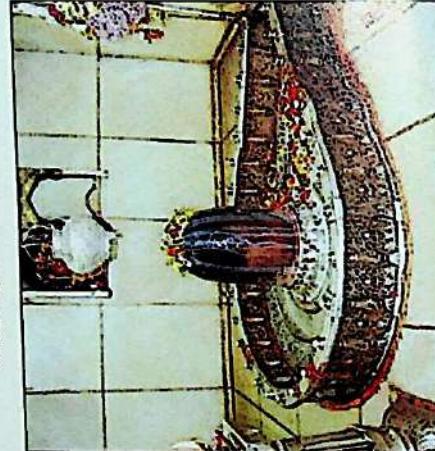
श्री पर्वती कालेश्वर का वर्तमान मन्दिर



श्री पर्वती कालेश्वर का वर्तमान मन्दिर



श्री पर्वती कालेश्वर का वर्तमान मन्दिर



श्री पर्वती कालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (म०३०)



श्री पर्वती कालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (आ०३०)

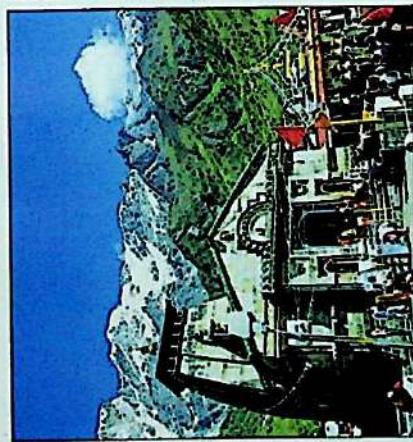


श्री पर्वती कालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (गुजरात)

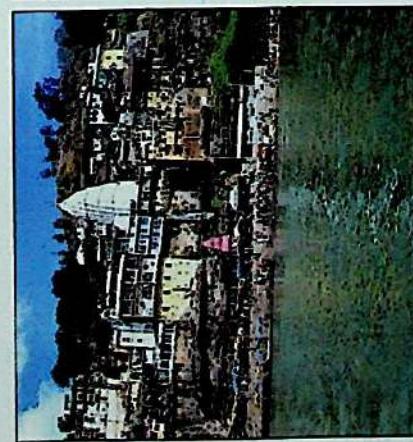
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग—२



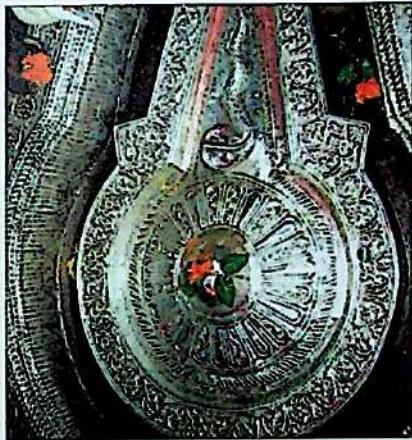
श्रीपर्वतीश्वरका वर्तमान मन्दिर



श्रीकंकलिनीश्वरका वर्तमान मन्दिर



श्रीअंगरेश्वरका वर्तमान मन्दिर



श्रीपर्वतीश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (महाबाले)



श्रीकंकलिनीश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (उत्ताखण्ड)



श्रीअंगरेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (मयूर)

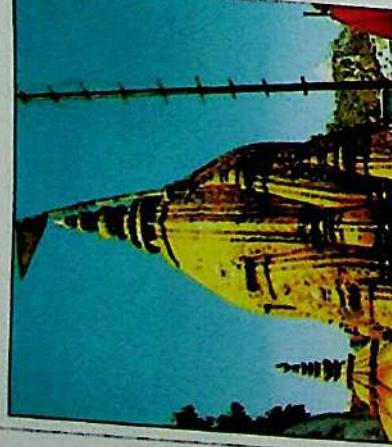
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग — ३



श्रीवैद्यनाथका वर्तमान भवित्व



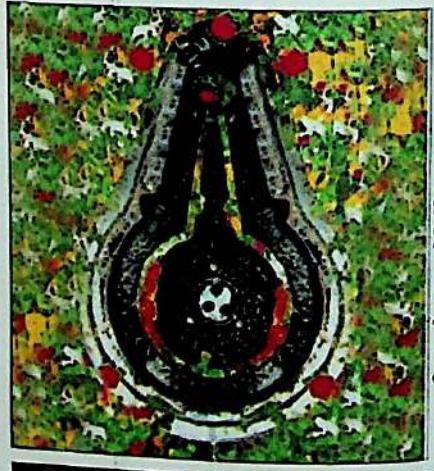
श्रीश्रावकेश्वरका वर्तमान भवित्व



श्रीश्रावकेश्वरका वर्तमान भवित्व



श्रीवैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग (आरखण्ड)

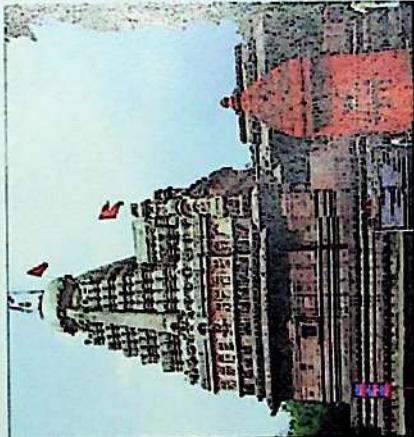


श्रीश्रावकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (महाराष्ट्र)

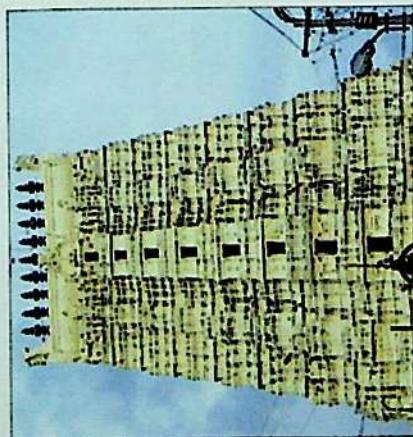


श्रीश्रावकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (उत्तरप्रदेश)

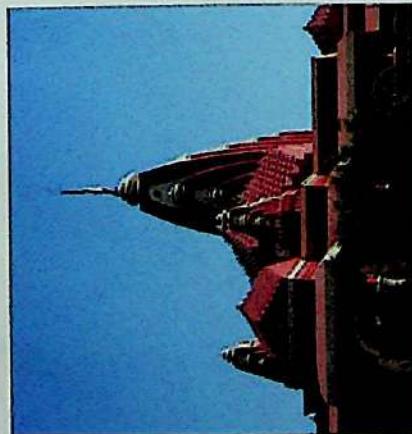
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग—४



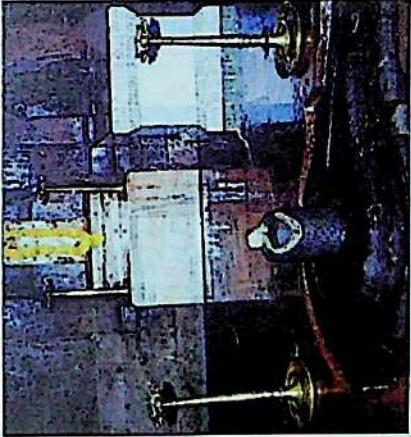
श्रीरुद्रमेश्वरका वर्तमान मान्दिर



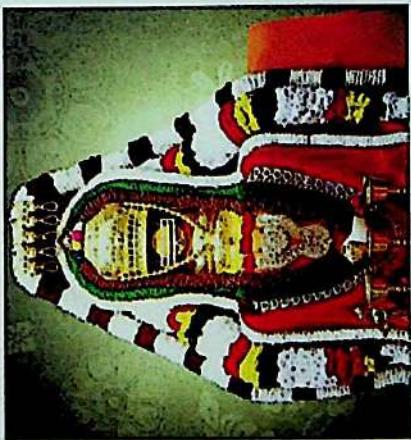
श्रीरत्नगिरीश्वरका वर्तमान मान्दिर



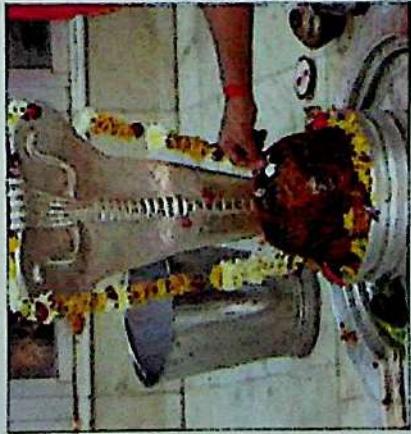
श्रीनागेश्वरका वर्तमान मान्दिर



श्रीचौसठ योगिनीहु (श्रवणबाबु)



श्रीपार्वतीश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (तपेश्वराचु)



श्रीनागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (गुजला)



देवताओंद्वारा श्रीदुर्गाजीकी सहित

३५ पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

बन्दे बन्दनतुष्टमानसमितिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।

सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुद्वाहनुं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष
१२

(गोरखपुर, सौर माथ, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, जनवरी २०१८ ई०)

संख्या
१

पूर्ण संख्या १०१४

देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी श्रीदुर्गाकी स्तुति

जय दुर्गे महेशानि जयात्मीश्वरनप्रिये । ब्रैलोव्यत्राकारिणी शिवायै ते नमो नमः ॥
नमो मुक्तिप्रदायिन्द्रै पराम्बायै नमो नमः । नमः समस्तसंसारोत्पत्तिस्थित्यनकारिके ॥***
नमस्त्रिपुरसुन्दरै मातझर्यै ते नमो नमः । अजितायै नमस्तुर्यं विजयायै नमो नमः ॥
जयायै मङ्गलायै ते विलासिन्दै नमो नमः । दोषधीरूपे नमस्तुर्यं नमो घोराकृतेऽप्तु ते ॥
नमोऽपराजिताकारे नित्याकारे नमो नमः । शरणागतपालिन्दै ठड्राण्यै ते नमो नमः ॥
नमो वेदानवेद्यायै नमस्ते परमात्मने । अनन्तकोटिब्रह्माण्डनविद्यकायै नमो नमः ॥

देवता बोले—महेश्वरि दुर्गे ! आपकी जय हो । आपने भक्तजनों का प्रिय करनेवाली देवि ! आपकी जय हो । आप तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाली शिवा हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । आप ही मोक्ष प्रदान करनेवाली परा अम्बा हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । आप समस्त संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली हैं । आपको नमस्कार है । *** आप ही त्रिपुरसुन्दरी और मातंगी हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । अजिता, विजया, जया, मंगला और विलासिनी रूपोंमें आपको नमस्कार है । दोषधी (माता अथवा कामधेन) -रूपमें आपको नमस्कार है । घोर आकार धारण करनेवाली आपको नमस्कार है । अपराजितारूपमें आपको प्रणाम है । नित्या महाविद्याके रूपमें आपको बारम्बार नमस्कार है । आप ही शरणागतोंका पालन करनेवाली रुद्राणी हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । वेदान्तके द्वारा आपके ही स्वरूपका बोध होता है । आपको नमस्कार है । आप परमात्मा हैं । आपको मेरा प्रणाम है । अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संचालन करनेवाली आप जगदम्बाको बारम्बार नमस्कार है । [श्रीशिवमहापुराण, उपासनहिता]

‘कल्याण’ के सम्मान्य सदस्योंसे नम्र निवेदन

१-‘कल्याण’ के १२वें वर्ष—सन् २०१८ का यह विशेषाङ्क—‘श्रीशिवमहापुराणाङ्क’—हिन्दी भाषानुवाद, श्लोकाङ्कसहित-उत्तरार्थ आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ६०८ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) उचित व्यवस्थाके लिये यहाँ भेज देना चाहिये अथवा उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा नोट कर लें। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है।

४-कल्याणके मासिक अङ्क साप्ताह्य डाकसे भेजे जाते हैं। अब कल्याणके मासिक अङ्क निःशुल्क पढ़नेके लिये kalyan-gltapress.org पर उपलब्ध हैं।

५-‘कल्याण’ एवं ‘गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग’ की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—‘कल्याण’-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

‘कल्याण’ के उपलब्ध पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

| कोड | विशेषाङ्क | मूल रु | कोड | विशेषाङ्क | मूल रु | कोड | विशेषाङ्क | मूल रु |
|------|---------------------------|--------|------|------------------------------|--------|------|--------------------------------|--------|
| 41 | शक्ति-अङ्क | २०० | 574 | संक्षिप्त योगवासिष्ठ | १८० | 586 | शिवोपासनाङ्क | १५० |
| 616 | योगाङ्क-परिशिष्टसहित | २०० | 1133 | सं० श्रीमहेश्वीभागवत | २६५ | 653 | गोसेवा-अङ्क | १३० |
| 627 | संत-अङ्क | २३० | 789 | सं० शिवपुराण | २०० | 1131 | कूर्मपुराण—सानुवाद | १४० |
| 604 | साधनाङ्क | २५० | 631 | सं० ब्रह्मवैतरंपुराण | २०० | 1044 | वेद-कथाङ्क-परिशिष्टसहित | १७५ |
| 1773 | गो-अङ्क | ११० | 572 | परलोक-पुनर्जन्माङ्क | २२० | 1980 | ज्योतिषतत्त्वाङ्क | १३० |
| 44 | संक्षिप्त यच्चपुराण | २५० | 517 | गर्भ-संहिता | १५० | 2066 | श्रीभक्तमाल | २३० |
| 539 | संक्षिप्त यार्कण्डेयपुराण | १०० | 1113 | नरसिंहपुराणम्-सानुवाद | १०० | 1189 | सं० गुरुडपुराण | १७५ |
| 1111 | संक्षिप्त यामापुराण | १२० | 1362 | अग्निपुराण | २०० | 1985 | लिङ्गमहापुराण-सटीक | २२० |
| 43 | जारी-अङ्क | २४० | | (मूल संस्करका हिन्दी-अनुवाद) | | 1592 | आरोग्य-अङ्क | |
| 659 | उपनिषद-अङ्क | २०० | 1432 | यामनपुराण—सानुवाद | १२५ | | (परिवर्तित संस्करण) | २२५ |
| 518 | हिन्दू-संस्कृति-अङ्क | २५० | 557 | मर्त्यवधापुराण-सानुवाद | २७० | 1610 | (महाभागवत) देवीपुराण | |
| 279 | सं० स्कन्दपुराण | ३२५ | 657 | श्रीगणेश-अङ्क | १७० | | सानुवाद | १२० |
| 40 | भक्त-चरिताङ्क | २३० | 42 | हनुमान-अङ्क-परिशिष्टसहित | १५० | 1793 | श्रीमहेश्वीभागवताङ्क-पूर्वार्ध | १०० |
| 1183 | सं० नारदपुराण | २०० | 1361 | सं० श्रीवाराहपुराण | १२० | 1842 | श्रीमहेश्वीभागवताङ्क-उत्तरार्ध | १०० |
| 587 | सत्कथा-अङ्क | २०० | 791 | सूर्याङ्क | १३० | 1875 | सेवा-अङ्क | १३० |
| 636 | तीर्थाङ्क | २०० | 584 | सं० भविष्यपुराण | १८० | 2035 | गङ्गा-अङ्क | १३० |

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय ₹ ३० अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-विक्री-विभागसे प्राप्त हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

श्रीहरि:

‘श्रीशिवमहापुराणाङ्क’ की विषय-सूची

स्तुति-प्रार्थना

| | | | | | |
|----|--|----|----|--|----|
| १- | देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी श्रीदुर्गाकी स्तुति | ११ | ५- | श्रीशिवमहापुराणसूक्तिसुधा | २३ |
| २- | अभिलाषाषट्क | २१ | ६- | श्रीशिवमहापुराण [उत्तरार्ध]—एक सिंहाखलोकन (राधेश्याम खेमका) | २५ |
| ३- | ‘ब्रजामि शरणं शिवम्’ | २२ | | | |

| अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या |
|--------|------|--------------|--------|------|--------------|
|--------|------|--------------|--------|------|--------------|

शतरुद्रसंहिता

| | | | | | |
|-----|---|-----|-----|---|-----|
| १. | सूतजीसे शौनकगदि मुनियोंका शिवावतारवियथक प्रश्न | ६३ | १९. | शिवजीके दुर्वासावतारकी कथा | १०३ |
| २. | भगवान् शिवकी अष्टपूर्णियोंका वर्णन | ६४ | २०. | शिवजीका हनुमानके रूपमें अवतार तथा उनके चरितका वर्णन | १०६ |
| ३. | भगवान् शिवका अर्धनारीश्वर-अवतार एवं सतीका प्रादुर्भाव | ६६ | २१. | शिवजीके महेश्वरावतार-वर्णनक्रममें अधिकाके शापसे भैरवका चेतालरूपमें पृथ्वीपर अवतरित होना | १०८ |
| ४. | वाराहकल्पके प्रथमसे नवम द्वापरतक हुए व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन | ६८ | २२. | शिवके वृपेश्वरावतार-वर्णनके प्रसंगमें समुद्र-मन्थनकी कथा | १०९ |
| ५. | वाराहकल्पके दसवेंसे अद्वैतसेवे द्वापरतक होनेवाले व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन | ६९ | २३. | विष्णुद्वारा भगवान् शिवके वृपभेश्वरावतारका स्तवन | १११ |
| ६. | नन्दीश्वरवतारवर्णन | ७२ | २४. | भगवान् शिवके पिप्लादावतारका वर्णन | ११३ |
| ७. | नन्दिकेश्वरका गणेश्वराधिपति पदपर अभिषेक एवं विवाह | ७४ | २५. | राजा अनरण्यकी पुत्री पद्माके साथ पिप्लादका विवाह एवं उनके वैवाहिक जीवनका वर्णन ... | ११६ |
| ८. | भैरवावतारवर्णन | ७७ | २६. | शिवके वैश्यनाथ नामक अवतारका वर्णन | ११७ |
| ९. | भैरवावतारलीलावर्णन | ८० | २७. | भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारका वर्णन | १२० |
| १०. | नृसिंहचरित्रवर्णन | ८३ | २८. | नल एवं दमयन्तीके पूर्वजन्मकी कथा तथा शिवावतार यतीश्वरका हंसरूप धारण करना ... | १२३ |
| ११. | भगवान् नृसिंह और वीरभद्रका संचाद | ८५ | २९. | भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारकी कथा | १२५ |
| १२. | भगवान् शिवका शरभावतार-धारण | ८८ | ३०. | भगवान् शिवके अवधूतेश्वरवतारका वर्णन | १२७ |
| १३. | भगवान् शंकरके गृहपति-अवतारकी कथा | ९० | ३१. | शिवजीके भिक्षुवर्यावतारका वर्णन | १२९ |
| १४. | विश्वानरके पुत्ररूपमें गृहपति नामसे शिवका प्रादुर्भाव | ९३ | ३२. | उपमन्युपर अनुग्रह करनेके लिये शिवके सुरेश्वरवतारका वर्णन | १३३ |
| १५. | भगवान् शिवके गृहपति नामक आग्नीश्वरलिंगका माहात्म्य | ९५ | ३३. | पार्वतीके मनोभावकी परीक्षा लेनेवाले ग्रहचारी-स्वरूप शिवावतारका वर्णन | १३६ |
| १६. | यक्षेश्वरवतारका वर्णन | ९८ | ३४. | भगवान् शिवके सुनर्तक नटवतारका वर्णन | १३९ |
| १७. | भगवान् शिवके महाकाल आदि प्रमुख दस अवतारोंका वर्णन | १०० | | | |
| १८. | शिवजीके एकादश रुद्रावतारोंका वर्णन | १०१ | | | |

| अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या |
|--------|---|--------------|--------|---|--------------|
| ३५. | परमात्मा शिवके ह्रिजावतारका वर्णन | १४१ | ३९. | मूक नामक दैत्यके वधका वर्णन | १५० |
| ३६. | अश्वत्थामाके रूपमें शिवके अवतारका वर्णन .. | १४२ | ४०. | भीलस्वरूप गणेश्वर एवं तपस्वी अर्जुनका संवाद | १५३ |
| ३७. | व्यासजीका पाण्डवोंको सान्त्वना देकर अर्जुनको इन्द्रकील पर्वतपर तपस्या करने भेजना..... | १४४ | ४१. | भगवान् शिवके किरातेश्वरावतारका वर्णन | १५५ |
| ३८. | इन्द्रका अर्जुनको वरदान देकर शिवपूजनका उपदेश देना..... | १४७ | ४२. | भगवान् शिवके द्वादश ज्योतिलिंगरूप अवतारोंका वर्णन | १५८ |

कोटिरुद्रसंहिता

| | | | | | |
|-----|--|-----|-----|--|-----|
| १. | द्वादश ज्योतिलिंगों एवं उनके उपलिंगोंके माहात्म्यका वर्णन | १६१ | १८. | ओंकोरेश्वर ज्योतिलिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन | १९५ |
| २. | काशीस्थित तथा पूर्व दिशामें प्रकटित विशेष एवं सामान्य लिंगोंका वर्णन | १६३ | १९. | केदारेश्वर ज्योतिलिंगके प्राकट्य एवं माहात्म्यका वर्णन | १९६ |
| ३. | अत्रीश्वरलिंगके प्राकट्यके प्रसंगमें अनसूया तथा अत्रिकी तपस्याका वर्णन | १६४ | २०. | भीमशंकर ज्योतिलिंगके माहात्म्य-वर्णन-प्रसंगमें भीमासुके उपद्रवका वर्णन | १९८ |
| ४. | अनसूयाके गात्रित्रके प्रभावसे गंगाका प्राकट्य तथा अत्रीश्वरमाहात्म्यका वर्णन | १६६ | २१. | भीमशंकर ज्योतिलिंगकी उत्पत्ति तथा उसके माहात्म्यका वर्णन | २०० |
| ५. | खेलनदीके तप्तपर स्थित विविध शिवलिंग-माहात्म्य-वर्णनके क्रममें ह्रिजावतीका वृत्तान्त | १६८ | २२. | परब्रह्म परमात्माका शिव-शक्तिरूपमें प्राकट्य, पंचक्रोशात्मिका काशीका अवतरण, शिवद्वारा अविमुक्त लिंगकी स्थापना, काशीकी महिमा तथा काशीमें रुद्रके आगमनका वर्णन | २०३ |
| ६. | नर्मदा एवं नन्दिकेश्वरके माहात्म्य-कथनके प्रसंगमें ब्राह्मणीकी स्वर्णप्राप्तिका वर्णन | १७० | २३. | काशीविश्वेश्वर ज्योतिलिंगके माहात्म्यके प्रसंगमें काशीमें मुक्तिक्रमका वर्णन | २०५ |
| ७. | नन्दिकेश्वरलिंगका माहात्म्य-वर्णन | १७२ | २४. | त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिलिंगके माहात्म्य-प्रसंगमें गौतम-ऋषिकी परोपकारी प्रवृत्तिका वर्णन | २०७ |
| ८. | पश्चिम दिशाके शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें महाबलेश्वरलिंगका माहात्म्य-कथन | १७४ | २५. | मुनियोंका महर्षि गौतमके प्रति कपटपूर्ण व्यवहार | २०९ |
| ९. | संयोगवश हुए शिवपूजनसे चाण्डालीकी सद्गतिका वर्णन | १७६ | २६. | त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिलिंग तथा गौतमी गंगाके प्रादुर्भावका आख्यान | २११ |
| १०. | महाबलेश्वर शिवलिंगके माहात्म्य-वर्णन-प्रसंगमें राजा मित्रसहकी कथा | १७७ | २७. | गौतमी गंगा एवं त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिलिंगका माहात्म्यवर्णन | २१४ |
| ११. | उत्तरदिशामें विद्यमान शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें चन्द्रमाल एवं पशुपतिनाथलिंगका माहात्म्य-वर्णन .. | १७९ | २८. | वैद्यनाथेश्वर ज्योतिलिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन | २१६ |
| १२. | हाटकेश्वरलिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन | १८० | २९. | दारुकावनमें राक्षसोंके उपद्रव एवं सुप्रिय वैश्यकी शिवभक्तिका वर्णन | २१९ |
| १३. | अन्धकेश्वरलिंगकी महिमा एवं बटुककी उत्पत्तिका वर्णन | १८३ | ३०. | नागेश्वर ज्योतिलिंगकी उत्पत्ति एवं उसके माहात्म्यका वर्णन | २२१ |
| १४. | सोमनाथ ज्योतिलिंगकी उत्पत्तिका वृत्तान्त | १८६ | ३१. | एमेश्वर नामक ज्योतिलिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन | २२३ |
| १५. | मल्लिकार्जुन ज्योतिलिंगकी उत्पत्ति-कथा | १८८ | | | |
| १६. | महाकालेश्वर ज्योतिलिंगके प्राकट्यका वर्णन | १८९ | | | |
| १७. | महाकाल ज्योतिलिंगके माहात्म्य-वर्णनके क्रममें राजा चन्द्रसेन तथा श्रीकर गोपका वृत्तान्त | १९२ | | | |

| अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या |
|--------|--|--------------|--------|---|--------------|
| ३२. | घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यमें सुदेहा ब्राह्मणी एवं सुधर्मा ब्राह्मणका चरित-वर्णन..... | २२५ | १९. | वैशिष्ट्य | २४९ |
| ३३. | घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग एवं शिवालयके नामकरणका आख्यान | २२७ | ३१. | शिवरात्रिव्रतकी उद्यापन-विधिका वर्णन | २५३ |
| ३४. | हरीश्वरलिंगका माहात्म्य और भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्र प्राप्त करनेकी कथा..... | २३० | ४०. | शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यके प्रसंगमें व्याध एवं मृगपरिवारकी कथा तथा व्याधेश्वरलिंगका माहात्म्य | २५४ |
| ३५. | विष्णुप्रोत शिवसहस्रनामस्तोत्र | २३१ | ४१. | ब्रह्म एवं मोक्षका निरूपण | २५८ |
| ३६. | शिवसहस्रनामस्तोत्रकी फल-श्रुति | २४५ | ४२. | भगवान् शिवके संगुण और निर्णय स्वरूपका वर्णन | २६० |
| ३७. | शिवकी पूजा करनेवाले विविध देवताओं, ऋषियों एवं राजाओंका वर्णन | २४७ | ४३. | ज्ञानका निरूपण तथा शिवपुण्ड्रकी कोटिल्लसंहिताके श्रवणादिका माहात्म्य | २६१ |
| ३८. | भगवान् शिवके विविध ग्रन्थोंमें शिवरात्रिव्रतका | | ४४. | महातेव-महिमा | २६४ |

उमासंहिता

| | | | | |
|-----|---|-----|--|-----|
| १. | पुत्रप्राप्तिके लिये कैलासपर गये हुए श्रीकृष्णका उपमन्युसे संवाद | २६५ | आदि लोकोंका वर्णन | ३०३ |
| २. | श्रीकृष्णके प्रति उपमन्युका शिवभक्तिका उपदेश.... | २६८ | २०. तपस्यासे शिवलोककी प्राप्ति, सात्त्विक आदि तपस्याके भेद, मानवजन्मकी प्रशस्तिका कथन.... | ३०५ |
| ३. | श्रीकृष्णकी तपस्या तथा शिव-पार्वतीसे वरदानकी प्राप्ति, अन्य शिवभक्तोंका वर्णन | २७० | २१. कर्मानुसार जन्मका वर्णनकर शत्रियके लिये संग्रामके फलका निरूपण | ३०७ |
| ४. | शिवकी मायाका प्रभाव | २७३ | २२. देहकी उत्पत्तिका वर्णन | ३०९ |
| ५. | महापातकोंका वर्णन | २७५ | २३. शरीरकी अपवित्रता तथा उसके बालादि अवस्थाओंमें प्राप्त होनेवाले दुःखोंका वर्णन | ३११ |
| ६. | यापभेदनिरूपण | २७७ | २४. नारदके प्रति पंचबूडा अप्सराके द्वारा स्त्रीके स्वभावका वर्णन | ३१४ |
| ७. | यमलोकका मार्य एवं यमदूतोंके स्वरूपका वर्णन | २७९ | २५. मृत्युकाल निकट आनेके लक्षण | ३१५ |
| ८. | नरक-भेद-निरूपण | २८२ | २६. योगियोंद्वारा कालकी यतिको टालनेका वर्णन ... | ३१९ |
| ९. | नरककी यातनाओंका वर्णन | २८३ | २७. अमरत्व प्राप्त करनेकी चार यौगिक साधनाएँ.... | ३२१ |
| १०. | नरकविशेषमें दुःखवर्णन | २८५ | २८. छायापुरुषके दर्शनका वर्णन | ३२३ |
| ११. | दानके प्रभावसे यमपुरुके दुःखका अभाव तथा अनन्दानका विशेष माहात्म्यवर्णन | २८७ | २९. ब्रह्माकी आदिसूचिका वर्णन | ३२५ |
| १२. | जलदान, सत्यभाषण और तपकी महिमा..... | २९० | ३०. द्रव्याद्वारा स्वायम्भूत मनु आदिकी सूचिका वर्णन | ३२६ |
| १३. | पुराणमाहात्म्यनिरूपण | २९२ | ३१. दैत्य, गन्धर्व, सर्प एवं राक्षसोंकी सूचिका वर्णन तथा दक्षद्वारा नारदके शाप-वृत्तान्तका कथन.... | ३२८ |
| १४. | दानमाहात्म्य तथा दानके भेदका वर्णन..... | २९४ | ३२. कश्यपकी पलियोंकी सन्तानोंके नामका वर्णन..... | ३३० |
| १५. | ब्रह्माण्डदानकी महिमाके प्रसंगमें पाताललोकका निरूपण | २९५ | ३३. मरुतोंकी उत्पत्ति, भूतसर्गका कथन तथा उनके राजाओंकी निर्धारण | ३३१ |
| १६. | विभिन्न पापकोंसे प्राप्त होनेवाले नरकोंका वर्णन और शिव-नाम-स्मरणकी महिमा | २१७ | ३४. चतुर्दश मन्वन्तरोंका वर्णन | ३३३ |
| १७. | ब्रह्माण्डके वर्णन-प्रसंगमें जम्बूद्वीपका निरूपण.. | २१८ | ३५. विवस्वान् एवं संज्ञाका वृत्तान्तवर्णनपूर्वक अस्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका वर्णन..... | ३३५ |
| १८. | भारतवर्ष तथा प्लक्ष आदि छ: द्वीपोंका वर्णन..... | ३०० | | |
| १९. | सूर्योदि ग्रहोंकी स्थितिका निरूपण करके जन | | | |

| अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या |
|--------|---|--------------|--------|---|--------------|
| ३६. | वैवस्वतमनुके नी पुत्रोंके वंशका वर्णन | ३३७ | ४५. | भगवती जगदम्बाके चरितवर्णनक्रममें सुरथराज एवं समाधि वैश्यका वृत्तान्त तथा मधु-कैटधके वधका वर्णन | ३५८ |
| ३७. | इश्वाकु आदि मनुवंशीय राजाओंका वर्णन | ३४० | ४६. | महिषासुरके अत्याचारसे पीड़ित ब्रह्मादि देवोंकी प्रार्थनासे प्रादुर्भूत महालक्ष्मीद्वारा महिषासुरका वध | ३६२ |
| ३८. | सत्यनान्त-त्रिशंकु-सगर आदिके जन्मके निरूपण- पूर्वक उनके चरित्रका वर्णन | ३४२ | ४७. | शूष्म-निशुम्भसे पीड़ित देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा धूमलोचन, चण्ड-मुण्ड आदि असुरोंका वध | ३६४ |
| ३९. | सगरकी देवों पत्नियोंके वंशविस्तारवर्णन- पूर्वक वैवस्वतवंशमें उत्पन्न राजाओंका वर्णन | ३४४ | ४८. | सरस्वतीदेवीके द्वारा सेनासंहित शुभ-निशुम्भका वध | ३६७ |
| ४०. | पितृशाङ्का प्रभाव-वर्णन | ३४६ | ४९. | भगवती उमाके प्रादुर्भावका वर्णन | ३७० |
| ४१. | पितरोंकी महिमाके वर्णनक्रममें सज्ज व्याधोंके आल्यानका प्रारम्भ | ३४८ | ५०. | दस महाविद्याओंकी उत्पत्ति तथा देवीके दुर्गा, शताक्षी, शाकम्भरी और भ्रामरी आदि नामोंके पद्धनेका कारण | ३७२ |
| ४२. | 'सत्त व्याध' सम्बन्धी श्लोक सुनकर राजा ब्रह्मदत्त और उनके मन्त्रियोंको पूर्वजन्मका स्मरण होना . और योगका आश्रय लेकर उनका मुक्त होना | ३५१ | ५१. | भगवतीके मन्दिरनिर्माण, प्रतिमास्थापन तथा पूजनका माहात्म्य और उमासंहिताके श्रवण एवं पाठकी महिमा | ३७५ |
| ४३. | आचार्यपूजन एवं पुराणश्रवणके अनन्तर कर्तव्य- कथन | ३५२ | | | |
| ४४. | व्यासजीकी उत्पत्तिकी कथा, उनके द्वारा तीर्थाटनके प्रसंगमें काशीमें व्यासेश्वरलिंगकी स्थापना तथा मध्यमेश्वरके अनुग्रहसे पुराणनिर्माण | ३५३ | | | |

कैलाससंहिता

| | | | | | |
|-----|---|-----|-----|---|-----|
| १. | व्यासजीसे शौनकादि ऋषियोंका संचाद | ३७९ | १५. | तिरेभवादि चक्रों तथा उनके अधिदेवताओं आदिका वर्णन | ४११ |
| २. | भगवान् शिवसे पार्वतीजीकी प्रणवविषयक विज्ञासा..... | ३८१ | १६. | शैवर्दर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, जगत्-प्रपञ्च और जीवतत्त्वके विषयमें विशद विवेचन तथा शिवसे जीव और जगत्की अभिनन्ताका प्रतिपादन | ४१३ |
| ३. | प्रणवमीमांसा तथा संन्यासविधिवर्णन | ३८२ | १७. | अद्वैत शैववाद एवं सुष्टिप्रक्रियाका प्रतिपादन .. | ४१७ |
| ४. | संन्यासदीक्षासे पूर्वकी आलिनकविधि | ३८५ | १८. | संन्यासपद्धतिमें शिष्य बनानेकी विधि | ४१९ |
| ५. | संन्यासदीक्षाहेतु मण्डलनिर्याणकी विधि | ३८६ | १९. | महावाक्योंके तात्पर्य तथा योगपट्टिविधिका वर्णन | ४२१ |
| ६. | पूजाके अंगभूत न्यासादि कर्म | ३८७ | २०. | यतिको शौर-स्नानादिकी विधि तथा अन्य आचारोंका वर्णन | ४२५ |
| ७. | शिवजीके विविध ध्यानों तथा पूजा-विधिका वर्णन | ३९० | २१. | यतिके अन्तेष्टिकर्मकी दशाहपर्यन्त विधिका वर्णन | ४२६ |
| ८. | आवरणपूजा-विधि-वर्णन | ३९३ | २२. | यतिके लिये एकादशाह-कृत्यका वर्णन | ४३० |
| ९. | प्रणवोपासनाकी विधि | ३९५ | २३. | यतिके द्वादशाह-कृत्यका वर्णन, स्कन्द और वामदेवका कैलासपर्वतपर जाना तथा सूरजीके द्वारा इस संहिताका उपसंहार | ४३२ |
| १०. | सूतजीका काशीमें आगमन | ३९७ | | | |
| ११. | भगवान् कार्तिकेयसे वामदेवमुनिकी प्रणव- विज्ञासा..... | ३९९ | | | |
| १२. | प्रणवरूप शिवतत्त्वका वर्णन तथा संन्यासांगभूत नान्दीश्वाद-विधि | ४०१ | | | |
| १३. | संन्यासकी विधि | ४०५ | | | |
| १४. | शिवस्वरूप प्रणवका वर्णन | ४०९ | | | |

वायवीयसंहिता—पूर्वखण्ड

| | |
|--|-----|
| १. ऋषियोंद्वारा सम्मानित सूतजीके द्वारा कथाका आरम्भ, विद्यास्थानों एवं पुराणोंका परिचय तथा वायुसंहिताका प्रारम्भ | ४३५ |
| २. ऋषियोंका ब्रह्माजीके पास जाकर उनकी स्तुति करके उनसे परमपुरुषके विषयमें प्रश्न करना और ब्रह्माजीका आनन्दमन हो 'रुद्र' कहकर उत्तर देना | ४३८ |
| ३. ब्रह्माजीके द्वारा परमतत्त्वके रूपमें भगवान् शिवकी महत्ताका प्रतिपादन तथा उनकी आज्ञासे सब मुनियोंका नैमित्यारण्यमें आना | ४३९ |
| ४. नैमित्यारण्यमें दीर्घसत्रके अन्तमें मुनियोंके पास वायुदेवताका आगमन | ४४२ |
| ५. ऋषियोंके पूछनेपर वायुदेवद्वारा पशु, पाश एवं पशुपतिका तात्त्विक विवेचन | ४४४ |
| ६. महेश्वरकी महत्ताका प्रतिपादन | ४४६ |
| ७. कालकी महिमाका वर्णन | ४५० |
| ८. कालका परिमाण एवं त्रिदेवोंके आयुमानका वर्णन | ४५१ |
| ९. सृष्टिके पालन एवं प्रलयकर्तुत्वका वर्णन | ४५२ |
| १०. ब्रह्माण्डकी स्थिति, स्वरूप आदिका वर्णन | ४५४ |
| ११. अवान्तर सर्ग और प्रतिसर्गका वर्णन | ४५६ |
| १२. ब्रह्माजीकी मानसी सृष्टि, ब्रह्माजीकी मूर्च्छा, उनके मुख्ये रुद्रदेवका प्राकट्य, सप्तांश हुए ब्रह्माजीके द्वारा आठ नामोंसे महेश्वरकी स्तुति तथा रुद्रकी आज्ञासे ब्रह्माद्वारा सृष्टि-रचना | ४५७ |
| १३. कल्पभेदसे त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र)-के एक-दूसरेसे प्रादुर्भावका वर्णन | ४६० |
| १४. प्रत्येक कल्पमें ब्रह्मासे रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन ... | ४६२ |
| १५. अर्धनारीश्वररूपमें प्रकट शिवकी ब्रह्माजीद्वारा स्तुति | ४६३ |
| १६. महादेवजीके शरीरसे देवीका प्राकट्य और देवीके भूमध्यभागसे शक्तिका प्रादुर्भाव | ४६५ |
| १७. ब्रह्माके आधे शरीरसे शतरूपाकी उत्पत्ति तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंकी उत्पत्तिका वर्णन | ४६६ |
| १८. दक्षके शिवसे द्वेषका कारण | ४६८ |
| १९. दक्षयज्ञका उपक्रम, दधीचिका दक्षको शाप देना, बीरभ्रम और भद्रकालीका ग्रादुर्भाव तथा उनका यज्ञध्वंसके लिये प्रस्थान | ४७१ |
| २०. गणोंके साथ बीरभ्रका दक्षकी यज्ञभूमियें आगमन तथा उनके द्वारा दक्षके यज्ञका विष्वंस | ४७३ |
| २१. बीरभ्रका दक्षके यज्ञमें आये देवताओंको दण्ड देना तथा दक्षका सिर काटना | ४७५ |
| २२. बीरभ्रके पराक्रमका वर्णन | ४७७ |
| २३. पराजित देवोंके द्वारा की गयी स्तुतिसे प्रसन्न शिवका यज्ञकी सम्पूर्ति करना तथा देवताओंको सान्त्वना देकर अन्तर्धान होना | ४७९ |
| २४. शिवका तपस्याके लिये मन्दराचलपर गमन, मन्दराचलका वर्णन, शुभ-निशुभ दैत्यकी उत्पत्ति, ब्रह्माकी प्रार्थनासे उनके वधके लिये शिव और शिवके विचित्र लीला-प्राप्तचक्रका वर्णन | ४८२ |
| २५. पार्वतीकी तपस्या, व्याघ्रपर उनकी कृपा, ब्रह्माजीका देवोंके साथ वार्तालाप, देवोंके द्वारा काली त्वचाका त्वाग और उससे उत्पन्न कौशिकीके द्वारा शुभ-निशुभका वध | ४८४ |
| २६. ब्रह्माजीद्वारा दुर्कर्मी बतानेपर भी गौरीदेवीका शरणागत व्याघ्रको त्वागनेसे इनकार करना और माता-पितासे मिलकर मन्दराचलको जाना | ४८६ |
| २७. मन्दराचलपर गौरीदेवीका स्वागत, महादेवजीके द्वारा उनके और अपने उत्कृष्ट स्वरूप एवं अविच्छेद सम्बन्धका प्रकाशन तथा देवीके साथ आये हुए व्याघ्रको उनका गणाध्यक्ष बनाकर अन्तःपुरके द्वारपर सोमनन्दी नामसे प्रतिष्ठित करना | ४८८ |
| २८. अग्नि और सोमके स्वरूपका विवेचन तथा जगत्की अग्नोयोग्यत्वकताका प्रतिपादन | ४९१ |
| २९. जगत् 'वाणी और अर्थरूप' है—इसका प्रतिपादन | ४९० |
| ३०. ऋषियोंका शिवतत्त्वविषयक प्रश्न | ४९२ |

| अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या |
|--|------|--------------|
| ३१. शिवजीकी सर्वेश्वरता, सर्वनियामकता तथा मोक्ष-प्रदत्ताका निरूपण | | ४९५ |
| ३२. परम धर्मका प्रतिपादन, शैवागमके अनुसार पाशुपत ज्ञान तथा उसके साधनोंका वर्णन | ५०० | |
| ३३. पाशुपत-व्रतकी विधि और महिमा तथा भृस्मधारणकी महत्ता | ५०२ | |
| ३४. उपमन्त्युका गोदाधके लिये हठ तथा माताकी | | ५०९ |

वायवीयसंहिता—उत्तरखण्ड

| | | | |
|--|-----|---|-----|
| १. ऋषियोंके पूछनेपर बायुदेवका श्रीकृष्ण और उपमन्त्युके मिलनका प्रसंग सुनाना, श्रीकृष्णको उपमन्त्युसे ज्ञानका और भगवान् शंकरसे पुत्रका लाभ | ५१३ | चिन्तन एवं ज्ञानकी महत्त्वाका प्रतिपादन | ५३३ |
| २. उपमन्त्युद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपत ज्ञानका उपदेश .. | ५१४ | १२. पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन | ५३४ |
| ३. भगवान् शिवकी ब्रह्मा आदि पंचमूर्तियों, ईशानादि ब्रह्ममूर्तियों तथा पृथ्वी एवं शर्व आदि अष्टमूर्तियोंका परिचय और उनकी सर्वव्यापकताका वर्णन | ५१७ | १३. पंचाक्षर-मन्त्रकी महिमा, उसमें समस्त बाङ्मयकी स्थिति, उसकी उपदेशपरम्परा, देवीरूपा पंचाक्षरी-विद्याका ध्यान, उसके समस्त और व्यस्त अक्षरोंके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा अंगन्यास आदिका विचार | ५३८ |
| ४. शिव और शिवाकी विभूतियोंका वर्णन..... | ५१८ | १४. गुरुसे मन्त्र लेने तथा उसके जप करनेकी विधि, पौच प्रकारके जप तथा उनकी महिमा, मन्त्रगणनाके लिये विभिन्न प्रकारकी मालाओंका महत्त्व तथा अंगुलियोंके उपयोगका वर्णन, जपके लिये उपयोगी स्थान तथा दिशा, जपमें वर्जनीय वातें, सदाचारका महत्त्व, आस्तिकताकी प्रशंसा तथा पंचाक्षर-मन्त्रकी विशेषताका वर्णन | ५४१ |
| ५. परमेश्वर शिवके विधार्थ स्वरूपका विवेचन तथा उनकी शरणमें जानेसे जीवके कल्पणाका कथन.. | ५२२ | १५. त्रिविध दीक्षाका निरूपण, शस्त्रियातकी आवश्यकता तथा उसके लक्षणोंका वर्णन, गुरुका महत्त्व, ज्ञानी गुरुसे ही मोक्षकी प्राप्ति तथा गुरुके द्वारा शिष्यकी परीक्षा | ५४४ |
| ६. शिवके शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वभय, सर्वव्यापक एवं सर्वतीत स्वरूपका तथा उनकी प्रणवरूपताका प्रतिपादन | ५२४ | १६. समय-संस्कार या समयाचारकी दीक्षाकी विधि ... | ५४८ |
| ७. परमेश्वरकी शक्तिका ऋषियोंद्वारा साक्षात्कार, शिवके प्रसादसे प्राप्तियोंकी मुक्ति, शिवकी सेवा-भक्ति तथा पौच प्रकारके शिवधर्मका वर्णन | ५२५ | १७. यद्यव्यशोधनका निरूपण | ५५१ |
| ८. शिव-ज्ञान, शिवकी उपसनासे देवताओंको उनका दर्शन, सूर्यदेवमें शिवकी पूजा करके अर्घ्यदानकी विधि तथा व्यासावतारोंका वर्णन..... | ५२७ | १८. पठव्यशोधनकी विधि | ५५३ |
| ९. शिवके अवतार योगाचार्यों तथा उनके शिष्योंकी नामावली | ५२९ | १९. साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन ... | ५५६ |
| १०. भगवान् शिवके प्रति ब्रह्म-भक्तिकी आवश्यकताका प्रतिपादन, शिवधर्मके चार पादोंका वर्णन एवं ज्ञानयोगके साधनों तथा शिवधर्मके अधिकारियोंका निरूपण, शिवपूजनके अनेक प्रकार एवं अनन्य-चित्तसे भजनकी महिमा | ५३० | २०. योग्य शिष्यके आवार्यपदपर अभियेकका वर्णन तथा संस्कारके विविध प्रकारोंका निर्देश | ५५७ |
| ११. वर्णात्रम-धर्म तथा नारी-धर्मका वर्णन; शिवके भजन, | | २१. शिवशास्त्रोक नित्य-नैमित्तिक कर्मका वर्णन..... | ५५९ |
| | | २२. शिवशास्त्रोक न्यास आदि कर्मोंका वर्णन..... | ५६१ |
| | | २३. अन्तर्याम अथवा मानसिक पूजाविधिका वर्णन | ५६३ |
| | | २४. शिवपूजनकी विधि | ५६४ |

| अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या |
|--------|--|--------------|--------|--|--------------|
| २५. | शिवपूजाकी विशेष विधि तथा शिव-भक्तिकी महिमा | ५६७ | ३६. | शिवलिंग एवं शिवमूर्तिकी प्रतिष्ठाविधिका वर्णन... ६०७ | |
| २६. | साङ्घोपाङ्गपूजाविधानका वर्णन | ५७० | ३७. | योगके अनेक भेद, उसके आठ और छः अंगोंका विवेचन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, दशविध प्राणोंको जीतनेकी महिमा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिका निरूपण | ६१० |
| २७. | शिवपूजनमें अग्निकर्मका वर्णन | ५७२ | ३८. | योगमार्गके विज्ञ, सिद्धि-सूचक उपसर्ग तथा पूज्योंसे लेकर बुद्धितत्त्वपर्यन्त ऐश्वर्यगुणोंका वर्णन, शिव-शिवाकी ध्यानकी महिमा | ६१३ |
| २८. | शिवाश्रमसेवियोंके लिये नित्य-ैनित्यिक कर्मकी विधिका वर्णन | ५७६ | ३९. | ध्यान और उसकी महिमा, योगधर्म तथा शिवयोगीका महत्व, शिवभक्त या शिवके लिये प्राण देने अथवा शिवक्षेत्रमें मरणसे तत्काल मोक्ष-लाभका कथन | ६१७ |
| २९. | काम्यकर्मका वर्णन | ५७७ | ४०. | वायुदेवका अन्तर्धान होना, ऋषियोंका सरस्वतीमें अवधूष-स्नान और काशीमें दिव्य तेजका दर्शन करके ब्रह्माजीके पास जाना, ब्रह्माजीका उन्हें सिद्धिग्राहिकी सूचना देकर मेरुके कुमारशिखरपर भेजना | ६१९ |
| ३०. | आवरणपूजाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महिमाका वर्णन..... | ५७९ | ४१. | मेरुगिरिके स्कन्द-सरोवरके तटपर मुनियोंका सनस्कुमारजीसे मिलना, भगवान्, नन्दीका वहाँ आना और दृष्टिपातमात्रसे पाशछेदन एवं ज्ञानयोगका उपदेश करके चला जाना, शिवपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार | ६२२ |
| ३१. | शिवके पौच्छ आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्टपूर्ति एवं मंगलकी कामना | ५८४ | ४२. | नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना | ६२५ |
| ३२. | ऐहिक फल देनेवाले कर्मों और उनकी विधिका वर्णन, शिव-पूजनकी विधि, शनित्पुष्टि आदि विविध काम्य कर्मोंमें विभिन्न हवनीय पदार्थोंके उपयोगका विधान..... | ५९७ | | | |
| ३३. | पारलैंकिक फल देनेवाले कर्म—शिवलिंग-महान्नतकी विधि और महिमाका वर्णन | ६०१ | | | |
| ३४. | मोहवश ब्रह्मा तथा विष्णुके द्वारा लिंगके आदि और अन्तको जाननेके लिये किये गये प्रयत्नका वर्णन | ६०१ | | | |
| ३५. | लिंगमें शिवका प्राकट्य तथा उनके द्वारा ब्रह्म-विष्णुको दिये गये ज्ञानोपदेशका वर्णन | ६०३ | | | |

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

| विषय | पृष्ठ-संख्या | विषय | पृष्ठ-संख्या |
|--|------------------|--|--------------|
| १- कैलासपति भगवान् शिव | आवरण-पृष्ठ प्रथम | ७- द्वादश ज्योतिर्लिंग—२ (श्रीओकरेश्वर, श्रीकेदारनाथ, श्रीभीमशंकर) | ७ |
| २- नित्य अभिन उमा-महेश्वर | " " द्वितीय | ८- द्वादश ज्योतिर्लिंग—३ (श्रीविश्वेश्वर, श्रीब्रह्मप्यकेश्वर, श्रीवैद्यनाथ) | ८ |
| ३- ३० नमः शिवाय | ३ | ९- द्वादश ज्योतिर्लिंग—४ (श्रीनागेश्वर, श्रीरमेश्वर, श्रीपुष्मेश्वर) | ९ |
| ४- भगवान् सदाशिवद्वाय विष्णुजीको चक्र प्रदान..... | ४ | १०- देवताओंद्वाया श्रीदुर्गाजीकी स्तुति | १० |
| ५- भगवती शाकम्भरी देवी | ५ | | |
| ६- द्वादश ज्योतिर्लिंग—१ (श्रीसौमनाथ, श्रीमल्लिकार्जुन, श्रीमहाकालेश्वर) | ६ | | |

| अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय | पृष्ठ-संख्या |
|--|------|--------------|--|------|--------------|
| (सादे चित्र) | | | | | |
| १. शिव-शिवा-संवाद | | २५ | २५. दास्काके समक्ष उमामहेश्वरका प्रकट होना..... | | २२२ |
| २. सूत एवं शीनकादि मुनियोंका संवाद | | ६३ | २६. श्रीरामकी पूजासे प्रसन्न हो उमामहेश्वरका | | २२५ |
| ३. अर्धनारीश्वररूप शिवको प्रणाम करते ब्रह्माजी ... | | ६६ | प्रकट होना | | २२५ |
| ४. भगवान् शिवद्वारा नन्दीको कमलोंकी याला पहनाना..... | | ७५ | २७. घुश्माको भगवान् शिवका दर्शन देना..... | | २२९ |
| ५. बालक गृहपतिपर भगवान् उमा-महेश्वरकी कृपा | | १७ | २८. व्याघ्र और हरिणीकी वार्ता | | २४४ |
| ६. भगवान् सूर्यसे शिक्षा ग्रहण करते हनुमानजी ... | | १०६ | २९. व्याधका पश्चात्ताप | | २५७ |
| ७. भीलनीको वर प्रदान करते भगवान् शिव | | १२४ | ३०. मुनि उपमन्यु एवं भगवान् श्रीकृष्णका संवाद ... | | २६५ |
| ८. अवधूतेश्वरवतार भगवान् शिव | | १२९ | ३१. भगवान् शिवका पार्वती, गणेश एवं कार्तिकेय- सहित श्रीकृष्णको दर्शन देना | | २७१ |
| ९. ब्राह्मणपलीको दर्शन देते भगवान् शिव | | १३२ | ३२. पुण्यात्मा प्राणीका सीम्बरूपमें स्वागत करते धर्मराज | | २८१ |
| १०. व्यासजीका अर्जुनको उपदेश देना | | १४७ | ३३. पापी प्राणीको घोररूपमें दिखायी देते यमराज .. | | २८१ |
| ११. अर्जुनको दर्शन देते देवराज इन्द्र | | १४९ | ३४. शिव-पार्वती-संवाद | | ३१६ |
| १२. किरातरूपधारी भगवान् शिव और अर्जुनका विवाद | | १५२ | ३५. राजा सुरथका मुनीश्वर मेथाद्वारा सत्कार | | ३५९ |
| १३. किरातरूपधारी भगवान् शिव और अर्जुनका युद्ध.. | | १५५ | ३६. राजा सुरथ और समाधि वैश्यकी मेधा मुनिसे प्रार्थना | | ३६० |
| १४. भगवान् शिवसे क्षमा मांगते अर्जुन | | १५७ | ३७. पराशक्ति अभिकाकी देवताओंद्वारा स्तुति | | ३६३ |
| १५. भगवती गंगा एवं अनसूयाका संवाद | | १६६ | ३८. दूत शुग्रीवका देवीसे शुभासुरका सन्देश कहना | | ३६६ |
| १६. मूढ़ दानवको भस्मकर ब्राह्मणीकी रक्षा करते भगवान् शिव | | १७३ | ३९. भगवती उमाका देवराज इन्द्रको दर्शन देना | | ३७१ |
| १७. दैत्य दूषणको भस्मकर ब्राह्मणोंको दर्शन देते भगवान् शिव | | १९१ | ४०. भगवती शाकधरी | | ३७३ |
| १८. गोपपुत्र श्रीकर तथा राजा चन्द्रसेनको दर्शन देते कपीश्वर हनुमन | | १९४ | ४१. भगवान् स्कन्दकी स्तुति करते महामुनि वामदेव | | ३९९ |
| १९. विन्द्य एवं ऋषियोंको दर्शन देते भगवान् शिव | | १९६ | ४२. मुनियोंद्वारा पूजित होते सूतजी | | ४३५ |
| २०. नर-नारायणको दर्शन देते भगवान् शिव | | १९७ | ४३. मुनियोंद्वारा ब्रह्माजीकी स्तुति | | ४३८ |
| २१. राक्षस भीमसे कामरूपेश्वरको रक्षा करते भगवान् शिव | | २०२ | ४४. मुनियोंद्वारा टूटे चक्रको देखना | | ४४२ |
| २२. लक्ष्मी भगवान् शिवसे काशीपुरीको अपनी राजधानी बनाकर उमासहित वहीं विराजमान होनेके लिये प्रार्थना | | २०४ | ४५. मुनियोंद्वारा वायुदेवका स्वत्वन | | ४४३ |
| २३. पलीसहित गौतम ऋषियोंको दर्शन देते उमामहेश्वर | | २११ | ४६. ब्रह्माजीद्वारा अर्धनारीश्वरकी स्तुति | | ४४३ |
| २४. गौतम और मन्दोदरीद्वारा वैद्यनाथ शिवलिंगका पूजन | | २१७ | ४७. उमामहेश्वरका स्वत्वन करते ब्रह्माजी | | ४४५ |
| | | | ४८. इन्द्ररूपधारी शिवको उपमन्युद्वारा प्रणाम करना | | ५१० |
| | | | ४९. देवी पार्वतीके साथ वृषभपर आसीन भगवान् शंकरको दण्डवत् प्रणाम करते उपमन्यु | | ५११ |
| | | | ५०. ऋषियों एवं वायुदेवका संवाद | | ५१३ |
| | | | ५१. उपमन्युका श्रीकृष्णको पाशुपतज्ञानका उपदेश देना | | ५१५ |

सुति-पार्थना

अभिलाषाष्टक

[मनि विश्वानरकृत सम्पूर्ण मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाली स्तुति]

[पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके रमणीय तटपर विश्वानन् नामवाले एक शाहिदल्यगोत्रीय मुनि निवास करते थे। शुचिष्मती उनकी सदगुणसम्पन्ना पतिक्रिता भार्या थी। मुनिवर विश्वानन् परम पावन, पुण्यात्मा, शिवभक्त, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न और जितेन्द्रिय थे, परंतु गृहस्थाश्रममें रहते हुए बहुत समय बीत जानेपर भी उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। तब एक दिन शुचिष्मतीने पतिसे कहा—‘हे प्राणनाथ! स्त्रियोंके योग्य जितने आनन्दग्रद भोग हैं, उन सबको मैंने आपकी कृपासे आपके साथ रहकर भोग लिया, परंतु नाथ! मेरे हृदयमें एक लालसा चिरकालसे बर्तमान है और वह गृहस्थोंके लिये उचित भी है, उसे आप पूर्ण करनेकी कृपा करें। स्वामिन्! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ और आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे महेश्वर-सुरीखा पूजा प्रदान कीजिये। इसके अतिरिक्त मैं दूसरा वर नहीं चाहती।’

पत्नीके इस अनुरोधपर मुनि विश्वानार काशी गये और वहाँ वीरेश्वर लिंगकी आराधना करने लगे । उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें अद्वर्योग्य विभूतिभूषित बालकके स्पर्में दर्शन दिया । उस समय उनके हृदयोदगरके स्पर्में आठ श्लोकोंबाला यह अभिलाषाष्टक प्रस्तुटित हुआ और इससे उन्होंने उन देवाधिदेवका स्तवन किया । इससे प्रसन्न होकर भगवान् शिखने कहा—‘हे महामत ! मैं शुचितीके गर्भसे तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट होऊंगा । जो मनुष्य एक वर्षतक मेरे सन्निकट तुम्हारे द्वारा कथित इस अभिलाषाष्टक स्तोत्रका तीनों कालोंमें पाठ करेगा, उसकी सारी अभिलाषाएँ यह अभिलाषाष्टक पूर्ण कर देगा । इस स्तोत्रका पाठ पुत्र-पीत्र और धनका प्रदाता, सर्वथा शान्तिकारक, सारी विपत्तियोंका विनाशक, स्वर्ण और मोक्षरूप सम्पत्तिका कर्ता तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है । निस्सन्देह यह अकेला ही सम्पूर्ण स्तोत्रोंके तुल्य है । सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले विश्वानारकृत इस अभिलाषाष्टकको यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—सं०]

विश्वानर उवाच

एकं ब्रह्मवादितीयं समस्तं
सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किञ्चित्।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे
तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम्॥

विश्वानर बोले—यह सब कुछ एक अद्वितीय ब्रह्म ही है, वही सत्य है, वही सत्य है, सर्वत्र उस ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह ब्रह्म एकमात्र ही है और दूसरा कोई नहीं है, इसलिये मैं एकमात्र आप महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ।

कर्ता हर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो
नानारूपेष्वेकशस्याऽप्यरूपः ।
यद्वप्त्यधर्मं एकोऽप्यनेक-
स्तस्मानान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये ।

हे शम्भो ! एक आप ही सबका सुजन करनेवाले तथा हरण करनेवाले हैं, आप रूपविहीन होकर भी अनेक रूपोंमें एक रूपवाले हैं, जैसे आत्मधर्म एक होता हुआ भी अनेक रूपोंवाला है, इसलिये मैं आप महेश्वरको छोड़कर किसी अन्यकी शरण नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ।

रज्जी सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यं
नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीची ।

यद्यत्सद्विष्वगेव प्रपञ्चो

यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेऽ

गल्लर रास्तीमें साँप सीपीमें चाँदी

जिस प्रकार रस्सीमें साप, सोपाम चादी आर मृगमरीचिकामें जलप्रवाह [मिथ्या] भासित होता है, उसी प्रकार [आपमें] यह सारा प्रपंच भासित हो रहा है। जिसके जान लैनेपर इस प्रपंचका मिथ्यात्व भलीभाँत ज्ञात

हो जाता है, मैं उन महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ।

तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ

तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः।

पुष्टे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पि-

र्यन्तच्छथो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये॥

हे शम्भो! जिस प्रकार जलमें शोतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें आहादकत्व, पुष्टमें गन्ध एवं दुग्धमें घृत व्याप्त रहता है, उसी प्रकार सर्वत्र आप ही व्याप्त हैं, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ।

शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिष्ठ-

स्यद्वाणस्त्वं व्यंग्यिरायासि दूरात्।

व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः

कस्त्वां सम्यग्वेत्यतस्त्वां प्रपद्ये॥

हे प्रभो! आप कानोंके बिना सुनते हैं, नाकके बिना सूंधते हैं, बिना पैरके दूरसे आते हैं, बिना आँखें देखते हैं और बिना जिह्वाके रस ग्रहण करते हैं, अतः आपको भलीभांति कौन जान सकता है। इस प्रकार मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ।

नो वेद त्वामीश साक्षात्किं वेदो

नो वा विष्णुर्नो विद्याताखिलस्य।

नो योगीन्द्रा नेत्रमुख्याश्च देवा

भक्तो वेद त्वाप्यतस्त्वां प्रपद्ये॥

हे ईश! आपको न साक्षात् वेद, न विष्णु, न सर्वस्त्वा ब्रह्मा, न योगीन्द्र और न तो इन्द्रादि देवगण भी जान सकते हैं, केवल भक्त ही आपको जान पाता है, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ।

नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नारखा

नो वा रूपं नैव शीलं न देशः।

इत्यम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः

सर्वान्कामान्युयेस्त्वं भजे त्वाम्॥

हे ईश! आपका न तो गोत्र है, न जन्म है। न आपका नाम है, न आपका रूप है, न शील है एवं न देश। ऐसा होते हुए भी आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं और आप समस्त मनोरथोंको पूर्ण करते हैं, अतः मैं आपका भजन करता हूँ।

त्वतः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरते

त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः।

त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बाल-

स्त्रात्वं यत्किं नान्यतस्त्वां नतोऽहम्॥

हे कामशत्रो! सब कुछ आपसे है और आप ही सब कुछ हैं, आप पार्वतीपति हैं, आप दिग्मवर एवं अत्यन्त शान्त हैं। आप वृद्ध, युवा और बालक हैं। कौन ऐसा पदार्थ है, जो आप नहीं हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ। [शतरुद्रसंहिता]

'ब्रजामि शरणं शिवम्'

नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे।

प्रधानपुरुषेशाय सर्पिस्थित्यन्तहेतवे॥

शक्तिरप्रतिमा यस्य हौशवर्यं चापि सर्वगम्।

स्वामित्वं च विभुत्वं च स्वभावं सम्प्रचक्षते॥

तमजं विश्वकर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम्।

महादेवं महात्मानं ब्रजामि शरणं शिवम्॥

जो जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तथा प्रकृति और पुरुषके ईश्वर हैं, उन प्रमथगण, पुत्रद्वय तथा उमासहित भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनकी शक्तिकी कहीं तुलना नहीं है, जिनका ऐश्वर्य सर्वत्र व्यापक है तथा स्वामित्व और विभुत्व जिनका स्वभाव कहा गया है, उन विश्वस्त्रा, सनातन, अजन्मा, अविनाशी, महान् देव, मंगलमय परमात्मा शिवकी मैं शरण लेता हूँ। [वाय्यीयसंहिता]

श्रीशिवमहापुराणसूक्तिसुधा

उपकारो हि साधूनां सुखाय किल संमतः ।
उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम् ॥

सज्जन व्यक्तियोंके साथ किया गया उपकार सुखको बढ़ानेवाला होता है । किंतु वही उपकार यदि दुष्ट व्यक्तिके साथ किया जाय तो वह हानिकारक होता है ।

[शतरुद्रसंहिता १ । ४५]

गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि ॥
विधाताके विपरीत होनेपर गुण भी दोष हो जाता है । [शतरुद्रसंहिता १ । ४६]

महतां च स्वभावोऽयं कल्पवृक्षसमो मतः ॥
तदगुणानेव गणयन्महतो वस्तुमात्रतः ।
आश्रवस्य वशादेव पुणो वै जायते प्रभो ॥
लघुत्वं च महत्वं च नात्र कार्या विचारणा ।
उत्तमानां स्वभावोऽयं यद्वीनप्रतिपालनम् ॥

बड़े लोगोंका स्वभाव कल्पवृक्षके समान माना गया है, उनके आनेपर दुःखका कारणभूत दारिद्र्य निश्चित रूपसे चला जाता है । हे प्रभो! महात्माओंके गुणोंका कथन करनेमात्रसे अथवा उनका आश्रय लेनेमात्रसे पुरुष गुणवान् हो जाता है । इसमें छोटेपन और बड़ेपनका विचार नहीं करना चाहिये, ब्रेष्ट पुरुषोंका ऐसा स्वभाव ही होता है कि वे दीनोंकी रक्षा करते हैं ।

[शतरुद्रसंहिता ३७ । ३०—३२]

सुजनानां स्वभावोऽयं ग्राणान्तेऽपि सुशोभनः ।
धर्मं त्वज्जिति नैवात्र सत्यं सफलभाजनम् ॥

सत्पुरुषोंका ऐसा अत्युत्तम स्वभाव होता है कि वे मृत्युर्पर्यन्त मनोहर फल देनेवाले सत्य तथा धर्मका त्याग नहीं करते हैं । [शतरुद्रसंहिता ३७ । ३२]

यस्मिन्दृष्टे प्रसीदेत्त्वं मनः स हितकृद धूवम् ।
यस्मिन्दृष्टे तदेव स्यादाकुलं शक्तुरेव सः ॥
आचारः कूलमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ।
वचनं श्रुतमाख्याति स्नेहमाख्याति लोचनम् ॥
आकरोण तथा गत्या चेष्टया भाष्यतैरपि ।
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां ज्ञायतेऽन्तहितं मनः ॥

जिसके देखनेसे अपना मन प्रसन्न हो, वह निश्चय

ही हितैषी होता है और जिसके देखनेसे मनमें व्याकुलता उत्पन्न हो, वह अवश्य ही शत्रु होता है । सदाचारसे कुलका, शरीरसे भोजनका, वचनके द्वारा सास्त्रज्ञानका तथा नेत्रके द्वारा स्नेहका पता लग जाता है । आकार, गति, चेष्टा, सम्भाषण एवं नेत्र तथा मुखके विकारसे मनव्यके अन्तःकरणकी बात ज्ञात हो जाती है ।

[शतरुद्रसंहिता ३७ । १७—१९]

महतां च स्वभावो हि परेषां हितमावहेत् ।
सुवर्णं चन्दनं चेष्टुरसस्त्रं निदर्शनम् ॥

बड़े लोगोंका ऐसा स्वभाव है कि वे दूसरोंका हित करते हैं; इस विषयमें सुवर्ण, चन्दन तथा इक्षुरस दृष्टान्तस्वरूप हैं । [कोटिरुद्रसंहिता ४ । ५६]

हसता क्रियते कर्म रुदता परिभूज्यते ।
दुःखदाता न कोऽप्यस्ति सुखदाता न कश्चन ॥
सुखदुःखे परो दत्त इत्येषा कुमर्तिर्मता ।
अहं चापि करोम्यत्र मिथ्याज्ञानं तदुच्यते ॥

प्राणी हैंसते हुए तो कर्म करता है और रोते हुए उसका फल भोगता है । कोई किसीको न सुख देनेवाला है और न ही किसीको दुःख देनेवाला है । कोई दूसरा सुख और दुःख देनेवाला है—यह दुर्बुद्धि मानी गयी है । 'मैं ही करता हूँ' यह मिथ्या ज्ञान कहा जाता है ।

[कोटिरुद्रसंहिता ६ । १३—१४]

वद्य माता वद्य पिता विद्धिं वद्य स्वामी वद्य कलत्रकम् ।
न कोऽपि कस्य चास्तीह सर्वेऽपि स्वकृतंभुजः ॥

कौन किसकी माता और कौन किसका पिता है? कौन किसका स्वामी और कौन किसकी स्त्री है; यहाँपर कोई भी किसीका नहीं है, सभी अपने किये हुए कर्मका फल भोगते हैं । [कोटिरुद्रसंहिता ६ । २८]

यादृश्वरं च सेवेत तादृशं फलमप्यनुते ।
महतः सेवयोच्चत्वं क्षुद्रस्य क्षुद्रतां तथा ॥

मनव्य जिस प्रकारके पुरुषका सेवन करता है, वह वैसा ही फल प्राप्त करता है, बड़ोंकी सेवासे बड़प्पन तथा छोटोंकी सेवासे लघुता प्राप्त होती है ।

[कोटिरुद्रसंहिता २४ । २२]

दयालुरमदस्यर्थी उपकारी जितेन्द्रियः।
एतैश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिर्धायते मही॥

दयालु अभिमानरहित, उपकारी एवं जितेन्द्रिय—
इन चार पुण्यस्तम्भोंने पृथ्वीको धारण किया है।

[कोटिरुद्रसंहिता २४। २६]

अपकारेषु यश्चैव हृपकारं करोति च।
तत्य दर्शनमात्रेण पापं दूरतं व्रजेत्॥

जो पुरुष अपकार करनेवालोंके प्रति उपकार
करता है, उसके दर्शनमात्रसे ही पाप दूर भाग जाते हैं।

[कोटिरुद्रसंहिता ३३। ३१]

उपकारकरस्यैव यत्पुण्यं जायते त्विह।
तत्पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि॥

लोकमें उपकारी जीवको जो पुण्य होता है, उस
पुण्यका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा
सकता है। [कोटिरुद्रसंहिता ४०। २६]

शुभं लब्ध्वा न हृष्टेत कुप्येल्लब्ध्वाशुभं न हि।
द्वद्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः॥
शुभं वस्तुको प्राप्तकर जो हर्षित नहीं होता और
अशुभको प्राप्तकर क्रोध नहीं करता और द्वन्द्वोंमें समान
रहता है, वह ज्ञानवान् कहा जाता है।

[कोटिरुद्रसंहिता ४३। ३१]

आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवाः।
अनृतं ये न भाषते ते नराः स्वर्गगमिनः॥

जो लोग स्वयंके लिये अथवा दूसरोंके लिये
यहाँतक कि अपने पुत्रके लिये भी झुठ नहीं बोलते,
वे स्वर्गगमी होते हैं। [उपासंहिता २३। ३५]

देवकार्यादपि मुने पितृकार्यं विशिष्यते।
देवकार्यकी अपेक्षा पितृकार्यको विशेष कहा
गया है।

[उपासंहिता ४१। ७]

कर्मणा जायते भक्तिर्भवत्या ज्ञानं प्रजायते।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः॥

कर्मसे भक्ति होती है, भक्तिसे ज्ञान होता है और
ज्ञानसे मुक्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंमें निर्णय किया
गया है। [उपासंहिता ५१। १०]

रागादिदोषान् संत्यज्य शिवध्यानपरो भव।
सत्सप्तदायसंसिद्धैः सङ्गं कुरु न चेतरैः॥
अनभ्यर्च्य शिवं जातु मा भुद्धक्षवाप्राणसंक्षयम्।
गुरुभक्तिं समास्थाय सुखी भव सुखी भव॥

राग आदि दोषोंका त्याग करके निरन्तर शिवका
चिन्तन करते रहो। श्रेष्ठ सप्तदायके सिद्ध पुरुषोंका संग
करो, दूसरोंका नहीं। प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी
शिवका पूजन किये बिना कभी भोजन न करो। गुरुभक्तिका
आश्रय ले सुखी रहो, सुखी रहो।

[कैलाससंहिता १९। ५३-५४]

साक्षरा विपरीताश्च राक्षसास्त इति स्मृताः।

विपरीत आचरण करनेवाले साक्षर भी राक्षस कहे
गये हैं। [कैलाससंहिता २०। ३५]

बृक्षस्य मूलसेकेन शाखाः पुष्यन्ति वै यथा।
शिवस्य पूजया तद्वत्पुष्यत्यस्य वपुर्जगत्॥
सर्वाभ्यप्रदानं च सर्वानुग्रहणं तथा।
सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं विदुः॥
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्प्रिता।
तथा सर्वस्य संप्रीत्या प्रीतो भवति शङ्करः॥

जैसे वृक्षकी जड़को सौंचनेसे शाखाएँ पुष्ट होती
हैं, वैसे ही इन शिवकी पूजासे संसाररूपी शरीर पुष्ट
होता है। शिवके आराधनको सभी प्रकारका अभ्य
प्रदान करनेवाला, सब प्रकारसे अनुग्रह करनेवाला तथा
सभी का उपकार करनेवाला कहा गया है। जैसे इस
लोकमें पुत्र-पौत्रकी प्रसन्नतासे पिता प्रसन्न होता है,
वैसे ही सभीकी प्रसन्नतासे शंकरजी प्रसन्न होते हैं।

[वायवीयसंहिता, उत्तर० ३। २९—३१]

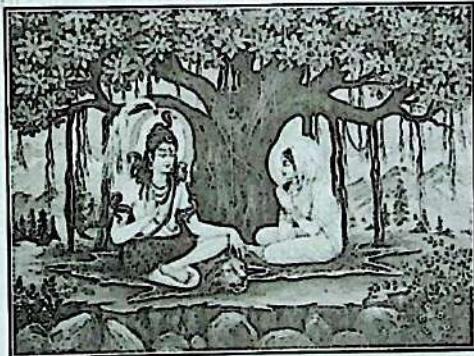
येन केनाप्युपायेन शिवे चित्तं निवेशयेत्॥
शिवे निष्ठिष्ठचित्तानां प्रतिष्ठितदिव्यां सताम्।

परत्रेह च सर्वत्र निर्वृतिः परमा भवेत्॥

जिस किसी भी उपायसे शिवमें मनको लगाना
चाहिये। [भगवान्] शिवमें आसक मनवाले तथा
प्रतिष्ठित बुद्धिवाले सज्जनोंको इस लोकमें तथा परलोकमें
सर्वत्र परम शान्ति प्राप्त होती है।

[वायवीयसंहिता, उत्तर० ११। ५४-५५]

श्रीशिवमहापुराण [उत्तरार्ध]—एक सिंहावलोकन



वन्दे महानन्दमनन्तलीलं
महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराज-
समुद्द्रवं शङ्करमादिदेवम्॥

जो परमानन्दमय हैं, जिनकी लीलाएँ अनन्त हैं, जो ईश्वरोंके भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीके प्रियतम तथा स्वामी कार्तिक और विघ्नराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ।

पिछले वर्ष शिवमहापुराणका पूर्वार्ध विशेषांकके रूपमें प्रकाशित हुआ था, जिसके प्रारम्भमें सिंहावलोकनकी

प्रस्तुति की गयी थी। इस वर्ष शिवमहापुराणका उत्तरार्ध प्रस्तुत है—

जो धर्मका महान् क्षेत्र है, जहाँ गंगा-यमुनाका संगम हुआ है, जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, उस परम पुण्यमय नैमित्तराण्य तीर्थके प्रयागक्षेत्रमें महात्मा मुनियोंद्वारा एक विशाल ज्ञानयज्ञका आयोजन किया गया। उस ज्ञानयज्ञका तथा मुनियोंका दर्शन करनेके लिये व्यासशिष्य महामुनि सूतजी वहाँ पधारे। वहाँ उपस्थित महात्माओंने उनकी विधिवत् स्तुति करके विनयपूर्वक उनसे निवेदन किया—हे सूतजी! इस घोर कलियुगके आनेपर जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी और जिन्होंने अपने धर्मका त्याग कर दिया, ऐसे लोगोंको इहलोक तथा परलोकमें उत्तम गति कैसे प्राप्त होगी—इसी चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है।

सूतजी बोले—सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, जो वेदान्तका सार-सर्वस्व है तथा वका और श्रोताका समस्त पापोंसे उड़ाकर करनेवाला है; वह परलोकमें परमार्थ वस्तुको देनेवाला है, उसमें भगवान् शिवके उत्तम यशका वर्णन है। हे ग्राहणो! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले उस पुराणका प्रभाव विस्तारको प्राप्त हो रहा है।

शतरुद्रसंहिता

शिवपुराणकी कथाके इस क्रममें शैनकजीने सूतजीसे कहा—हे महाभाग! आप तो व्यासजीके शिष्य तथा ज्ञान और दयाके निधि हैं, अतः अब आप शिवजीके उन अवतारोंका वर्णन कीजिये, जिनके द्वारा उन्होंने सत्पुरुषोंका कल्याण किया है।

हे मुने! पूर्वकालमें इसी वातको सनत्कुमारने शिवस्वरूप तथा सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नन्दीश्वरसे पृथा था, तब शिवजीका स्मरण करते हुए नन्दीश्वरने उनसे कहा—हे सनत्कुमार! सर्वव्यापक तथा सर्वेश्वर शंकरके विविध कल्पोंमें यद्यपि असंख्य अवतार हुए हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार यहाँपर उनमेंसे कुछका वर्णन कर रहा हूँ।

श्वेतलोहित नामक उन्नीसवें कल्पमें 'सद्योजात'

अवतार हुआ। इन्हीं सद्योजात नामक परमेश्वर शिवजीने प्रसन्न होकर ब्रह्मजीको ज्ञान प्रदान किया एवं सृष्टि उत्पन्न करनेका सामर्थ्य भी प्रदान किया।

इसी प्रकार बीसवें, इक्कोसवें कल्पतथा अन्य कल्पोंमें महेश्वरकी ईशान, तत्पुरुष, अधोर, वामदेव तथा सद्योजात नामक पाँच मूर्तियाँ ब्रह्म संज्ञासे विश्रुत हैं। इसके साथ ही बहुत सारे अवतार हुए। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको शिवजीके इन रूपोंकी प्रयत्नपूर्वक नित्य वन्दना करती चाहिये; क्योंकि ये रूप सभी प्रकारके कल्याणके एकमात्र कारण हैं।

शिवजीकी अष्टमूर्तियोंका वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—हे मुने! अब आप महेश्वरके समस्त प्राणियोंको सुख प्रदान करनेवाले तथा लोकके सम्पूर्ण

कायोंको सम्पादित करनेवाले अन्य ब्रेष्टतम अवतारोंको सुनें।

यह सारा संसार शिवकी आठ मूर्तियोंका स्वरूप ही है। जैसे सूतमें मणियाँ पिरोयी रहती हैं, उसी तरह यह विश्व उन आठ मूर्तियोंमें व्याप्त होकर स्थित है। वे प्रसिद्ध आठ मूर्तियाँ ये हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशन और महादेव। शिवजीकी इन शर्व आदि आठ मूर्तियोंद्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित हैं। शास्त्रका ऐसा निश्चय है कि कल्याणकर्ता महेश्वरका विश्वभरात्मक स्वरूप ही चराचर विश्वको धारण किये हुए है। जैसे इस लोकमें पुत्र-पौत्र आदिको प्रसन्न देखकर पिता हर्षित होता है, उसी तरह विश्वको भलीभांत हर्षित देखकर शंकरको आनन्द मिलता है। इसलिये यदि कोई किसी भी देहधारीको कष्ट देता है तो निःसन्देह मानो उसने अष्टमूर्ति शिवका ही अनिष्ट किया है।

सनकुमारजी! इस प्रकार भगवान् शिव अपनी अष्टमूर्तियोंद्वारा समस्त विश्वको अधिष्ठित करके विजयमान हैं। अतः तुम पूर्ण भक्तिभावसे परम कारण रुद्रका भजन करो।

भगवान् शिवका अर्धनारीश्वर-अवतार

प्रिय सनकुमारजी! अब आप शिवजीके अनुपम अर्धनारीश्वरस्वरूपका वर्णन सुनो। सृष्टिके आदिमें जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माद्वारा रची हुई सारी प्रजाएँ विस्तारको नहीं प्राप्त हुईं, तब ब्रह्मा उस दुःखसे दुखी हो चिन्ताकुल हो गये। उसी समय यह आकाशवाणी हुई—‘ब्रह्मन्! अब मैथुनी सृष्टिकी रचना करो।’ इस आकाशवाणीको सुनकर ब्रह्माने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करनेमें स्वयंको समर्थ न पाकर यों विचार किया कि शम्भुकी कृपाके बिना मैथुनी प्रजा उत्पन्न नहीं हो सकती, तब वे तप करनेको उद्यत हुए। ब्रह्माके उस तीव्र तपसे थोड़े ही समयमें शिवजी प्रसन्न होकर पूर्ण सच्चिदानन्दकी कामदा मूर्तिमें प्रविष्ट होकर अर्धनारीनरके रूपमें ब्रह्माके निकट प्रकट हो गये।

ईश्वरने कहा—महाभाग वत्स! मुझे तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्णतया ज्ञात है, मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हूं और तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करूँगा। यह कहकर

शिवजीने अपने शरीरके अर्धभागसे शिवा देवीको पृथक् कर दिया। तब शिवसे पृथक् होकर प्रकट हुई परमा शक्तिकी ब्रह्माजी विनम्र भावसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे—‘हे शिव! हे शिवप्रिये! हे माता! चराचर जगत्की बृद्धिके लिये आप मुझे नारीकुलकी सृष्टि करनेके लिये शक्ति प्रदान करें; वदेश्वरी! मैं आपसे एक और वरकी याचना करता हूं, आप चराचर जगत्की बृद्धिके लिये अपने एक सर्वसमर्थ रूपसे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाओ।’ भगवती शिवाने ‘तथास्तु’—ऐसा ही होगा, कहकर वह शक्ति ब्रह्माको प्रदान कर दी।

इस प्रकार शिवा देवी ब्रह्माको अनुपम शक्ति प्रदान करके शम्भुके शरीरमें प्रविष्ट हो गयी। तभी से इस लोकमें स्त्री-भागकी कल्पना हुई और मैथुनी सृष्टि चल पड़ी। इससे ब्रह्माको महान् आनन्द प्राप्त हुआ।

नन्दीश्वरावतारका वर्णन

अवतारके अध्यायोंमें शिवजीके ४२ अवतारोंका वर्णन किया गया। अब नन्दीश्वर-अवतारका वर्णन किया जाता है।

सनकुमारजीने पूछा—हे नन्दीश्वर! आप महादेवके अंशसे किस प्रकार उत्पन्न हुए और किस प्रकार शिवत्वको प्राप्त हुए? आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

नन्दीश्वर बोले—हे सनकुमार! जिस प्रकार शिवजीके अंशसे उत्पन्न होकर मैंने शिवत्वको प्राप्त किया है, उसको आप सावधानीपूर्वक सुनिये।

शिलाद नामक एक धर्मात्मा मुनि थे। पितरोंने महर्षि शिलादसे सन्तान उत्पन्न करनेका निवेदन किया, तब शिलादने उनका उद्धार करनेकी इच्छासे पुत्रोत्पत्ति करनेका विचार किया तथा इस निमित्त इन्द्रको उद्देश्य करके बहुत समयतक अति कठोर तप किया। इन्द्रके प्रसन्न होनेपर शिलादने अयोनिज, अमर तथा उत्तम ब्रतवाले पुत्रकी कामना की। इन्द्रने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए देवाधिदेव महादेव रुद्रको प्रसन्न करनेकी प्रेरणा प्रदान की। तब शिलाद भगवान् महादेवको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे।

शिवके प्रसन्न होनेपर शिलादने उनसे कहा—

प्रभो! मैं आपके ही समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र चाहता हूँ। त्रिनेत्र भगवान् शिव प्रसन्नचित्त होकर बोले—हे विप्र! मैं नन्दी नामसे आपके अयोनिज पुत्रके रूपमें अवतरित होऊँगा और हे मुने! आप मुझ तीनों लोकोंके पिताके भी पिता बन जायेंगे।

हे सनत्कुमार! कुछ समय बाद मेरे पिता शिलाद मुनि यज्ञ करनेके लिये यज्ञस्थलका कर्षण करने लगे। उसी समय यज्ञारथसे पूर्व ही शिवजीकी आज्ञासे प्रलयाग्निके सदृश देवीप्यमान होकर मैं उनके पुत्ररूपमें प्रकट हुआ।

उस समय वहाँपर बहुत बड़ा उत्सव हुआ। सभी देवगण हर्षित होकर मेरे तथा मुझे उत्पन्न करनेवाले शिवलिंगका पूजन करके उसकी स्तुति करने लगे।

शिलाद बोले—हे सुरेश्वर! आपने मुझे आनन्दित किया है, अतः आपका नाम नन्दी होगा और इसलिये आनन्द-स्वरूप आप प्रभु जगदीश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ।

नन्दीश्वर बोले—इतना कहकर मुझे साथ लेकर वे पर्णकुटीमें चले गये।

हे महामुने! जब मैं महर्षि शिलादकी कुटीमें गया तो मैंने अपने उस शरीरको त्यागकर मनुष्यरूप धारण कर लिया। पुत्रवत्सल शिलादने मेरा समस्त जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया। उन्होंने वेदों तथा समस्त शास्त्रोंका भी अध्ययन सम्पन्न कराया। सातवें वर्षके पूर्ण होनेपर मित्र और वरुण नामवाले दो मुनि आश्रमपर पथारे। उन्होंने कहा—हे तात! आपके पुत्र सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारंगत हैं, किंतु दुःखकी बात है कि ये अल्पायु हैं। अब इस वर्षसे अधिक इनकी आयु नहीं है। यह सुनकर शिलाद दुःखसे व्याकुल होकर अत्यधिक विलाप करने लगे।

तब मैंने कहा—हे पिताजी! देवता, दानव, यमराज, काल अथवा अन्य कोई भी प्राणी मुझे मार नहीं सकता, आप दुखी न हों। पिताके पूछेनेपर नन्दीश्वर बोले—मैं न तो तपसे और न विद्यासे ही मृत्युको रोक सकूँगा, मैं तो केवल महादेवके भजनसे नहीं हूँ।

नन्दिकेश्वरका अभिषेक एवं विवाह

नन्दीश्वर कहते हैं—इसके अनन्तर मैं वनमें जाकर धीरतापूर्वक कठोर तप करते हुए रुद्रमन्त्रका जप करने लगा। मेरी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकरने मुझसे कहा—हे महाप्राज्ञ! तुमको मृत्युसे भय कहाँ? मैंने ही उन दोनों ब्राह्मणोंको भेजा था। तुम तो अपने पिता एवं सुहजनोंके सहित अजर-अमर, दुःखरहित, अदिनाशी, अक्षय और मेरे सदाप्रिय गणपति हो गये। इस प्रकार कहकर कृपानिधि शिवने सहस्र कमलोंकी बनी हुई अपनी शिरोमालाको उतारकर मेरे कण्ठमें पहना दिया। हे विप्र! उस पवित्र मालाके गलेमें पड़ते ही मैं तीन नेत्र एवं दस भुजाओंसे युक्त होकर दूसरे शिवके समान हो गया। इसके बाद शिवजीने पार्वतीजीसे कहा—मैं नन्दीको अभिषिक्तकर इसे गणेश्वर बनाना चाहता हूँ, इसमें तुम्हारी क्या सम्पत्ति है?

उमा बोली—हे परमेश्वर! आप इस नन्दीको अवश्य ही गणेश्वरपद प्रदान करें। तदनन्तर भगवान् शंकरने अपने श्रेष्ठ गणाधिपोंका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही असंख्य गणेश्वर वहाँ उपस्थित हो गये।

तब शिवजी बोले—यह नन्दीश्वर मेरा परमप्रिय पुत्र है, अतः तुम लोग इसे सभी गणोंका अग्रणी तथा सभी गणाध्यक्षोंका ईश्वर बनाओ—यह मेरी आज्ञा है। यह नन्दीश्वर आजसे तुम सभीका स्वामी होगा।

शिवजीकी आज्ञासे स्वयं ब्रह्माने एकाग्राचित्त होकर मेरा समस्त गणाध्यक्षोंके अधिपति पदपर अभिषेक किया। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने शिवजीकी आज्ञासे बड़े उत्सवके साथ मेरा विवाह भी सम्पन्न किया।

विवाह करके मैंने अपनी उस पत्नीके साथ शम्पु, शिवा, ब्रह्मा और श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। भगवान् शिव पत्नीसहित मुझसे प्रेमपूर्वक बोले—सत्यन्त्र! यह तुम्हारी प्रिया सुयशा और तुम मेरी बात सुनो। तुम मुझे परम प्रिय हो। जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ तुम्हारी स्थिति होगी और जहाँ तुम रहोगे, वहाँ मैं उपस्थित रहूँगा।

महाभागा उमा देवीने भी मुझे तथा मेरी पत्नी सुयशाको अभीष्ट वर प्रदान किया। तत्पश्चात् भगवान्

शिव मुझे अपनाकर उमासहित वृषपर आरूढ़ हो अपने निवास-स्थानपर चले गये।

भैरवावतारका वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—हे सनत्कुमार! अब आप भैरवावतारकी कथा सुनें। भैरवजी परमात्मा शंकरके पूर्णरूप हैं। शिवजीकी मायासे मोहित मूर्ख लोग उन्हें नहीं जान पाते।

एक बार समस्त देवता और ऋषिगण परमतत्त्व जाननेकी इच्छासे ब्रह्माजीके पास गये और उनसे पूछा—हे लोकनायक! अद्वितीय तथा अविनाशी तत्त्व क्या है? नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी मायासे मोहित वे ब्रह्माजी परमतत्त्वको न समझकर अहंकारयुक्त होकर बोले—मैं ही सारे जगत्का प्रवर्तक, संवर्तक और निवर्तक हूँ। हे देवताओ! मुझसे बड़ा कोई नहीं है।

उसी समय वहाँ स्थित विष्णुने उनकी बातका विरोध करते हुए स्वयंको सम्पूर्ण लोकोंका कर्ता, परमपुरुष परमात्मा बताया। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु दोनोंमें विवाद हो गया।

उस समय उन दोनोंकी इस विवादास्पद बातको सुनकर सर्वं व्यापक तथा निराकार प्रणवने मूर्तिमान् प्रकट होकर उनसे कहा—परमेश्वर शिव सनातन तथा स्वयं ज्योतिस्वरूप हैं और ये शिव उनकी आहादिनी शक्ति हैं। ये उन्हींके समान नित्य तथा उनसे अधिन्न हैं। ओंकारके इस प्रकार कहनेपर भी उस समय शिवमायासे मोहित ब्रह्मा और विष्णुका अज्ञान जब दूर नहीं हुआ तब उसी समय अपने प्रकाशसे पृथ्वी तथा आकाशके अन्तर्गतको पूर्ण करती एक महान् ज्योति उन दोनोंके बीचमें प्रकट हो गयी।

उस समय परमेश्वर शिवने अपने तेजसे अत्यन्त देवीयमान भैरव नामक एक परमतेजस्वी पुरुषको रत्पन्न किया और बोले—हे कालभैरव! सर्वथरम तुम इस पदयोनि ब्रह्माको दण्ड दो, तुमसे काल भी डोरा, अतः तुम कालभैरव कहे जाओगे। हे कालराज! सभी पुरियोंसे त्रेष्ठ जो मेरी मुक्तिपुरी काशी है, तुम सदा उसके अधिगति बनकर रहोगे।

नन्दीश्वर बोले—कालभैरवने इस प्रकारके वरोंको

पाकर अपनी बायीं औंगुलियोंके नखोंके अग्रभागसे ब्रह्माका पाँचवाँ सिर तत्क्षण ही काट डाला। उसके बाद ब्रह्माके सिरको कटा हुआ देखकर विष्णु बहुत भयभीत हो गये और शतरुद्रिय मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे।

हे मुने! तब भयभीत हुए ब्रह्माजी भी शतरुद्रिय मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार वे दोनों ही उसी क्षण अहंकारहित हो गये। अहंकारका त्याग करनेपर ही मनुष्य परमेश्वरको जान पाता है। इसके बाद ब्रह्मा तथा विष्णुको अहंकारहित जानकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और उन प्रभुने उन दोनोंको भयहित कर दिया।

ब्रह्मदेवका सिर काटनेके कारण ब्रह्महत्या भैरवका पीछा करने लगी। भैरव धूमते-धूमते अविमुक्तनगरी बाराणसीपुरीमें जा पहुँचे। भैरवके उस क्षेत्रमें प्रवेश करनेमात्रसे ही ब्रह्महत्या उसी समय हाहाकार करके पातालमें चली गयी। उसी समय भैरवके हस्तक्तमलसे ब्रह्माका कपाल पृथ्वीपर गिर पड़ा। तबसे वह तीर्थ 'कपालमोचन' नामसे प्रसिद्ध हो गया। इस त्रेष्ठ तीर्थमें आकर विधिपूर्वक स्नानकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है। मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीतिथिको भैरवजीका जन्म हुआ, जो मनुष्य इस तिथिको कालभैरवकी सन्निधिमें उपवास करके जागरण करता है, वह महान् पापोंसे मुक्त हो जाता है और सद्गतिको प्राप्त होता है।

भगवान् शंकरका शरभावतार

भगवान् शंकरके भैरवावतार एवं उनकी लीलाओंका वर्णन करनेके उपरान्त नन्दीश्वरने कहा—महामुने! भगवान् शिव उत्तमोत्तम लीलाएँ रचनेवाले तथा सत्पुरुषोंके प्रेमी हैं। त्रेष्ठ भक्तोंके हितसाधक अपरिमित शिवावतार हुए हैं, उनकी संख्याकी गणना नहीं की जा सकती है।

पूर्वकालमें पृथ्वीका उद्धार करनेहेतु ब्रह्माजीद्वाया प्रार्थना किये जानेपर भगवान् विष्णुने वाराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वध किया। इसके अनन्तर भगवान् विष्णुने नृसिंहको रूप धारणकर हिरण्यकशिपुका संहार किया। भगवान् शंकरने शरभावतार धारणकर उसके द्वारा नृसिंहको शान्त किया था।

भगवान् शंकरके गृहपति-अवतारकी कथा
 नन्दीश्वर कहते हैं—हे ब्रह्मपुत्र ! पूर्वकालकी बात है, नर्मदा के रमणीय तटपर नर्मपुर नामका एक नगर था, जिसमें विश्वानर नामके एक मुनि निवास करते थे। वे पुण्यात्मा, शिवभक्त और जितेन्द्रिय थे। शुचिष्टती नामकी एक सदगुणवती कन्यासे उनका विवाह हुआ। एक दिन शुचिष्टतीने अपने पतिसे शिवके समान पुत्रप्राप्तिकी इच्छा व्यक्त की। इसके लिये मुनि विश्वानरने वाराणसी जाकर घोर तप किया। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् शंकर शुचिष्टतीके गर्भसे पुत्ररूपमें प्रकट हुए। स्वयं ब्रह्माजीने बालकका 'गृहपति' नाम रखा। उस बालककी अवस्थाका नौवाँ वर्ष अनेपर गृहपतिको देखनेके लिये वहाँ नारदजी पधारे। नारदजीने बालककी हस्तरेखा देखकर बालककी प्रशंसा की, पर साथ ही कहा कि मुझे शंका है कि इसके बारहवें वर्षमें इसपर बिजली अथवा अग्निद्वाय विघ्न आयेगा। यह कहकर नारदजी वहाँसे चले गये।

नारदकी बात सुनकर माता-पिता अत्यन्त शोकसन्तप्त होकर रुदन करने लगे। उनको रोते हुए देखकर गृहपतिने उन्हें आश्वस्त किया और कहा कि मैं मृत्युजयकी भलीभौति आराधना करके महाकालको भी जीत लूँगा। आपलोग पूर्ण रूपसे निश्चन्त हो जायें।

माता-पिताके चरणोंमें प्रणामकर गृहपति काशीपुरीमें जा पहुँचे, वहाँ पहले मणिकर्णिकामें स्नानकर भगवान् विश्वनाथका दर्शन किया। इसके अनन्तर गृहपतिने वहाँ शुभ दिनमें शिवलिंगकी स्थापना की और कठोर तप करने लगे।

कुछ समय बाद भगवान् सदाशिव वहाँ प्रकट हो गये और उन्होंने गृहपतिको वर प्रदान करते हुए कहा कि तुम अग्निका पद ग्रहण करनेवाले हो जाओ। तुम सभी देवताओंके वरदाता बनोगे। तुम समस्त प्राणियोंके अन्दर जठरागिनरूपसे विचरण करोगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह शिवलिंग तुम्हारे नामपर 'अग्नीश्वर' नामसे प्रसिद्ध होगा। जो लोग इस आनीश्वरलिंगके भक्त होंगे, उन्हें बिजली और अग्निका भय नहीं रह जायगा। उनकी कभी अकाल मृत्यु भी नहीं होगी।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर शिवजीने

गृहपतिके माता-पिताके सामने उस अग्निका दिक्षपति पदपर अभिषेक कर दिया और स्वयं उसी लिंगमें समा गये। हे तात ! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् शंकरके गृहपति नामक अग्न्यवतारका वर्णन किया। जो ब्राह्मण अग्निहोत्रपरायण होकर पंचार्णिका सेवन करते हैं, वे अग्निके समान वर्चस्वी होकर अग्निलोकमें विचरते हैं। जो शीतकालमें शीतनिवारणके निमित्त लकड़ियाँ दान करता है तथा जो श्रद्धापूर्वक किसी अनाथका अग्नि-संस्कार करा देता है, वह अग्निलोकमें प्रशंसित होता है। द्विजातियोंके लिये यह अग्नि परम कल्याणकारक है।

भगवान् शंकरके महाकाल आदि प्रमुख दस अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनकुमार ! अब आप शंकरजीके महाकाल आदि दस अवतारोंको भक्तिपूर्वक सुनिये।

उनमें प्रथम 'महाकाल' नामक अवतार है, जो सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इस अवतारमें उनकी शक्ति महाकाली है, जो भक्तोंको अभीष्ट पद प्रदान करती है।

दूसरा अवतार 'तार' नामसे विख्यात है, जिसकी शक्ति तारा है।

तीसरा अवतार 'बाल भुवनेश्वर' हैं, जिनकी शक्ति बाला भुवनेश्वरी हैं।

चौथा अवतार 'बोडश श्रीविद्येश'के रूपमें हुआ है, इनकी महाशक्ति बोडशी श्रीमहाविद्या हैं।

पाँचवाँ अवतार 'भैरव' नामसे प्रसिद्ध है, उनकी महाशक्ति गिरिजा भैरवी हैं।

शिवका छाता अवतार 'छिन्नमस्तक' है, जिनकी महाशक्ति छिन्नमस्तका गिरिजा हैं।

सातवें अवतारका नाम 'धूमवान्' है, इनकी शक्ति धूमावती है।

आठवाँ अवतार 'बगलामुख' है, जिनकी शक्ति बगलामुखी हैं।

नौवाँ अवतार 'मातंग' नामसे विख्यात है, जिनकी शक्ति मातंगी हैं।

दसवाँ अवतार 'कमल' नामक शम्भु हैं, इनकी

शक्ति पार्वतीका नाम कमला है।

शिवजीके ये दस अवतार हैं, जो सज्जनों एवं भक्तोंको सर्वदा सुख देनेवाले तथा उन्हें भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं।

शिवजीके दुर्वासावतार तथा हनुमदवतारका वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महामुने! अब तुम शम्भुके एक दूसरे चरितको, जिसमें शंकरजी धर्मके लिये दुर्वासा होकर प्रकट हुए थे, प्रेमपूर्वक श्रवण करो। अनसूयाके पति ब्रह्मवेचा अत्रिने ब्रह्माजीके निर्देशानुसार पलीसहित ऋक्षकुलपर्वतपर जाकर पुत्रीकी कामनासे घोर तप किया। उनके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर—तीनों उनके आश्रमपर गये और कहा—हमारे अंशसे तुम्हारे तीन पुत्र होंगे। ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा हुए, जो देवताओंके द्वारा समुद्रमें डाले जानेपर समुद्रसे प्रकट हुए थे। विष्णुके अंशसे श्रेष्ठ संन्यासपद्धतिको प्रचलित करनेवाले 'दत्त' प्रकट हुए और रुक्मिणीके अंशसे मुनिवर दुर्वासा ने जन्म लिया।

इन दुर्वासाने महाराज अम्बरीषकी परीक्षा की, इन्होंने भगवान् रामकी परीक्षा की, इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी परीक्षा की और उनको श्रीरुक्मिणीसहित रथमें जोता। उसके बाद दुर्वासा मुनिने अनेक विचित्र चरित्र किये।

मुने! अब तुम हनुमान्‌जीका चरित्र श्रवण करो। हनुमदूर्घटसे शिवजीने बड़ी उत्तम लीलाएँ कीं।

एक समयकी बात है, जब अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले भगवान् शम्भुको भगवान् विष्णुके मेहिनीरूपका दर्शन प्राप्त हुआ, तब कामदेवके बाणोंसे आहत होकर उन परमेश्वरने रामकार्यकी सिद्धिके लिये अपना वीर्यपात किया। तब सप्तरियोंने उस वीर्यको पत्रपुटकमें स्थापितकर रामकार्यकी सिद्धिके लिये गौतमकार्या अंजनीमें कानके गरस्ते स्थापित कर दिया। समय आनेपर उस गर्भसे शम्भु महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न वानर शरीर धारण करके उत्पन्न हुए। उनका नाम हनुमान् रखा गया। महाबली हनुमान् जब शिशु ही थे, उसी समय उदय होते हुए सूर्यबिम्बको छोटा-सा फल समझकर तुरन्त ही निगल गये। बादमें उन्होंने उसे महाबली सूर्य जानकर उगल

दिया। देवरियोंने उन्हें शिवका अवतार माना और बहुत-से वरदान दिये। फिर माताकी आजासे धीर-वीर हनुमान् सूर्यके निकट जाकर उनसे अनायास ही सारी विद्याएँ सीख लीं।

तदनन्तर नन्दीश्वरने भगवान् रामका सम्पूर्ण चरित्र संक्षेपसे वर्णन करके कहा—मुने! कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने सब तरहसे श्रीरामका कार्य सम्पूर्ण किया, नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं।

इस प्रकार मैंने हनुमान्‌जीका श्रेष्ठ चरित्र, जो सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंका दाता है, तुमसे वर्णन कर दिया।

भगवान् शिवका पिप्पलाद-अवतार

सनत्कुमारजी! अब आप महेश्वरके 'पिप्पलाद-अवतार' का वर्णन श्रवण करें।

एक समय देवताओंने वृत्रासुरकी सहायतासे इन्द्र आदि समस्त देवताओंको पराजित कर दिया। तब उन सभी देवताओंने तथा देवरियोंने ब्रह्मलोक जाकर ब्रह्माजीसे अपना दुःख कह सुनाया। ब्रह्माजीने सारा रहस्य प्रकट करते हुए कहा कि यह सब त्वष्टाकी करतूत है। त्वष्टाने ही तुमलोगोंका वध करनेके लिये तपस्याद्वारा इस महातेजस्सी वृत्रासुरको उत्पन्न किया। इसके वधका मैं एक उपाय बताता हूँ सुनो। जो दधीचि नामक तपस्वी महामुनि हैं, उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी आराधनाकर वज्रके समाज हड्डियोंवाला होनेका वरदान पाया था। आप लोग उनके पास जाकर अस्थियोंके लिये याचना कीजिये, वे अवश्य दे देंगे। फिर उन अस्थियोंसे वज्रदण्डका निर्माण करके तुम निश्चय ही उससे वृत्रासुरको मार डालना। ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर देवगुरु वृहस्पति देवताओंको साथ लेकर दधीचि ऋषिके आश्रमपर पहुँचे और वहाँ इन्द्रने विनप्र होकर दधीचिजीको प्रणाम किया। दधीचिने देवताओंके अभिप्रायको जान अपनी पली सुवर्चाको आश्रमसे अन्यत्र भेज दिया।

इन्हें कहा—मुने! हम सभी देवता तथा देवर्षि त्वष्टाद्वारा अपमानित होनेके कारण आपकी शरणमें आये हैं। आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान करें। आपकी अस्थियोंसे वज्रका निर्माणकर मैं उन देवद्रोहियोंका वध करूँगा।

दधीचि मुनिने अपने स्वामी भगवान् शिवका ध्यान करके अपना शरीर छोड़ दिया। तदनन्तर इन्हने शीघ्र ही स्वर्गसे सुरभि गौको बुलाकर उसके द्वारा उनके शरीरको चटवाया और उनकी अस्थियोंसे अस्त्र-निर्माण करनेके निमित्त विश्वकर्माको आज्ञा दी।

विश्वकर्माने अस्थियोंसे सम्पूर्ण अस्त्रोंका निर्माण कर दिया। उसके बाद इन्हने शीघ्रतासे वज्रके द्वारा पर्वत-शिखरके समान वृत्रासुरका सिर काट दिया।

उधर दधीचिकी पतिव्रता पत्नी सुवर्चा पुनः घर लौटीं तो अपने पतिको वहाँ न देखकर तथा देवताओंके अत्यन्त अशोभनीय कर्मको देखकर अत्यधिक रुष्ट होकर उन्हें शाप देते हुए कहा—हे देवगणो! इन्द्रसहित सभी देवता आजसे पशु हो जायें।

इसके बाद उस पतिव्रताने अपने पतिके लोकमें जानेकी इच्छा की और पवित्र काष्ठोंकी चिता बनायी। उसी समय आकाशवाणीने मुनिपत्नी सुवर्चसे कहा—हे प्राज्ञ! तुम्हरे उदरमें गर्भरूपसे मुनिका तेज विद्यमान है। तुम उसे प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न करो। सगर्भाको सती नहीं होना चाहिये—ऐसी बेदकी आज्ञा है।

तदनन्तर उनके उदरसे दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत परम दिव्य शरीरवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो साक्षात् रुद्रका अवतार था।

तत्पश्चात् पतिलोक जानेकी इच्छावाली सुवर्चने अपने पुत्रसे प्रेमपूर्वक कहा—हे तात! तुम बहुत समयतक इस पीपल वृक्षके समीप रहो, अब मुझे पतिलोक जानेके लिये अति प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान करो। मैं अपने पतिके साथ तुझ रुद्रस्वरूपका ध्यान करती रहूँगी।

सुवर्चकि गर्भसे पुत्ररूपसे पृथ्वीपर शिवजीको अवतरित हुआ जानकर ब्रह्मा, विष्णु तथा देवतागण वहाँ पहुँचे और बड़ा उत्सव मनाया। ब्रह्माजीने पीपल वृक्षहारा संरक्षित दधीचिके उस पुत्रका विधिवत् जातक आदि संस्कार करके उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा।

इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण महोत्सव मनाकर अपने-अपने स्थानको चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल वृक्षके नीचे संसारहितकी इच्छासे बहुत कालतक तप करते रहे।

कुछ समयके बाद पिप्पलादने राजा अनरण्यकी कन्या पद्मासे विवाह कर लिया। उन मुनिके दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब पिताके ही समान महात्मा और अतुल तपस्वी थे।

इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार मुनिवर पिप्पलादने नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं। उन कृपालुने जगत्में शनैश्चरकी पीड़ाको, जिसका निवारण करना सबकी शक्तिके बाहर था, देखकर लोगोंको यह वरदान दिया कि जन्मसे लेकर सोलह वर्षतककी आयुवाले मनुष्योंको तथा शिवभक्तोंको शनिपीड़ा नहीं हो सकती। यदि कहीं शनि मेरे वचनोंका अनादर करके उन मनुष्योंको पीड़ा पहुँचायेगा तो वह निःसन्देह भस्म हो जायगा।

इस प्रकार लीलासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले पिप्पलादका उत्तम चरित्र तुम्हें सुना दिया, यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

इसके अनन्तर नन्दीश्वरने विभिन्न अवतारोंका वर्णन करते हुए भगवान् शिवके द्विजेश्वरवतार, यतिनाथ एवं हंस अवतार, कृष्णदर्शन नामक अवतार, अवधूतेश्वर अवतार, भिक्षुवर्यावतार आदिकी कथाओंका वर्णन विशेष रूपमें प्रस्तुत किया।

भगवान् शिवका सुरेश्वरावतार

इसके पश्चात् नन्दीश्वरजी कहते हैं—सनत्कुमारजी! अब मैं परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन करता हूँ। उपमन्तु व्याघ्रपाद मुनिके पुत्र थे। उन्होंने पूर्वजन्ममें ही सिद्धि प्राप्त कर ली थी और वर्तमान जन्ममें मुनिकुमारके रूपमें प्रकट हुए थे। वे अपनी दरिद्रताके कारण शैशवावस्थासे ही माताके साथ मायाके घरमें रहते थे। एक दिन उन्हें बहुत कम दूध पीनेको मिला। वे अपनी मातासे बार-बार दूध माँगने लगे। उनकी तपस्विनी माताने कुछ बीजोंको सिलपर पीसकर और उन्हें पानीमें घोलकर कृत्रिम दूध बेटेको पीनेको दिया। उस नकली दूधको पीकर बालक उपमन्तु बोले—'यह तो दूध नहीं है!' इतना कहकर वे फिर रोने लगे।

माताने कहा—बेटा! हम लोग बनमें निवास करते हैं, हमें यहाँ दूध कहाँसे मिल सकता है? भगवान् शिवकी कृपाके बिना किसीको दूध नहीं मिलता।

माताकी यह बात सुनकर उपमन्युने भगवान् शिवकी आराधना करनेका निश्चय किया। वे तपस्याके लिये हिमालयपर्वतपर गये। वहाँ उन्होंने आठ ईटोंका एक मन्दिर बनाया, जिसमें मिट्टीके शिवलिंगकी स्थापना करके जंगलके पत्र-पुष्पादिसे पंचाक्षरमन्त्रके उच्चारणपूर्वक शिवकी पूजा करने लगे। माता पार्वती और शिवका ध्यान करके उनकी पूजा करनेके पश्चात वे पंचाक्षरमन्त्रका जप किया करते थे। जप करते हुए उन्होंने घोर तपस्या सम्पन्न की। भगवान् सदाशिव कृपापूर्वक प्रकट हो गये और उपमन्युको अपना पुत्र माना। उनका मस्तक सूँधकर कहा—वत्स! मैं तुम्हारा पिता और ये पार्वती देवी तुम्हारी माता हैं। तुम्हें आजसे सनातन कुमारत्व प्राप्त होगा। मैं तुम्हारे लिये दूध, दही और मधुके सहस्रों समुद्र देता हूँ। मैं तुम्हें अमरत्व तथा अपने गणोंका आधिपत्य प्रदान करता हूँ।

इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। उपमन्युने वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक घर आकर अपनी मातासे सब बातें बतायीं। माताको बड़ा हृष्ट हुआ। इस प्रकार मैंने तुमसे परमेश्वर शिवके सुरेश्वरवतारका वर्णन किया।

भगवान् शिवका किरातावतार

नन्दीश्वरजी कहते हैं—हे सनत्कुमारजी! अब मैं आशुतोष भगवान् शिवके किरातावतारका वर्णन करता हूँ, जिसमें उन्होंने अपने भक्त नरश्रेष्ठ अर्जुनकी 'मूक' नामक दैत्यसे रक्षा की और उनसे युद्ध-लीलामें प्रसन्न होकर उन्हें अपना अमोघ पाशुपतास्त्र प्रदान किया।

भगवान् शिवके इस पावन अवतारकी कथा इस प्रकार है—

पाण्डवोंके वनवासकालकी बात है। अर्जुन श्रीकृष्णकी सम्पति और व्यासजीके आदेशसे शस्त्रास्त्रोंकी प्राप्तिके लिये इन्द्रकीलपर्वतपर तपस्या कर रहे थे। वे भगवान् शंकरके पंचाक्षरमन्त्रका जप करते हुए तपमें सनाद्ध हो। उनकी घोर तपस्या देखकर देवताओंने भगवान् शंकरसे उन्हें वर देनेकी प्रार्थना की। उधर जब दुर्योधनको अर्जुनकी तपस्याकी बात जात हुई, तो उस दुरात्माने मूक नामक एक मायावी राक्षसको उनका वध करनेके लिये भेजा।

वह दुष्ट अमुर शूकरका वेश धारणकर अर्जुनके

समीप पहुँचा और वहाँके पर्वतशिखरों और वृक्षोंको ढहने लगा। उसकी भयंकर गुराहटसे दसों दिशाएँ गौँज रही थीं। यह देखकर भक्तहितकारी भगवान् शंकर किरातवेश धारणकर प्रकट हुए।

शूकरको अपनी ओर आते देखकर अर्जुनने उसपर शर-संधान किया, ठीक उसी समय किरातवेशधारी भगवान् शंकरने भी अपने भक्त अर्जुनकी रक्षाहेतु उस शूकररूपधारी दानव मूकपर अपना बाण चलाया। दोनों बाण एक ही साथ उस शूकरके शरीरमें प्रविष्ट हो गये और वह वहीं गिरकर मर गया। उसे मारकर अर्जुनने अपने आराध्य भगवान् शंकरका ध्यान किया और अपने बाणको उठानेके लिये उस शूकरके पास पहुँचे। इतनेमें ही किरातवेशधारी शिवका एक गण भी बनेचरके रूपमें बाण लेनेके लिये आ पहुँचा और अर्जुनको बाण उठानेसे रोककर कहने लगा कि यह मेरे स्वामीका बाण है, जिसे उन्होंने तुम्हारी रक्षाके लिये चलाया था, परंतु तुम तो इतने कृतज्ञ हो कि उपकार माननेकी बजाय उनके बाणको ही चुराये ले रहे हो। यदि तुझे बाणकी ही आवश्यकता है तो मेरे स्वामीसे माँग ले, वे ऐसे बहुत-से बाण तुझे दे सकते हैं।

अर्जुनने कहा—यह मेरा बाण है, इसपर मेरा नाम अंकित है। इस बाणको मैं तुझे ले जाने देकर अपने कुलकी कीर्तिमें दाग नहीं लगवा सकता। भगवान् शंकरकी कृपासे मैं स्वयं अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हूँ। अगर तेरे स्वामीमें बल है तो वे आकर मुझसे युद्ध करें। दूतने अर्जुनकी कही हुई सारी बातें जाकर अपने स्वामीसे विशेष रूपसे कह दीं, जिसे सुनकर किरातवेशधारी भगवान् शिव अपने भीलरूपी गणोंकी महान् सेना लेकर अर्जुनके सम्मुख आ गये। उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने भगवान् शिवका ध्यानकर अत्यन्त भीषण संग्राम छेड़ दिया। उस घोर युद्धमें अर्जुनने शिवजीका ध्यान किया, जिससे उनका बल बढ़ गया। तदनन्तर उन्होंने किरातवेशधारी शिवके दोनों पैर पकड़कर उन्हें चुमाना शुरू कर दिया। लीलास्वरूपधारी लीलामय भगवान् शिव भक्तपराधीन होनेके कारण हँसते रहे। तप्तश्चात् उन्होंने अपना वह सौम्य एवं अद्भुत रूप प्रकट किया,

जिसका अर्जुन चिन्तन करते थे।

किरातके उस सुन्दर रूपको देखकर अर्जुनको महान् विस्मय हुआ। वे लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने मस्तक छूकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया और खिन्नमन हो अपनेको धिक्कारने लगे। उन्हें पश्चात्ताप करते देखकर भक्तवत्सल भगवान् महेश्वरका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने कहा—पार्थ! तुम तो मेरे परमभक्त हो, यह तो मैंने तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये ऐसी लीला रखी थी। उन्होंने प्रेमपूर्वक अर्जुनका आलिंगन किया और बोले—हे पाण्डवश्रेष्ठ! मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो।

यह सुनकर प्रसन्नमन अर्जुनने अपने आराध्य भगवान् शिवकी वेदसम्मत स्तुति की और भगवान्

शिवके पुनः 'चर माँगो' कहनेपर नतमस्तक हो उन्हें प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक गद्गाद वाणीमें कहा—हे विष्णो! मेरे संकट तो आपके दर्शनसे ही दूर हो गये हैं, अब जिस प्रकार मुझे इस लोककी परासिद्धि प्राप्त हो सके, वैसी कृपा कीजिये।

पाण्डुपुत्र अर्जुनमें अपनी अनन्य भक्ति देखकर भगवान् महेश्वरने उन्हें अपना पाशुपत नामक महान् अस्त्र प्रदान किया और समस्त शत्रुओंपर विजय-लाभ पानेका आशीर्वाद दिया।

हे मुने! इस प्रकार मैंने लीलामय परम कौतुकी भगवान् शंकरके किरातावतारका वर्णन किया। जो इसे सुनता अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

कोटि रुद्रसंहिता

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंका नाम-निर्देश

ऋषि बोले—सूतजी! आने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी कामनासे नाना प्रकारके आख्यानोंसे युक्त जो शिवावतारका माहात्म्य बताया है, वह बहुत ही उत्तम है। तात! आप पुनः शिवके परम उत्तम माहात्म्यका तथा शिवलिङ्गकी महिमाका प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये। भूमण्डलमें अथवा अन्य स्थलोंमें भी जो-जो प्रसिद्ध शुभ शिवलिंग विराजमान हैं, भगवान् शिवके उन सभी दिव्य लिंगोंका समस्त लोकोंके हितकी इच्छासे आप वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! सम्पूर्ण तीर्थ लिंगमय हैं। सब कुछ लिंगमें ही प्रतिष्ठित है। उन शिवलिंगोंकी कोई गणना नहीं है तथापि मैं उनका किंचित् वर्णन करता हूँ।

संसारमें कोई भी वस्तु शिवके स्वरूपसे भिन्न नहीं है। मुनिश्रेष्ठ शीनक! इस भूमण्डलपर जो मुख्य-मुख्य ज्योतिर्लिंग हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ। उनका नाम सुननेमात्रसे पाप दूर हो जाते हैं—

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उत्तरायिनीमें महाकाल, औंकारार्थीरथमें परमेश्वर, हिमालयके शिखरपर केदार, डाकिनीश्वरमें भीमशंकर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गोदावरीके तटपर त्र्यम्बक, चिताभूमिमें वैद्यनाथ,

दारकावनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर तथा शिवालयमें घुश्मेश्वरका स्मरण करे। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसके सभी प्रकारके पाप छूट जाते हैं और उसे सम्पूर्ण सिद्धियोंका फल प्राप्त हो जाता है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।

उत्तरायिन्यां महाकालमोङ्गरे परमेश्वरम्॥

केदारं हिमवत्पुष्टे डाकिन्यां भीमशङ्करम्॥

वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥

वैद्यनाथं चिताभूमी नागेशं दारकावने॥

सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं तु शिवालये॥

द्वादशैतानि नामानि ग्रातरुत्थाय यः पठेत्॥

सर्वपार्यनिर्दुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥

इन लिंगोंपर चढ़ाया गया प्रसाद सर्वदा ग्रहण करनेयोग्य होता है, उसे ग्राद्वासे विशेष यत्पूर्वक ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करनेवालेके समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं।

हे मुनीश्वरो! म्लेच्छ, अन्तर्यज अथवा नपुंसक कोई भी हो, वह ज्योतिर्लिंगके दर्शनके प्रभावसे द्विजकुलमें जन्म लेकर मुक्त हो जाता है। इसलिये ज्योतिर्लिंगका दर्शन अवश्य करना चाहिये।

इस प्रकार संक्षेपमें इन ज्योतिलिंगोंके दर्शनके फलका वर्णन किया गया, अब इसके अनन्तर इनके उपलिंगोंका वर्णन भी यहाँ विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

काशी आदिके विभिन्न लिंगोंका वर्णन

सूतजी कहते हैं—गंगाके तटपर परम प्रसिद्ध काशीनगरी है, जो सबको मुक्ति प्रदान करनेवाली है। उसे लिंगमयी ही जानना चाहिये। वह सदाशिवकी निवास-स्थली मानी गयी है। इतना कहकर सूतजीने काशीके अविमुक्त, कृतिवासेश्वर, तिलभाण्डेश्वर, दशश्वरमधेश्वर इत्यादि और गंगासागर आदिके संगमेश्वर, भूतेश्वर, नारीश्वर, बदुकेश्वर, पूरेश्वर, सिद्धनाथेश्वर, दूरेश्वर, शृङ्गेश्वर, वैद्यनाथ, जप्येश्वर, गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश, कामेश, विमलेश्वर; प्रयागके ब्रह्मेश्वर, सोमेश्वर, भारद्वाजेश्वर, शूलटङ्गेश्वर, माधवेश तथा अयोध्याके नागेश आदि अनेक प्रसिद्ध शिवलिंगोंका वर्णन किया।

अत्रीश्वरका प्राकृत्य एवं मन्दाकिनी

गंगाका आविर्भाव

सूतजी बोले—ब्रह्मपुरीके समीप चित्रकूटपर्वतपर मत्तगजेन्द्र नामक लिंग है, उसके पूर्वमें कटीश्वर नामक लिंग है। गोदावरी नदीके पश्चिमकी ओर पशुपति नामक लिंग है। दक्षिण दिशमें एक अत्रीश्वर नामक लिंग है, जिसके रूपमें साकात् शिवजीने अपने अंशसे स्वयं प्रकट होकर समस्त प्राणियोंको जीवनदान दिया था।

सूतजी आगे कहते हैं—हे शिष्ट ऋषियो! चित्रकूटके समीप दक्षिण दिशामें कामद नामक एक विशाल बन है, वहाँ ब्रह्माके पुत्र महर्षि अत्रि अपनी पत्नी अनसूयाके साथ अति कठिन तप करते थे। मुनिवर अत्रि स्वयं आसनपर स्थिर हो समर्थियें लीन हो गये तथा आत्मामें स्थित निर्विकार शिवस्वरूप परमज्योतिका ध्यान करने लगे। पतित्रता अनसूया प्रसन्नाताके साथ निरन्तर उन मुनिश्रेष्ठकी सेवा करने लगीं। वे सुन्दर पार्थिव शिवलिंग बनाकर मन्त्रके द्वारा विधिवत् मानस-उपचारोंसे पूजन करती थीं और बारम्बार शंकरजीकी सेवाकर भक्तिसे उनकी स्तुति करती थीं। उन अत्रिकी तपस्या तथा अनसूयाके शिवाराधनसे प्रसन्न होकर सम्पूर्ण

देवता, ऋषिगण तथा गंगा आदि सभी नदियाँ उन दोनोंका दर्शन करनेके लिये प्रेमपूर्वक वहाँ आये और उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हुए। वे अत्रिके शिवाराधन और अनसूयाकी पतिसेवाकी प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार उनकी प्रशंसा करके वे जैसे आये थे, वैसे ही अपने-अपने स्थानको चले गये, परंतु गंगाजी और शिवजी वहाँ स्थित रहे।

एक दिन अनसूयाजी पतिके लिये जल लाने वनकी ओर जा रही थीं, उनकी उस पतिभक्तिसे प्रसन्न होकर गंगाजी बोलीं—‘हे देवि! मैं तुम्हारे धर्माचरण और शिवाराधनसे तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहती हो, उसे माँगो।’ तब अनसूयाजीने कहा—यदि आप प्रसन्न हैं और मुझपर आपकी कृपा है तो हे देवि! इस तपोवनमें आप स्थिर होकर निवास करें।

गंगाजी बोलीं—हे अनसूये! यदि तुम भगवान् शंकरके अर्चन और अपने स्वामीकी वर्षभरकी सेवाका फल मुझे प्रदान करो तो मैं देवताओंके उपकारके लिये यहाँ स्थित रहूँगी। पतित्रता स्त्रीको देखकर मेरा पाप नष्ट हो जाता है और मैं विशेषरूपसे शुद्ध हो जाती हूँ। पतित्रता स्त्री पार्वतीके तुल्य है। यह बचन सुनकर अनसूयाने वर्षभरका साय पुण्य गंगाको दे दिया। अनसूयाके इस महान् प्रतित्रत कर्मको देखकर महादेव प्रसन्न हो गये और उसी क्षण पार्थिव लिंगसे प्रकट हो गये। वे सदाशिव अत्रीश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए और गंगाजी भी अपनी मायासे वहाँ स्थित हो गयीं, जो मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध हुईं।

नर्मदाके तटपर नन्दिकेश्वरका प्रादुर्भाव

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने अत्रीश्वरकी उत्पत्ति एवं माहात्म्य आपसे कहा, जो समस्त मनोरथोंको पूर्णकर भक्तिको बढ़ानेवाला है।

सूतजी कहते हैं—हे सुन्त्रो! रेवानदीके तटपर जितने शिवलिंग हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। रुद्रस्वरूप वह रेवा दर्शनमात्रसे पायोंका नाश करती है और उसमें जो भी पाणपा रित्यां वै शिवस्वरूप हैं। भोग एवं मोक्षको देनेवाले कई प्रमुख शिवलिंग वहाँ स्थित हैं, जिनमें नन्दिकेदेव सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण

करनेवाले कहे गये हैं। जो रेवा नदीके तटपर स्नान करके भगवान् नन्दिकेशवरका पूजन करता है, उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

ऋषिगणोंके पूछनेपर सूतजीने कहा—महर्षियो ! पूर्व समयमें किसी ब्राह्मणिकी ऋषिका नामक एक कन्या थी। उसने अपनी उस कन्याका विवाह विधानपूर्वक किसी ब्राह्मणसे कर दिया। वह द्विजपत्नी अपने पूर्व जन्मके किसी अशुभ कर्मके प्रभावसे बाल्यावस्थामें ही विध्वा हो गयी। तब वह ब्राह्मणपत्नी ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तटपर हो पार्थिव—पूजनपूर्वक कठोर तप करने लगी। उसी समय महामायावी 'मूढ़' नामक दुष्ट असुर कामबाणसे पीड़ित होकर वहाँ गया तथा उसपस्था करती हुई उस सुन्दरी स्त्रीको देखकर अनेक प्रकारका प्रलोभन देकर उसके साथ सहवासकी याचना करने लगा। तपस्थामें सलान उस ब्राह्मणीद्वारा तिरस्कृत हुए उसपर अत्यन्त ब्रोध किया, अपना विकट रूप दिखाते हुए दुर्वर्चन कहकर डराने लगा। तब शिव-परायण वह द्विजपत्नी भयभीत होकर अत्यन्त व्याकुल हो 'शिव' नामका जप करती हुई अपने धर्मकी रक्षाके लिये शिवजीकी शरणमें चली गयी। तब शरणागतकी रक्षा, सदाचारकी स्थापना तथा उस ब्राह्मणीको आनन्द प्रदान करनेके लिये सदाशिव वहाँ प्रकट हो गये।

भक्तवत्सल भगवान् शंकरने उस दैत्यराज मूढ़को तत्काल भस्म कर दिया और ब्राह्मणीकी ओर कृपा-दृष्टिसे देखते हुए कहा—'वर माँगो।'

ऋषिका बोली—देवदेव महादेव ! आप मुझे अपने चरणोंकी परम उत्तम एवं अनन्य धक्की प्रदान कीजिये। प्रभो ! मेरी दूसरी प्रार्थना है कि आप लोककल्याणके निर्मित यहाँपर निवास कीजिये। भगवान् शंकरने कहा—हे ऋषिके ! तुमने जो—जो वर माँगे, उन सभीको मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ।

इस अवसरपर शिवजीको प्रकट हुआ जानकर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता वहाँ पहुँच गये और प्रसन्नचित होकर उनकी स्तुति की। इसी समय भगवती गंगाजीने वहाँ आकर साध्वी ऋषिकाके भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नचित होकर उससे कहा—हे साध्वी ! तुम वैशाख यहीनेमें एक दिन मेरे कल्याणके लिये अपने समीपमें रहनेका मुझे वचन दो, जिससे मैं एक दिन तुम्हारा

सामीप्य प्राप्त करूँ। गंगाजीका वचन सुनकर उस साध्वीने इसे स्वीकार किया। शिवजी भी उसके द्वारा निर्मित उस पार्थिव लिंगमें अपने पूर्णाशसे प्रविष्ट हो गये। उसी दिनसे नर्मदाका यह तीर्थ ऐसा उत्तम और परम पावन तीर्थ हो गया, जहाँ शिवजी नन्दिकेश नामसे प्रसिद्ध होकर स्थित हैं। गंगा भी प्रतिवर्ष वैशाखमासकी सप्तमीके दिन सबके कल्याणकी इच्छासे तथा अपने उस पापको धोनेके लिये वहाँ जाती हैं, जो मनुष्योंसे वे ग्रहण करती हैं।

पश्चिमदिशाके शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें

महाबलेश्वरलिंगका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—हे ब्राह्मणो ! अब पश्चिम दिशामें जो—जो लिंग भूतलपर प्रसिद्ध हैं, उन शिवलिंगोंको सद्वक्तिपूर्वक सुनिये।

कपिलानगरीमें कालेश्वर एवं रामेश्वर नामक दो महादिव्य लिंग हैं, जो दर्शनमात्रसे पापोंको नष्ट करते हैं। पश्चिम सागरके तटपर महासिंहदेश्वर लिंग है, जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकंप्रदान करता है।

पश्चिम समुद्रके तटपर गोकर्ण नामक उत्तम क्षेत्र है। यह ब्रह्महत्यादि पापोंको नष्ट करनेवाला और सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। गोकर्णक्षेत्रमें करोड़ों शिवलिंग हैं और पग—पगपर असंख्य तीर्थ हैं। अधिक व्या कहें, गोकर्णक्षेत्रमें स्थित सभी लिंग शिवस्वरूप हैं और वहाँका समस्त जल तीर्थस्वरूप है।

गोकर्णक्षेत्रमें स्थित महाबलेश्वर शिवलिंग कृतयुगमें श्वेतवर्ण, त्रेतामें लोहितवर्ण, द्वापरमें पीतवर्ण और कलियुगमें श्यामवर्णका हो जाता है। महापाप करनेवाले लोग भी यहाँ गोकर्णक्षेत्रमें विराजमान महाबलेश्वर लिंगकी पूजाकर 'शिव' पदको प्राप्त हुए हैं।

उत्तरदिशामें विद्यमान शिवलिंगोंका वर्णन

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! अब मैं उत्तरदिशामें विराजमान मुख्य—मुख्य शिवलिंगोंका वर्णन कर रहा हूँ।

गोकर्ण नामक एक दूसरा भी पापनाशक क्षेत्र है, वहाँपर एक विस्तृत महाबन है, जिसमें चन्द्रभाल नामक उत्तम शिवलिंग है, जिसे रावण सद्वक्तिपूर्वक लाया था। गोकर्णमें स्नानकर तथा चन्द्रभालका पूजनकर मनुष्य अवश्य ही शिवलोकको प्राप्त करता है।

मित्रिषि नामक उत्तम तीर्थमें दाधीच नामक शिवलिंग है, इसे दधीचिमुनिने स्थापित किया था। वहाँ जाकर विधिपूर्वक स्नानकर दाधीचेश्वरका आदरपूर्वक पूजन अवश्य करना चाहिये।

नैमित्यारण्यमें सभी ऋषियोंद्वारा स्थापित ऋषीश्वर नामक शिवलिंग है, उसके दर्शन एवं पूजनसे पापी लोगोंको भी भोग तथा मोक्ष प्राप्त होता है। देवप्रयागतीर्थमें ललितेश्वर नामक शिवलिंग है, उसकी पूजा करनेसे सभी प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं।

पृथ्वीपर प्रसिद्ध नेपाल नामक पुरीमें पशुपतीश्वर नामक शिवलिंग है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करता है। इसके समीप मुक्तिनाथ नामक अत्यन्त अद्भुत शिवलिंग है, उसके दर्शन एवं अर्चनसे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होते हैं।

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंका वर्णन

आगे के अध्यायोंमें हाटकेश्वर लिंग एवं अन्धकेश्वर लिंग आदि लिंगोंकी महिमाका वर्णन करनेके उपरान्त सूतजीने द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके प्रातुर्भवकी कथा एवं उनकी महिमाका वर्णन कई अध्यायोंमें विस्तारपूर्वक किया है।

मणिकर्णिका एवं काशीका प्राकट्य

सोमनाथ, महाकाल, औंकारेश्वर, केदारेश्वर एवं भीमशंकर इत्यादि ज्योतिर्लिंगोंकी कथाके अनन्तर विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग वाराणसी, मणिकर्णिका एवं पंचक्रोशीकी महत्वाका प्रतिपादन करते हुए सूतजी कहते हैं—संसारमें जो भी कोई वस्तु दिखायी पड़ती है, वह सच्चिदानन्द-स्वरूप, निर्विकार एवं सनातन ब्रह्मरूप है। अपने कैवल्य (अहंत) भावमें ही रमनेवाले उन अद्वितीय परमात्मामें कभी एक-से दो हो जानेकी इच्छा जाग्रत् हुई। फिर वे ही परमात्मा सगुणरूपमें प्रकट होकर शिव कहलाये। वे ही स्त्री तथा पुरुषके भेदसे दो रूपोंमें हो गये। उनमें जो पुरुष था वह 'शिव' एवं जो स्त्री थी वह शक्ति कही गयी। उन चिदानन्दस्वरूप शिव एवं शक्तिने स्वयं अदृष्ट रहकर स्वभावसे ही दो चेतनों (प्रकृति और पुरुष)-की सृष्टि की। जब इस प्रकृति और पुरुषने अपनी जननी एवं जनकको नहीं देखा तब वे महान् संशयमें पड़ गये। उस समय निर्गुण परमात्मासे आकाशवाणी प्रकट हुई कि तुम

दोनों तप करो, उसीसे उत्तम सृष्टि होगी। तब निर्गुण शिवने अन्तरिक्षमें स्थित सभी सामग्रियोंसे युक्त पंचक्रोश परिमाणवाला एक शुभ तथा सुन्दर नगर बनाया, जो कि उनका अपना ही स्वरूप था। उस नगरको शिवजीने पुरुषरूप विष्णुके समीप भेज दिया।

विष्णुने सृष्टिकी कामनासे शिवजीका ध्यान करते हुए बहुत कालपर्यन्त तप किया। तपस्याके श्रमसे उनके शरीरसे अनेक जलधाराएँ उत्पन्न हो गयीं, जिसके कारण वहाँ कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था। तब इस आश्चर्यको देखकर विष्णुने अपना सिर हिला दिया। उसी समय विष्णुके कानसे एक मणि गिर गयी, वही मणिकर्णिका नामसे एक महान् तीर्थ हो गया। जब वह पंचक्रोशात्मक नगरी जलराशिमें झूबने लगी, तब निर्गुण शिवने उस शीघ्र ही अपने त्रिशूलपर धारण कर लिया और विष्णुने अपनी पत्नी प्रकृतिके साथ वहीं शयन किया। तब उनके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने ब्रह्माण्डमें चौदह लोकोंका निर्माण किया। ब्रह्माण्डका विस्तार महर्षियोंने ५० करोड़ योजन बताया है। फिर भगवान् शिवने यह सोचा कि ब्रह्माण्डके भीतर अपने-अपने कर्मसे बँधे हुए प्राणी मुझे किस प्रकारसे प्राप्त करेंगे—ऐसा विचारकर उन्होंने पंचक्रोशीको ब्रह्माण्डसे अलग रखा। यह काशी लोकका कल्याण करनेवाली कर्म-बन्धनका विनाश करनेवाली, मोक्षतत्त्वको प्रकाशित करनेवाली तथा ज्ञान प्रदान करनेवाली मुझे अत्यन्त प्रिय है। परमात्मा शिवने अविमुक्त नामक लिंगको स्वयं वहीं स्थापित किया और कहा—‘हे मेरे अंशस्वरूप! तुम मेरे इस क्षेत्रका कभी त्याग नहीं करना।’ ऐसा कहकर भगवान् सदाशिवने उस काशीपुरीको स्वयं अपने त्रिशूलसे उतारकर मर्त्यलोक संसारमें स्थापित किया। ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होनेपर जब सारे जगत्का प्रलय हो जाता है तब भी इस काशीपुरीका नाश नहीं होता। उस समय भगवान् शिव इसे त्रिशूलपर धारण कर लेते हैं और जब ब्रह्माद्वारा पुनः मेरी सृष्टि की जाती है तब उसे फिर वे इस भूतलपर स्थापित कर देते हैं। कर्मोंका कर्षण करनेसे ही इस पुरीको ‘काशी’ कहते हैं। काशीमें अविमुक्तेश्वर

लिंग सदा विराजमान रहता है। यह महापातकी पुरुषोंको भी मुक्त करनेवाला है।

हे मुनीश्वरो! अन्यत्र मोक्षप्रद क्षेत्रोंमें सारूप्य आदि मुक्ति प्राप्त होती है, किंतु यहाँ प्राणियोंको सर्वोत्तम सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। जिनकी कहीं गति नहीं होती, उनके लिये वाराणसीपुरी ही गति है। सभी देवता यहाँ मृत्युकी इच्छा करते हैं; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या। कैलासपति जो भीतरसे सतोगुणी और बाहरसे तमोगुणी कहे गये हैं, वे रुद्रके नामसे विद्युत हैं। वे निर्णुण होते हुए सगुणरूपमें प्रकट हुए शिव हैं। उन्होंने बारम्बार प्रणाम करके निर्णुण शिवसे कहा—हे विश्वनाथ! आप यहाँ रहकर जीवोंका उद्धार करें। तदनन्तर मन तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले अविमुक्तने भी प्रार्थनापूर्वक कहा—देव! काशीपुरीको आप अपनी राजधानी स्वीकार करें। मैं अचिन्त्य सुखकी प्राप्तिके लिये यहाँ सदा आपका ध्यान लगाये स्थिर भावसे बैठा रहूँगा। आप ही मुक्ति देनेवाले तथा सम्पूर्ण कामनाओंके पूर्णकर्ता हैं, दूसरा कोई नहीं। अतः आप परोपकारके लिये उमासहित यहाँ विराजमान रहें।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! जब शंकरने भगवान् विश्वनाथसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब सर्वेश्वर शिव समस्त लोकोंका उपकार करनेके लिये वहाँ विराजमान हो गये। जिस दिनसे भगवान् शिव काशीमें आ गये, उसी दिनसे काशी सर्वश्रेष्ठ पुरी हो गयी।

वाराणसी तथा विश्वेश्वरका माहात्म्य

सूतजी बोले—एक समयकी बात है, देवो पार्वतीने संसारके हितकी कामनासे पूरी प्रसन्नताके साथ भगवान् शिवसे अविमुक्तक्षेत्र और अविमुक्त लिंगका महत्व पूछा।

तब परमेश्वर शिवने कहा—यह वाराणसी सदा मेरा गोपनीय क्षेत्र है तथा सब प्रकारसे सभी प्राणियोंके मोक्षका हेतु भी है। वाराणसीपुरीमें निवास करना मुझे सदा ही अच्छा लगता है। जिस कारणसे मैं सब कुछ छोड़कर काशीमें रहता हूँ, उसे बताता हूँ, सुनो। जो मेरा भक्त है और जो मेरे तत्त्वका ज्ञानी है, वे दोनों ही मुक्तिके भागी हैं, उन्हें तीर्थकी

अपेक्षा नहीं है। उन दोनोंको ही जीवन्मुक्त समझना चाहिये। वे जहाँ कहीं भी मरें, उन्हें शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह मैंने निश्चित बात कही है।

हे देवि! इस सर्वश्रेष्ठ अविमुक्त नामक तीर्थमें जो विशेषता है, उसे तुम ध्यान देकर सुनो। सभी वर्ण तथा आश्रमके लोग चाहे वे बालक हों, युवा हों अथवा वृद्ध हों, इस पुरीमें मरनेपर अवश्य मुक्त हो जाते हैं। स्त्री अपवित्र हो या पवित्र, कुमारी हो या विवाहिता, विधवा, बन्ध्या, रजस्वला, प्रसूता अथवा असंस्कृता—चाहे कैसी भी स्त्री हो, यदि वह इस क्षेत्रमें मर जाय तो मुक्ति प्राप्त कर लेती है, इसमें संशय नहीं है। स्वेदज, अण्डज, उद्दिष्ट अथवा जरायुज—ये सभी प्राणी यहाँ मरनेपर जैसा मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं।

हे देवि! यहाँ न ज्ञानकी अपेक्षा है, न भक्तिकी अपेक्षा है, न सत्कर्मकी अपेक्षा है और न दानकी ही अपेक्षा। यहाँ न संस्कारकी अपेक्षा और न ध्यानकी ही अपेक्षा है। यहाँ न नाम-कीर्तन अथवा पूजनकी अपेक्षा है तथा उत्तम जातिकी भी कोई अपेक्षा नहीं है, जो कोई भी मनुष्य मेरे इस मोक्षदायक क्षेत्रमें निवास करता है, वह चाहे जिस किसी प्रकारसे मरा हो, निश्चय ही मोक्षको प्राप्त कर लेता है। अपनी इच्छानुसार भोजन, शयन, क्रीड़ा आदि विविध क्रियाओंको करता हुआ भी अविमुक्तक्षेत्रमें प्राणत्याग करनेवाला प्राणी मोक्षका अधिकारी हो जाता है।

यह क्षेत्र चारों दिशाओंमें सभी ओर पाँच कोसतक फैला हुआ कहा गया है। इसमें कहीं भी मर जानेपर प्राणीको अमृतत्वकी प्राप्ति होती है।

हे पार्वती! शुभ और अशुभ कर्मका फल जीवको अवश्य भोगना पड़ता है। अशुभ कर्म निश्चय ही नरकके लिये होता है एवं शुभ कर्म स्वर्गके लिये होता है। दोनों तरहके कर्मोंसे मनुष्यलोकमें जन्म कहा गया है। शुभाशुभ कर्मोंके न्यूनाधिक से उत्तम तथा अधिम शरीर प्राप्त होते हैं, किंतु जब दोनोंका क्षय हो जाता है, तब मुक्ति होती है; यह सत्य है। प्रारब्ध-कर्मका नाश केवल उसके भोगसे ही होता है, इसके अतिरिक्त कोई

उपाय नहीं है। सम्पूर्ण कर्मोंका नाश काशीपुरीके अतिरिक्त कहीं नहीं होता। सभी तीर्थ सुलभ हैं, परंतु काशीपुरी दुर्लभ है। यदि पूर्वजन्ममें आदरपूर्वक काशीका दर्शन किया गया है, तभी काशीमें आकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है।

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार काशीपुरी तथा विश्वेश्वरलिंगका अपरिमित माहात्म्य है, जो सत्पुरुषोंको भोग और मोक्ष प्रदान करता है।

इसके अनन्तर सूतजीने त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यका वर्णन करते हुए गौतम ऋषिके प्रभावका वर्णन किया तथा गौतमी-गंगाके प्रादुर्भावका आल्खान सुनाया। इसके अनन्तर सूतजीने राक्षसराज रावणद्वारा स्थापित वैद्यनाथेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यका वर्णन किया। तदनन्तर उन्होंने नागेश्वर नामक परमश्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति एवं माहात्म्यका वर्णन किया।

इसके साथ ही रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग एवं शुश्रेश्वर ज्योतिर्लिंगके आविर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन विस्तारसे आगे किया गया है, जो स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इस प्रकार इन बारह ज्योतिर्लिंगोंकी कथा जो सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा उसे भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होती है।

भगवान् विष्णुको सुदर्शन चक्र प्राप्त होनेकी कथा तथा शिवसहस्रनामस्तोत्रकी महिमा

ऋषियोंके यह पूछनेपर कि भगवान् विष्णुको महेश्वरसे सुदर्शन चक्रकी प्राप्ति कैसे हुई; सूतजी कहते हैं कि एक समयकी बात है, दैत्य अत्यन्त प्रबल होकर धर्मका लोप करने लगे। उनसे पीड़ित होकर देवताओंने भगवान् विष्णुसे अपना दुःख कहा। तब श्रीहरि कैलास पर्वतपर जाकर हरीश्वरलिंगकी स्थापनाकर भगवान् शिवकी उनके सहस्र नामोंसे अर्चना करने लगे। वे प्रत्येक नामपर एक कमलपुष्प छढ़ाते थे।

एक दिन भगवान् शंकरने उनके भक्तिभावकी परीक्षा सेनेके लिये उनके द्वारा लाये गये एक हजार कमलोंमेंसे एक कमल छिपा लिया। तब एक कमलके न मिलनेपर श्रीहरिने उस कमलको प्राप्त करनेके लिये सारी पृथ्वीका

ध्रुमण किया, परंतु उसके प्राप्त न होनेपर अपने कमल-सदृश नेत्रोंको ही निकालकर अर्पण कर दिया। यह देख सर्वदुःखहारी भगवान् शंकर बहुत प्रसन्न हुए और उनके सामने प्रकट हो गये और विष्णुसे वर माँगनेको कहा। विष्णुजी बोले—हे सदाशिव! दैत्योंने सारे संसारको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है। मेरा आयुध दैत्योंको मारनेमें समर्थ नहीं हो पा रहा है, अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ।

विष्णुका यह वचन सुनकर देवाधिदेव महेश्वरने उन्हें अपना महातेजस्वी सुदर्शन चक्र प्रदान किया। भगवान् विष्णुने उस चक्रसे शीघ्र ही उन महाबली राक्षसोंको विनष्ट कर दिया। इस प्रकार संसारमें शान्ति हुई। देवता तथा अन्य सभी लोग सुखी हो गये। भगवान् शिवने अपना सुदर्शन चक्र देते हुए कहा—‘हे! सब प्रकारके अनर्थोंकी शान्तिके लिये तुम्हें मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। अनेकानेक दुःखोंका नाश करनेके लिये इस सहस्रनामस्तोत्रका पाठ करते रहना चाहिये। यह उत्तम स्तोत्र रोगका नाशक, विद्या और धन देनेवाला, सम्पूर्ण अभीष्टकी प्राप्ति करनेवाला, पुण्यजनक तथा सदा ही मेरी भक्ति देनेवाला है।’

इस प्रकार कहकर सर्वदेवेश्वर भगवान् रुद्र श्रीहरिके अंगका स्पर्शकर उनके देखते-देखते अनर्थान्त हो गये।

ऋषियोंके पूछनेपर सूतजीने शिवसहस्रनामस्तोत्रको सुनाकर उसकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा कि जो प्राप्तःकाल नित्य भगवान् शिवकी पूजा करनेके उपरान्त उनके सम्मुख इसका पाठ करता है, वह इस लोकमें समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त करता है और अन्तमें सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है।

महाशिवरत्रिव्रतकी विधि एवं महिमा

ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—हे व्यासशिष्य! किस ब्रतसे सन्तुष्ट होकर भगवान् शिव उत्तम सुख प्रदान करते हैं? जिस ब्रतके अनुसानसे भक्तजनोंको भोग और मोक्षकी प्राप्ति हो सके, उसका आप विशेष रूपसे वर्णन कीजिये।

इसपर सूतजीने कहा—महर्षियो! यही प्रश्न किसी समय ब्रह्मा, विष्णु तथा पार्वतीजीने शिवजीसे पूछा था, उसके उत्तरमें शिवजीने जो कुछ कहा था, वह मैं

तुमलोगोंसे कह रहा हूँ।

भगवान् शिव बोले—वैसे तो मेरे बहुत—से ब्रत हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। उनमें मुख्य दस ब्रत हैं, जिन्हें जावालश्रुतिके विद्वान् 'दशशैवब्रत' कहते हैं। द्विजोंको यत्पूर्वक सदा इन ब्रतोंका पालन करना चाहिये, परंतु मोक्षार्थीको मोक्षकी प्राप्ति करनेवाले चार ब्रतोंका नियमपूर्वक पालन करना चाहिये। ये चार ब्रत हैं—१. भगवान् शिवकी पूजा, २. रुद्रमन्त्रोंका जप, ३. शिवमन्दिरमें उपवास तथा ४. काशीमें देहत्याग। ये मोक्षके चार सनातन मार्ग हैं। इन चारोंमें भी शिवरात्रिव्रतका विशेष महत्व है, अतः इसे अवश्य करना चाहिये। यह सभीके लिये धर्मका उत्तम साधन है। निष्काम अथवा सकाम भावसे सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, स्त्रियों, बालकों तथा देवताओं आदिके लिये यह महान् ब्रत परम हितकारी माना गया है।

प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी शिवरात्रि कहलाती है, परंतु फलनुमासकी शिवरात्रिकी महाशिवरात्रि संज्ञा है। जिस दिन अर्धरात्रिके समय चतुर्दशी तिथि विद्यमान हो, उसी दिन उसे ब्रतके लिये ग्रहण करना चाहिये। उस दिन ब्रती पुरुषको प्रातःकाल उठकर स्नान-सन्ध्या आदि कर्मसे निवृत्त होकर मस्तकपर भस्मका त्रिपुण्ड्र तिलक और गलेमें रुद्राक्षमाला धारणकर शिवालयमें जाकर शिवलिंगका विधिपूर्वक पूजन एवं मुङ्ग शिवको नमस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् श्रद्धापूर्वक ब्रतका संकल्प करे और शास्त्रप्रसिद्ध किरी भी शिवलिंगके पास जाकर रात्रिके चारों प्रहरोंमें पूजा करे। यदि नमदेश्वर आदि शिवलिंग उपलब्ध न हों तो चार मूर्तियों (पार्थिव शिवलिंग)–का निर्माणकर उनकी चार प्रहरोंमें पूजा करनी चाहिये। रात्रिमें गीत-वाद्यादिद्वारा उत्सवपूर्वक जागरण करना चाहिये। प्रातःकाल उठकर स्नान करके पुनः वहाँ पार्थिव शिवका स्थापन एवं पूजन करे। इस तरह ब्रतको पूरा करके हाथ जोड़ मस्तक छुकाकर बारम्बार नमस्कारपूर्वक भगवान् शम्भुसे प्रार्थना करे। इसके अनन्तर ब्राह्मणों तथा संन्यासियोंको शक्तिके अनुसार भोजन करकर उन्हें भलीभांति सन्तुष्टकर स्वयं भोजन करे।

शिवरात्रिव्रतकी उद्यापनविधि

शिवरात्रिके शुभ ब्रतका लगातार चौदह वर्षतक पालन करना चाहिये। त्रयोदशीको एक समय भोजन करके चतुर्दशीको पूरा उपवास करना चाहिये। शिवरात्रिके दिन नित्यकर्म सम्पन्नकर शिवालयमें जाकर विधिपूर्वक शिवका पूजन करे। वहाँ सोने अथवा ताँबेका बना एक कलश स्थापित करे और उसपर पार्वतीसहित शिवकी सोनेकी बनी प्रतिमा रखे। रात्रिके प्रत्येक प्रहरमें शिवपूजन करे और भगवत्कीर्तन करते हुए रात्रि-जागरण करे। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये और यथार्थक दान दे। तदनन्तर भगवान् महेश्वर सदाशिवको पूष्यांजलि अर्पणकर प्रार्थना करे—

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ।

ब्रतेनानेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि ॥

मया भक्त्यनुसारेण ब्रतमेतत् कृतं शिव ॥

न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शंकर ॥

अज्ञानाद्यादि वा ज्ञानाजपपूजादिंकं मया ॥

कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शंकर ॥

इस महाशिवरात्रिव्रतको 'ब्रतराज' कहा जाता है। इसकी महिमा और इसके फलका वर्णन वाणीसे नहीं हो सकता।

मुक्ति और भक्तिके स्वरूपका विवेचन

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने मुक्तिकी चर्चा की। यह मुक्ति क्या है और उसकी कैसी अवस्था होती है?

सूतजी कहते हैं—सांसारिक दुःखोंका नाश करनेवाली एवं परम आनन्द देनेवाली मुक्ति चार प्रकारकी कही गयी है—सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य एवं चौथी सायुज्य। इस शिवरात्रिव्रतसे सब प्रकारकी मुक्ति सुलभ हो जाती है।

हे मुनीश्वरो! यह साया जगत् जिससे उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा इसका पालन होता है तथा अन्ततोगत्वा वह जिसमें लीन होता है, वे ही 'शिव' हैं, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, वही शिवका रूप है। शिवतत्त्व सत्य, ज्ञान, अनन्त एवं सच्चिदानन्द नामसे प्रसिद्ध है।

जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है, उसी प्रकार यह

शिवतत्त्व भी सर्वव्यापी है। शिवज्ञानका उदय होनेसे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होती है तथा शिवका भजन-ध्यान करनेसे सत्पुरुषोंको शिवपदकी प्राप्ति होती है।

संसारमें ज्ञानकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, परंतु भगवान्का भजन अत्यन्त सुकर माना गया है। ज्ञानस्वरूप मोक्षदाता परमात्मा शिव भजनके ही अधीन हैं। भगवान् शम्भुकी भक्ति ज्ञानकी जननी मानी गयी है।

उत्तम प्रेमका अंकुर ही उसका लक्षण है। हे छिजो! वह भक्ति भी सगुण और निर्गुणके भेदसे दो प्रकारकी जाननी चाहिये। भगवान्की कृपाके बिना इन भक्तियोंका सम्पादन होना कठिन है। भक्ति और ज्ञानको शम्भुने एक-दूसरेसे भिन्न नहीं बताया। जो भक्तिका विरोधी है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। भगवान् शिवकी भक्ति प्राप्त करनेवालेको ही शीघ्रतापूर्वक ज्ञान प्राप्त होता है। अतः हे मुनीश्वरो! महेश्वरकी भक्तिका साधन करना चाहिये।

शिव, विष्णु, रुद्र और ब्रह्माके स्वरूपका विवेचन

ऋषियोंने पूछा—हे सूतजी! शिव कौन हैं, विष्णु कौन हैं, रुद्र कौन हैं तथा ब्रह्मा कौन हैं? इन सबमें निर्गुण कौन है? हमारे इस सन्देहका निवारण कीजिये।

सूतजी कहते हैं—हे महर्षियो! वेद और वेदान्तके विद्वान् ऐसा मानते हैं कि निर्गुण परमात्मासे सर्वप्रथम जो सगुणरूप प्रकट हुआ, उसीका नाम 'शिव' है। शिवसे पुरुषसहित प्रकृति उत्पन्न हुई। उन दोनोंने मूलस्थानमें स्थित जलके भीतर तप किया। वही तपस्थली पंचक्रोशी काशीके नामसे विख्यात है, यह भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह जल सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त था, जिसमें योगमायासे युक्त श्रीहरिने शयन किया। उन नारायणके नाभिकमलसे जिनकी उत्पत्ति हुई, वे ब्रह्मा कहलाते हैं। ब्रह्माने तपस्या करके जिनका साक्षात्कार किया, उन्हें 'विष्णु' कहा गया है। ब्रह्मा और विष्णुके विवादको शान्त करनेके लिये निर्गुण शिवने जो रूप प्रकट किया, उसका नाम 'महादेव' है। उन्होंने कहा 'मैं शम्भु ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट होऊँगा'—इस कथनके

अनुसार जो ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट हुए, उनका नाम 'रुद्र' हुआ। पूर्णतः त्रिगुणरहित शिवमें एवं गुणोंके धार रुद्रमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है, जैसे स्वर्ण और उससे बने आभूषणोंमें कोई अन्तर नहीं होता। भयानक पराक्रमवाले रुद्र सभी प्रकारसे शिवरूप ही हैं। वे भक्तोंका कार्य करनेके लिये प्रकट होते हैं और ब्रह्मा तथा विष्णुकी सहायता लेते हैं।

इस लोकमें ब्रह्मासे लेकर तुण्डपर्यन्त जो कुछ दिखायी देता है, वह सब शिव ही है। अनेकताकी कल्पना मिथ्या है। शम्भुको ही वेदोंका प्राकट्यकर्ता तथा वेदपति कहा गया है। वे ही सबपर अनुग्रह करनेवाले साक्षात् शंकर हैं। कर्ता, भर्ता, हर्ता, साक्षी तथा निर्गुण भी वे ही हैं। उन शिवका कोई उत्पादक नहीं है, उनका कोई पालक तथा संहरक भी नहीं है। वे स्वयं सबके कारण हैं। यह उत्तम शिवज्ञान यथार्थरूपसे कह दिया गया, इसे ज्ञानवान् पुरुष ही जानते हैं और कोई नहीं।

शिवसम्बन्धी तत्त्वज्ञानका वर्णन और उसकी महिमा

सूतजी कहते हैं—हे ऋषियो! मैंने शिवज्ञान जैसा सुना है, उसे बता रहा हूँ। यह अत्यन्त गुह्य और परम मोक्षस्वरूप है। सम्पूर्ण जगत् शिवमय है, जीव भगवान् शिवका ही अंश है, परंतु अविद्यासे मोहित होकर अवश हो रहा है और अपनेको शिवसे भिन्न समझता है। अविद्यासे मुक्त होनेपर वह शिव ही हो जाता है। जैसे अग्नितत्त्व प्रत्येक काष्ठमें स्थित है, परंतु जो उस काष्ठका मन्थन करता है, वही असन्दिग्ध रूपसे अग्निको प्रकट करके देख पाता है, उसी तरह जो बुद्धिमान् यहाँ भक्ति आदि साधनोंका अनुष्ठान करता है, उसे शिवका दर्शन प्राप्त होता है। सर्वत्र केवल शिव हैं, शिव हैं, शिव हैं; दूसरी कोई वस्तु नहीं। वे शिव भ्रमसे ही सदा नाना रूपोंमें भासित होते हैं। शिव तथा सम्पूर्ण जगत्में कोई भेद नहीं है। जैसे एक ही सूर्य नामक ज्योति जल आदि उपाधियोंमें विशेषरूपसे नाना प्रकारकी दिखायी देती है, उसी प्रकार शिव भी है। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक होकर भी स्पर्श आदि बन्धनमें नहीं आता,

उसी प्रकार व्यापक शिव भी कहीं नहीं बैठते।

अहंकारसे युक्त होनेके कारण शिवका अंश जीव कहलाता है, उस अहंकारसे मुक्त होनेपर वह साक्षात् शिव ही है। जैसे एक ही सुवर्ण चाँदी आदिसे मिल जानेपर कम कीमतका हो जाता है, उसी प्रकार अहंकारयुक्त जीव अपना महत्व खो बैठता है। जो शुभ चक्षुको पाकर हर्षसे खिल नहीं उठता है, अशुभको पाकर क्रोध या शोक नहीं करता तथा सुख-दुःख आदि सभी द्वन्द्वोंमें सम्भाव रखता है, वह ज्ञानवान् कहलाता है।

आत्मचिन्तन तथा तत्त्वोंके विवेकसे—ऐसा प्रयत्न करे कि शरीरसे अपनी पृथक्ताका बोध हो जाय। मुकिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष शरीर एवं उसके अभिनानको त्यागकर अहंकारशून्य एवं मुक्त हो सदाशिवमें लीन हो जाता है। अध्यात्मचिन्तन एवं भगवान् शिवकी भक्ति—ये ज्ञानके मूल कारण हैं।

उत्तरार्थसंहिता

श्रीकृष्णकी तपस्या तथा शिव-पार्वतीसे वरदानकी प्राप्ति

ऋग्यज्ञ बोले—हे सूतजी! आपको नमस्कार है। आपने हमें कोटिरुद्र नामक संहिता सुनायी, अब आप उत्तरार्थसंहितामें विद्यमान, विविध आख्यानोंसे युक्त, पार्वतीसहित परमात्मा शिवके चरित्रका वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—हे शौनक आदि महर्षियो! भगवान् शंकरका चरित्र परम दिव्य है। तुमलोग प्रेमसे इसका श्रवण करो। पूर्वकालमें मुनिवर व्यासने सनत्कुमारजीके सामने ऐसे ही पवित्र प्रश्नको उपस्थित किया था और इसके उत्तरमें उन्होंने भगवान् शिवके उत्तम चरित्रका गान किया था।

उस समय पुत्रकी प्राप्तिके नियित श्रीकृष्णके हिमवान् पर्वतपर जाकर महर्षि उपमन्त्रुसे मिलनेकी कथा तथा महर्षि उपमन्त्रुके द्वारा भगवान् शंकरकी अतुलित महिमाका वर्णन सुनकर वासुदेव बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! वे भगवान् सदाशिव मुझे भी जिस प्रकार दर्शन दें तथा मुझपर कृपा करें, आप मुझे ऐसा उपाय बतायें।

जो अनन्य भक्तिसे युक्त होकर शम्भुका भजन करता है, उसे अन्तमें अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होता है। अतः मुकिकी प्राप्तिके लिये भगवान् शंकरसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। उनकी शरण लेकर जीव संसार-बन्धनसे छूट जाता है।

ब्राह्मणो! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब कुछ मैंने तुम्हें बता दिया। इसे तुम्हें प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये।

ऋषि बोले—आपने हमें शिव-तत्त्वसम्बन्धी परम उत्तम ज्ञानका श्रवण कराया है, आपकी कृपासे हमारे मनकी भ्रान्ति मिट गयी।

सूतजीने कहा—यह शिवविज्ञान भगवान् शंकरको अत्यन्त प्रिय है। यह भोग और मोक्ष देनेवाला तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है, जो कोटिरुद्रसंहिताके नामसे विख्यात है। जो पुरुष एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे इस संहिताको सुनेगा या सुनायेगा, वह समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगतिको प्राप्त कर लेगा।

उपमन्त्र बोले—हे पुरुषोत्तम! आप थोड़े ही समयमें महादेवका दर्शन उन्हींकी कृपासे प्राप्त करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है। आप सोलहवें महीनेमें पार्वतीसहित सदाशिवसे उत्तम वरदान प्राप्त करेंगे।

हे अच्युत! मैं आपको जपनीय मन्त्र बताता हूँ—‘ॐ नमः शिवाय’ इस दिव्य मन्त्रका जप सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला है।

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार महादेवसम्बन्धी कथाओंको कहते हुए उन उपमन्त्रके आठ दिन एक मुहूर्तके समान बीत गये। इसके अनन्तर नौवाँ दिन आनेपर मुनि उपमन्त्रे श्रीकृष्णको दीक्षा प्रदान की और शिव-अर्थवर्शीर्घका महामन्त्र उन्हें बताया। वे शीघ्र ही एकाग्रचित्त होकर ऊपर भुजा उठाये, पैरेके एक आँगूठेपर खड़े होकर तप करने लगे। इसके बाद सोलहवाँ महीना आनेपर प्रसन्न होकर पार्वतीसहित परमेश्वर शम्भुने कृष्णको दर्शन दिया। श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर शंकरजीको प्रणाम करते हुए शास्त्र-विधिसे उनकी पूजा की और सिर झुकाकर अनेकविधि स्तोत्रोंसे तथा सहस्रनामसे

देवेश्वरकी स्तुति की ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—श्रीकृष्णका वचन सुनकर भगवान् शिव उनसे बोले—वासुदेव ! तुमने जो कुछ मनोरथ किया है, वह सब पूर्ण होगा । तुम्हें साम्ब नामसे प्रसिद्ध महान् पराक्रमी तथा बलवान् पुत्र प्राप्त होगा । एक समय मुनियोंने भयानक संवर्तक (प्रलयकर) सूर्यको शाप दिया था—‘तुम मनुष्य योनिमें उत्पन्न होओगे ।’ अतः वे संवर्तक सूर्य ही तुम्हारे पुत्र होंगे । इसके सिवा तुम्हें जो-जो वस्तु अधीष्ट है, वे सभी वस्तुएँ तुम प्राप्त करोगे ।

तदनन्तर भक्तवत्सला गिरिराजकुमारी शिवाने प्रसन्न हो उन तपस्वी शिवभक्त महात्मा वासुदेवसे कहा—वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण ! मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ । तुम मुझसे भी उन मनोवांछित वरोंको ग्रहण करो, जो भूतलपर दुर्लभ हैं ।

श्रीकृष्णने कहा—देवि ! यदि आप मुझे वर दे रही हैं तो मैं यह चाहता हूँ कि मेरे मनमें कपी किसीके प्रति द्वेष न हो । मैं सदा द्विजोंका पूजन करता रहूँ । मेरे माता-पिता सदा मुझसे सन्तुष्ट रहें । मैं जहाँ कहीं भी जाऊँ, समस्त प्राणियोंके प्रति मेरे हृदयमें अनुकूल भाव रहे । सहस्रों साधु-संन्यासियों एवं अतिथियोंको सदा श्रद्धासे अपने घरपर पवित्र भोजन कराऊँ । भाई-बच्युओंके साथ नित्य मेरा प्रेम बना रहे तथा मैं सदा सन्तुष्ट रहूँ ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर सनातनी देवी पार्वती बोलीं—‘वासुदेव ! ऐसा ही होगा ।’ इस प्रकार श्रीकृष्णपर कृपा करके पार्वतीजी-सहित परमेश्वर शिव वहीं अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर श्रीकृष्णने मुनिवर उपमन्युको प्रणाम करके उहाँ खपानिका सारा समाचार बताया और वे मन-ही-मन शम्भुका स्मरण करते हुए द्वारकापुरीको चले गये ।

नरकमें गिरानेवाले पापोंका संक्षिप्त परिचय

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! जो पापपरायण जीव महानरकके अधिकारी हैं, उनका संक्षेपमें परिचय दिया जाता है, इसे सावधान होकर सुनो । परस्त्रीको प्राप्त करनेका संकल्प, पराये धनका अपहरण करनेकी इच्छा, चित्तके द्वारा अनिष्ट चिन्तन तथा न करनेयोग्य कर्ममें प्रवृत्त

होनेका दुराग्रह—ये चार प्रकारके मानसिक पापकर्म हैं । असंगत प्रलाप (बे-सिर-पैरकी बातें), असत्य-भाषण, अप्रिय बोलना, पीठ पीछे चुगली करना—ये चार वाचिक (वाणीद्वारा होनेवाले) पापकर्म हैं ।

अभक्ष्य-भक्षण (न खानेयोग्य वस्तुको खाना), प्राणियोंकी हिंसा, व्यथके कायोंमें लगाना, दूसरेके धनको हड़प लेना—ये चार प्रकारके शारीरिक पापकर्म हैं । इस प्रकार ये बारह कर्म बताये गये, जो मन, वाणी और शरीर—इन साधनोंसे सम्पन्न होते हैं ।

जो संसार-सागरसे पार उत्तरनेवाले महादेवजीसे द्वेष करनेवाले हैं, जो पिता, ताऊ आदि गुरुजनोंकी निन्दा करते हैं, वे सब नरक-समुद्रमें गिरनेवाले हैं ।

ब्रह्महत्यार, मदिरा पीनेवाला, स्वर्ण चुरानेवाला, गुरुपलीगामी, इन चारोंसे सम्पर्क रखनेवाला पाँचवाँ श्रेणीका प्राणी—ये सब-के-सब महापातकी कहे गये हैं ।

जो देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओंके उपयोगके लिये दी हुई भूमिको हर लेता है तथा अन्यायसे धन कमाता है, उसे ब्रह्महत्यारेके समान ही पातकी जानना चाहिये । पिता और माताको त्याग देना, झूठी गवाही देना, दूसरोंसे झूठा बादा करना, शिवभक्तोंको मांस खिलाना तथा अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करना ब्रह्महत्याके तुल्य कहा गया है ।

पैतृक सम्पत्तिके बैंटवारेमें उलटफेर करना, अत्यन्त अभिमान एवं अत्यधिक क्रोध करना, पाखण्ड फैलाना, कृतज्ञता करना, विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होना, कंजूसी करना, सत्पुर्योंसे द्वेष रखना, परस्त्री-समागम करना, असत् शास्त्रोंका अध्ययन करना, पापोंमें लगाना तथा झूठ बोलना—इस तरहके पापकर्मोंमें लिप्त स्त्री-पुरुषको उपपातकी कहा गया है ।

पापियों और पुण्यात्माओंकी यमलोक-यात्रा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी ! चार प्रकारके पापोंकी कारण विवश होकर समस्त शरीरधारी मनुष्य भयको उत्पन्न करनेवाले घोर यमलोकको जाते हैं । ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो यमलोकमें न जाता हो । किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका विचार करो । जीवोंमें जो शुभ कर्म करनेवाले सौम्यचित और दयालु हैं,

वे मनुष्य यमलोकमें सौम्यमार्ग तथा पूर्वद्वारसे जाते हैं, किंतु जो पापी पापकर्ममें निरत एवं दानसे रहित हैं, वे घोर मार्गद्वारा दक्षिणद्वारसे यमलोककी यात्रा करते हैं।

मर्त्यलोकसे छियासी हजार योजनकी दूरीपर अनेक रूपोंवाला यमलोक स्थित है। यह पुर पुण्यकर्मवाले मनुष्योंको निकटवर्ती—सा जान पड़ता है, किंतु घोरमार्गसे जाते पापियोंको बहुत दूर स्थित प्रतीत होता है। वहाँका मार्ग कहीं तो तीखे काँटोंसे युक्त है, कहीं कंकड़ोंसे व्याप्त है, कहीं छुरेकी धारके समान तीखे पत्थर उस मार्गमें जड़े हुए हैं, कहीं बढ़ी भारी कीचड़ फैली हुई है। बड़े-छोटे पाताकोंके अनुसार वहाँकी कठिनाइयोंमें भी भारी और हलकापन है।

तदनन्तर यमपुरीके मार्गकी भीषण यातनाओं और कष्टोंका वर्णन करके सनत्कुमारजीने कहा—व्यासजी! जिन्होंने कभी दान नहीं किया है, वे लोग भी इस प्रकार दुःख उठाते और सुखकी याचना करते उस मार्गपर जाते हैं। जिन लोगोंने पहलेसे ही दानरूपी पाथेय (राह-खर्च) ले रखा है, वे सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं। इस प्रकारकी व्यवस्थासे कष्टपूर्वक जब वे यमपुरी पहुँचते हैं, तब धर्मराजकी आजासे दूरोंके द्वारा वे उनके आगे ले जाये जाते हैं।

उनमें जो युण्यात्मा होते हैं, उन्हें यमराज स्वागतपूर्वक आसन देकर पाद्य और अर्घ्यके द्वारा प्रेमपूर्वक सम्मानित करते हैं और कहते हैं कि शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले आप महात्मा लोग धन्य हैं, जोकि आप लोगोंने दिव्य सुख प्राप्त करनेके लिये पुण्य-कर्म किया है तथा आप लोग सम्पूर्ण मनोवांछित पदार्थोंसे सम्पन्न निर्मल स्वर्गलोकको जायें। वहाँपर महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्यके क्षीण हो जानेपर जो कुछ थोड़ा-सा अशुभ शेष रह जाय, उसे फिर यहाँ आकर आप लोग भोगेंगे; किंतु जो क्रूर कर्म करनेवाले हैं, वे यमराजको भयानक रूपमें देखते हैं। उनकी दृष्टिमें यमराजका मुख दाढ़ोंके कारण विकरल जान पड़ता है। नेत्र टेढ़ी भाँहोंसे युक्त प्रतीत होते हैं। वे कृपित तथा काले, कोयलेके ढेर-से दिखायी यज्ञते हैं। वे सब प्रकारके दण्डका भय दिखाकर उन पापियोंको डाँटते रहते हैं। उनके नेत्र प्रज्वलित अग्निके

समान उद्दीप्त दिखायी देते हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं, मानो महासागरको पी रहे हैं और मुँहसे आग उगल रहे हैं। उनके अतिरिक्त असंख्य महावीर यमदूत, जिनकी अंगकान्ति काले कोयलेके समान काली होती है, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र लिये वे बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। पापी लोग इन परिचारकोंसे धिरे हुए उन यमराज तथा चित्रगुप्तको देखते हैं। उस समय यमराज उन पापियोंको बहुत डाँटते हैं और भगवान् चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंके द्वारा उन्हें समझाते हैं।

नरकभेदनिरूपण

चित्रगुप्तजी कहते हैं कि हे पापकर्म करनेवालो! तुमलोगोंने स्वयं जो कर्म किया है, उसे तुम्हें भोगना पड़ रहा है। अब अपने कर्मोंको भोगो, इसमें किसीका दोष नहीं है।

सनत्कुमारजी बोले—अपने कुस्तित कर्मों तथा बलपर गर्व करनेवाले राजालोग भी अपने घोर कर्मोंके करनेके कारण चित्रगुप्तके सामने उपस्थित हुए। तब धर्मके जाता चित्रगुप्तने यमराजकी आजासे क्रोधयुक्त होकर उन्हें शिक्षा प्रदान करते हुए कहा—हे राजाओ! तुमलोगोंने राज्यभोगके मोहसे अन्यायपूर्वक जबरदस्ती जो प्रजाओंको दण्डित किया है, अब उसका फल भोगो।

उन राजाओंके कर्मको बतलाकर धर्मराज यमने उनके पापरूपी कीचड़ीकी शुद्धिके लिये दूरोंसे यह कहा—हे चण्ड! महाचण्ड! इन राजाओंको बलपूर्वक पकड़कर क्रमसे नरककी अग्नियोंमें इन्हें शुद्ध करो।

इसके अनन्तर सनत्कुमारजीने नरककोटियोंके नाम बताये हैं। उनमें प्रथम गैरव नरक है, जहाँ पहुँचकर देहधारी जीव रोने लगता है। महारौवकी पीड़ासे तो महान् पुरुष भी रो देते हैं। इसके बाद शीत और उष्ण नामक नरक हैं। इस प्रकार इन नरकोंकी संख्या अद्वैत है और क्रमशः उनके पाँच-पाँच नायक कहे गये हैं। महानरक-मण्डल एक सौ चालीस नरकोंका बताया गया है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! इन सब भयानक पीड़ादायक नरकोंमें पापी जीवोंको अत्यन्त भीषण नरक-यातना भोगनी पड़ती है। जो धन रहते हुए भी

तृष्णाके कारण उसका दान नहीं करते, भोजनके समयपर घर आये हुए अतिथिका अनादर करते हैं, वे पापका फल पाकर अपवित्र नरकमें गिरते हैं।

देवता, पितर, मनुष्य, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि, कीट, कुत्ते और कौवे—ये सभी गृहस्थसे अपनी जीविका चलाते हैं। अतः इनके निमित्त अनका कुछ भाग बलिके रूपमें प्रदान करना चाहिये।

स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार तथा हन्तकार—ये धर्ममयी धेनुके चार स्तन हैं। स्वाहाकार नामक स्तनका पान देवता करते हैं, स्वधाका पितर लोग, वषट्कारका दूसरे-दूसरे देवता और भूतेश्वर तथा हन्तकार नामक स्तनका सदा मनुष्यगण ही पान करते हैं। जो मानव श्रद्धापूर्वक इस धर्ममयी धेनुका सदा ठीक-ठीक पालन करता है, वह अग्निहोत्री हो जाता है। जो स्वस्थ रहते हुए भी उनका त्याग कर देता है, वह अन्यकारपूर्ण नरकमें डूबता है। इसलिये उन सबको बलिभाग देनेके पश्चात् द्वारपर खड़ा हो क्षणभर अतिथिकी प्रतीक्षा करे। यदि कोई भूखसे पीड़ित अतिथि मिल जाय तो उसे अपने भोजनसे पहले यथाशक्ति शुभ अनका भोजन कराये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, उसे वह अपना पाप देकर बदलमें उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

यमलोकके मार्गमें सुविद्या प्रदान करनेवाले विविध दानोंका वर्णन

व्यासजी बोले—हे प्रभो! पाप करनेवाले मनुष्य बड़े दुःखसे युक्त होकर यममार्गमें गमन करते हैं। अब आप उन धर्मोंको कहिये, जिनके द्वारा वे सुखपूर्वक यममार्गमें गमन करते हैं। सनकुमारजीने कहा—‘मुने! अपना किया हुआ शुभाशुभ कर्म बिना विचारे विवश होकर भोगना ही पड़ता है। अब मैं उन धर्मोंका वर्णन करता हूँ, जो सुख देनेवाले हैं। इस लोकमें जो लोग शुभ कर्म करनेवाले, शान्तचित्त एवं दयालु मनुष्य हैं, वे वडे सुखके साथ भयानक यममार्गमें जाते हैं।

जो मनुष्य श्रेष्ठ ग्राहणीको जूता और खड़ाऊँका दान करते हैं, जो छाता और शिविकाका दान करते हैं, शश्या और आसनका दान करते हैं, वे यमलोकके मार्गमें

विश्राम करते हुए सुखपूर्वक जाते हैं। जो उद्यान लगानेवाले, छायादार वृक्ष लगानेवाले तथा मार्गके किनारे वृक्षका आरोपण करनेवाले हैं, वे धूपमें भी बिना कष्ट उठाये यमलोकको जाते हैं। जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण और माता-पिताकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य स्वयं भी पूजित होते हुए यथेच्छ सुखपूर्वक यमपुरीको जाते हैं। दीपदान करनेवाले मनुष्य सभी दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाते हैं। गृहदान करनेसे दाता रोग-शोकसे रहित हो सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। स्वर्ण और रत्नका दान करनेसे मनुष्य दुर्गम संकटोंको पार करता हुआ जाता है।

सभी दानोंमें अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि वह तत्काल प्रसन्न करनेवाला, हृदयको प्रिय लगनेवाला एवं बल-बुद्धिको बढ़ानेवाला है। हे मुनिश्रेष्ठ! अन्नदानके समान कोई दूसरा दान नहीं है; क्योंकि अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और अनके अभावमें मर जाते हैं।

अनका दान करनेवाला प्राणदाता तथा प्राणदान करनेवाला सर्वस्वका दाता कहा गया है। अन ही साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं; अतः अन्नदानके समान न कोई दान हुआ है और न होगा।

अन, पान, अश्व, गौ, वस्त्र, शश्या, छत्र एवं आसन—ये आठ प्रकारके दान यमलोकके लिये विशेषस्पसे श्रेष्ठ कहे गये हैं। इस प्रकारके श्रेष्ठ दानसे मनुष्य विमानद्वारा धर्मराजके लोकको जाता है। इसलिये इनका दान अवश्य करना चाहिये।

जलदान, सत्यभाषण और तपकी महिमा

सनकुमारजी कहते हैं कि हे व्यासजी! जलदान सब दानोंमें सबसे उत्तम है; क्योंकि जल सभी जीव-समुदायको तृप्त करनेवाला जीवन कहा गया है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह कुआँ, बावड़ी, तालाब एवं प्याऊ आदि बनवाये। जिसके बनवाये हुए जलाशयमें गौ, ब्राह्मण तथा साधुपुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने सारे वंशका उद्धार कर देता है।

जो वीरान एवं दुर्गम स्थानमें वृक्षोंको लगाता है, वह अपनी बीती हुई तथा आनेवाली सभी पीड़ियोंके सभी

पितृकुलोंका उद्धार कर देता है। लगाये गये ये वृक्ष दूसरे जन्ममें उस व्यक्तिके पुत्र होते हैं। वृक्ष पुष्टोंके द्वारा देवगणोंकी, फलोंके द्वारा पितरोंकी, छायाके द्वारा सभी अतिथियोंकी पूजा करते हैं अतः वृक्षोंको अवश्य लगाना चाहिये।

सत्यवादी पुरुष स्वर्गसे कभी नीचे नहीं गिरते, सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही श्रेष्ठ यज्ञ है। सत्यसे ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य को परम धर्म कहा गया है और सत्यको ही परब्रह्म परमात्मा कहते हैं। जो मनुष्य अपने लिये, दूसरेके लिये अथवा अपने पुत्रादिके लिये भी झूठ नहीं बोलते, वे ही स्वर्गांगमी होते हैं। अतः सदा सत्य बोलना चाहिये।

तदनन्तर तपकी बड़ी भारी महिमा बताते हुए सनकुमारजीने कहा—मुने ! संसारमें ऐसा कोई सुख नहीं है, जो तपस्याके बिना सुलभ होता हो। ज्ञान-विज्ञान, आरोग्य, सुन्दर रूप, सौभाग्य तथा शाश्वत सुख तपसे ही प्राप्त होते हैं। तपस्यासे ब्रह्म बिना परिश्रमके ही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते हैं। तपस्याके बलसे ही रुद्रदेव इसका संहार करते हैं तथा तपके प्रभावसे ही शेष अशेष भूमण्डलको धारण करते हैं।

वेद-पराणोंके स्वाध्याय तथा विविध

प्रकारके दानोंकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—हे मुने! जो बनके कन्द-
मूल-फल खा करके जंगलमें तपस्या करता है और जो
वेदकी एक ऋचाका अध्ययन करता है, उन दोनोंका
समान फल होता है। जैसे सूर्य और चन्द्रमाके बिना
सम्पूर्ण संसारमें अन्धकार छा जाता है, उसी प्रकार
पुराणके अध्ययनके बिना लोग ज्ञानरहित हो जाते हैं,
इसलिये सदा पुराणका अध्ययन करना चाहिये।

पुराणका श्रवण करनेसे पापका नाश होता है, धर्मकी अधिवृद्धि होती है एवं व्यक्ति ज्ञानवान् होकर पुनः संसारके आवागमनके बन्धनमें नहीं पड़ता है, इसलिये धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि तथा मोक्षमार्गकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नलपर्वक पुराणोंको सुनना चाहिये।

सुनल्लमारजी कहते हैं—हे व्यासजी ! विभिन्न

प्रकारके दान सदा सत्पात्रको ही देने चाहिये, वे आत्माका उद्घार करते हैं। स्वर्णदान, गोदान एवं भूमिदान—इन उत्तम दानोंको करके मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है। तुलादान, पृथ्वीदान तथा विद्यादान—ये प्रशस्त दान कहे गये हैं। गाय, छत्र, वस्त्र, जूता एवं अन्न-जल—ये बस्तुएँ याचकको देते रहना चाहिये। जो मनुष्य शुद्ध चित्तसे सुवर्णदान करते हैं, उन्हें देवतालोग सब कुछ देते हैं।

हे व्यासजी ! इस लोकमें विधानके साथ गायका दान तथा तुलापुरुषका दान सभी दानोंमें सर्वश्रेष्ठ दान है। इसे करके मनुष्य बध आदिसे होनेवाले सभी पापोंसे छुटकारा पाता है।

नरकप्राप्ति करानेवाले असत्कर्मोंका वर्णन
एवं शिवनाम-स्मरणकी महिमा

इसके बाद ब्रह्माण्डदानका माहात्म्य एवं ब्रह्माण्डका वर्णन करके सनत्कुमारजी बोले—हे व्यासजी! जो मनुष्य ब्राह्मण, देवता एवं गौओंके पक्षको छोड़कर अन्यत्र झूठी गवाही करता है अथवा मिथ्याभाषण करता है, वह रौरव नरकमें जाता है। भूग [गर्भस्थ शिशु]—की हत्या करनेवाला, स्वर्ण चुरानेवाला, गायोंको चरनेसे रोकनेवाला, विश्वासघाती, सुरापान करनेवाला, ब्राह्मणका वध करनेवाला, दूसरोंके द्रव्यको चुरानेवाला तथा इनका साथ देनेवाला और गुरु, माता, गौ तथा कन्याका वध करनेवाला भरनेपर तपतकूम्ह नामक नरकमें जाता है।

जो द्विज अन्त्यजसे सेवा कराता है, नीचोंसे प्रतिग्रह
ग्रहण करता है, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करता है
एवं अभश्य वस्तुओंका भक्षण करता है—ये सब रुधिरोद्ध
(पूयवह) नामक नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य मन, वचन
तथा कर्मसे वर्णाश्रमधर्मके विपरीत आचरण करते हैं, वे
नरकमें गिरते हैं। हे व्यासजी! स्वायम्भूत मनुने बड़े
पापोंके लिये महान् प्रायशिच्चत तथा अल्प पापोंके लिये
अल्प प्रायशिच्चत कहा है। जिस पुरुषके चित्तमें पापकर्म
करनेके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो
एकमात्र शिवजीका स्मरण ही सर्वोत्तम प्रायशिच्चत है।

हे व्यासजी ! नरक और स्वर्ग—ये पाप और पुण्यके ही दूसरे नाम हैं । इनमें एक तो दुःख देनेवाला

है, दूसरा सुख देनेवाला है। ये सुख-दुःख तो मनके ही विकार हैं। ज्ञान ही परब्रह्म है, ज्ञान ही तत्त्विक बोधका कारण है। यह सारा चराचर विश्व ज्ञानमय ही है। उस परम विज्ञानसे भिन्न दृष्टिरी कोई वस्तु नहीं है।

तपस्यासे शिवलोककी प्राप्ति

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! अब आप उस शिवलोककी प्राप्तिका वर्णन करें, जहाँ जाकर शिवभक्त मनुष्य फिर नहीं लौटते हैं। सनत्कुमार कहते हैं—हे व्यासजी! शुद्ध कर्म करनेवाले एवं अत्यन्त शुद्ध तपस्यासे युक्त जो मनुष्य प्रतिदिन शिवजीकी पूजा करते हैं, वे सब प्रकारसे बन्दनीय हैं। शिवजीकी कृपाका मूल हेतु तपस्या ही है। तपके प्रभावसे ही देवता, ऋषि और मुनि लोग स्वर्गमें आनन्द प्राप्त करते हैं। जो पुरुष इस मनुष्य-जन्मको पाकर अपना परम कल्याण नहीं करता है, वह मरनेके बाद बहुत कालतक शोक करता रहता है। सभी देवताओं एवं असुरोंके लिये यह मनुष्य-जन्म अति दुर्लभ है। अतः उसे प्राप्त करके वैसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरकमें न जाना पड़े। जबतक शरीर स्वस्थ रहे, तबतक धर्माचरण करते रहना चाहिये; क्योंकि अस्वस्थ हो जानेपर मनुष्य कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं होता।

हे मुनिसत्तम ! जिन्होंने 'शिव-शिव' तथा 'हर-हर'—इस नामका उच्चारण किया है, उन्हें नरक और यमराजसे भय नहीं होता है। संसाररूपी महरोगोंका नाश करनेवाला एकमात्र 'शिव' नाम ही है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं दिखायी देता है।

मूर्ख ग्राणी अधर्मका आचरण करनेसे हजारों जन्मोंतक जन्म-मरणके चक्रमें भूमता रहता है और उसी अधर्मके कारण अन्यकारमें पढ़ा रहता है। अतः मनुष्य किसी श्रेष्ठ स्थानको प्राप्तकर प्रमाद न करे और विपत्तियोंको सहकर भी सर्वदा अपने स्थानकी रक्षा करे।

सनकुमार बोले—जिस प्रकार भीतर विष्टासे परिपूर्ण घट बाहर से शुद्ध होता हुआ भी अपवित्र ही होता है, उसी प्रकार शुद्ध किया हुआ यह शरीर भी अपवित्र कहा गया है। दुष्टात्मा तीर्थस्नान से अथवा तपोंसे कदापि शुद्ध नहीं होता है। भावदुष्ट मनुष्य भले

ही सम्पूर्ण गंगाजलसे तथा पहाड़भर मिट्टीसे भलीभाँत जन्मभर स्नान करता रहे, फिर भी शुद्ध नहीं होता। गंगा आदि तीर्थोंमें मछलियाँ तथा देवालयोंमें पक्षी नित्य निवास करते हैं, किंतु वे भावहीन होनेके कारण फल नहीं पाते। इसी प्रकार भावदुष्टको तीर्थस्नान एवं दानसे कोई फल प्राप्त नहीं होता।

ज्ञानरूपी निर्भल जलसे और वैशाखरूपी मृत्तिकासे
मनुष्योंके अविद्यारूपी मल-मूत्रके लेपकी दुर्गम्य दूर हो
जाती है। बुद्धापेसे ग्रस्त हुआ मनुष्य असमर्थ रहता है।
अतः यौवनावस्थामें ही धर्मचिरण कर लेना चाहिये।

जो द्विज प्रातःकाल उठकर आलस्यरहित होकर एकान्तमें प्राणायाम करता है, वह जगा और मृत्युको जीतकर वायुके समान गतिशील होकर आकाशमें विचरण करता है तथा प्रशंसनीय सौख्य एवं परम सख धार्ज करता है।

भगवती उमाका कालिकावतार

इसके अनन्तर छायापुरुष, सर्ग, कश्यपवंश, मनुवंश, सत्यव्रतादिवंश, पितृकृत्य तथा व्यासोत्पत्ति आदिका वर्णन सुननेके पश्चात् मुनियोंने सूतजीसे कहा—हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! अब हम लोग आपसे भगवती जगदम्बाके मनोहर चरित्रिको सुनना चाहते हैं। परब्रह्म महेश्वरकी जो सनातनी आद्या शक्ति है, वे ही त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाली पराशक्ति हैं। उनके दक्षकन्या सती तथा हैमवती पार्वती ये दो अवतार हमने सुने। हे महामते! अब आप उनके अन्य अवतारोंका वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—जो मनुष्य देवीको छोड़कर दूसरे देवताओंकी शरण लेता है, वह मानो गंगाजीको छोड़कर मरुस्थलके जलाशयके पास जाता है। जिनके स्मरणमार्त्रसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थोंकी अनायास प्राप्ति होती है, उन देवी उमाकी आराधना कौन श्रेष्ठ पुरुष छोड़ सकता है?

पूर्वकालमें महामना सुरथने महर्षि मेधासे यही बात पूछी थी। उस समय मेधाने जो उत्तर दिया, मैं वही बता रहा हूँ—पहले स्वारेचिष्म मन्वन्तरमें विरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जिनके पुत्र सुरथ हुए, जो महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे। राजा सुरथके पृथ्वीपर

शासन करते समय नौ ऐसे राजा हुए, जिन्होंने उनके हाथसे भूमपडलका राज्य छीन लिया। शत्रुओंने सारा राज्य अपने अधिकारमें करके सुरथको कोलापुरसे निकाल दिया। राजा सुरथ अकेले ही घोड़ेपर सवार हो नगरसे बाहर निकले और वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने एक श्रेष्ठ मुनिका आश्रम देखा, जहाँ वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूँज रही थी तथा सभी जीव-जन्म शान्तभावसे रहते थे। वहाँ जानेपर मुनीश्वर मेधाने मीठे वचन तथा भोजन और आसनद्वारा नरेशका आदर-सत्कार किया।

एक दिन राजा सुरथ चिन्तित होकर कुछ विचार कर रहे थे, इनमें वहाँ समाधि नामक एक वैश्य भी आ पहुँचा, जिसने बताया कि मेरे पुत्रों और स्त्री आदिने धनके लोभमें मुझे घरसे निकाल दिया। अतः दुखी होकर मैं वनमें चला आया हूँ। यहाँ आकर भी मुझे उनका कशल-समाचार न मिलनेकी चिन्ता लगी हुई है।

इस प्रकार मोहसे व्याकुल हुए वैश्य और राजा दोनोंने मुनिवर मेधसे अपनी व्यथा सुनायी और कहा कि हम दोनोंका मन मोहसे व्याकुल हो गया है।

ऋषि बोले—राजन् ! शक्तिस्वरूपा जगदम्भा सबके मनको खींचकर मोहमें डाल देती है। हे नृपत्रेष्ठ ! जिसके क्षण पर जगदम्भा प्रसन्न होती है, वही मोहक धेरेको लाँघ पाता है। राजाने पूछा—मुने ! वे देवी महामाया कौन है ? किस प्रकार उनका प्रादुर्भाव हुआ ? कृपा करके मुझे बताइये।

ऋषि बोले—जलमें निमग्न योगेश्वर भगवान् केशब
शेषकी शत्र्या विछाकर योगनिद्रामें शयन कर रहे थे,
उन्हीं दिनों भगवान् विष्णुके कानोंके मैलसे दो असुर
उत्पन्न हुए, जो भूतलपर मधु और कैटभके नामसे
विख्यात हैं। वे दोनों भगवान् विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न
ब्रह्माको देखकर उन्हें मार डालनेको उद्धत हो गये। उस
समय उन दोनों दैत्योंको देखकर तथा विष्णुको क्षीरसागरमें
शयन करते हुए जानकर ब्रह्माजी परमेश्वरीकी स्तुति
करने लगे—हे अग्निके! तुम इन दोनों दुर्जय असुरोंको
मोहित करो और अजन्मा भगवान् नारायणको जागा दो।

ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर जगज्जननी महाविद्या फालान् शुक्ला द्वादशीको शक्तिके रूपमें प्रकट हो

महाकालीके नामसे विख्यात हई।

इसके बाद जनादेन हृषीकेश निद्रासे उठे और उन्होंने अपने सामने मधु-कैटभ नामक दोनों दैत्योंको देखा। उन दैत्योंके साथ विष्णुका पाँच हजार वर्षोंतक बाहुबूद्ध हुआ। तब महामायाके प्रभावसे मोहित हुए दानवोंने लक्ष्मीपतिसे कहा—तुम हमसे मनोवाञ्छित वर ग्रहण करो। नारायण बोले—यदि तुमलोग प्रसन्न हो तो मेरे हाथसे मारे जाओ—यही मेरा वर है।

ऋषि कहते हैं—उन असुरोंने देखा कि सारी भूमि जलमें डूबी हुई है, तब वे केशवसे बोले—हम दोनोंको ऐसी जगह मारो, जहाँ जलसे भीगी हुई धरती न हो, भगवान् विष्णुने अपना परम तेजस्वी चक्र उठाकर उन दोनों दत्योंको अपनी जंघापर रखकर उनके सिर काट दिये।

महालक्ष्मीका अवतरण

देवी उमा निराकार एवं निर्विकार होकर भी देवताओंका
दुःख दूर करनेके लिये युग-युगमें साकार रूप धारण करके
प्रकट होती हैं। वे लीलासे इसलिये प्रकट होती हैं कि
भक्तजन उनके गुणोंका गान करते रहें। ऋषि कहते हैं—हे
राजन्! पूर्व समयमें महिषासुरके अत्याचारोंसे पौड़ित ब्रह्मादि
देवोंकी प्रार्थनासे प्रादुर्भूत महालक्ष्मीद्वारा महिषासुरका वध
हो जानेपर इन्द्रादि सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे।
गन्धर्व गीत गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। इस
प्रकार देवी महालक्ष्मीके अवतरणकी कथाके उपरान्त मेधा
ऋषिने महासरस्वतीके प्रादुर्भावके प्रसंग सुनाया।

महासरस्वतीका प्राकृत्य तथा उनके द्वारा

शास्त्र-निश्चास्त्र आदिका वध

ऋग्यि कहते हैं—हे राजन्! पूर्व समयमें सुष्ठुप्त और निशुष्ठुप्त नामक दो सहोदर, प्रतापी दैत्य हुए। उन दोनों भाइयोंने तीनों लोकोंको आक्रान्त कर रखा था। उन दोनोंसे पीड़ित देवगण हिमालयपर्वतपर जाकर देवी उमाका स्तवन करने लगे। देवताओंको स्तुति करते देखकर गौरी देवीने उनसे पूछा—‘आप लोग यहाँ किसकी स्तुति कर रहे हैं?’ उसी समय पार्वतीके शरीरसे एक कन्या प्रकट

हुई। उसने पार्वतीजीसे कहा—हे माता ! महाबली शुभ्य-निशुभ्यसे पीड़ित ये सभी देवता मेरी सुति कर रहे हैं। उस देवीने सभी देवताओंसे कहा—आप सब निर्भय होकर निवास कीजिये। मैं आपका कार्य सिद्ध करूँगी। ऐसा कहकर वे देवी उसी क्षण अन्तर्धान हो गयीं।

एक दिन शुभ्य-निशुभ्यके चण्ड-मुण्ड नामक सेवकोंने उन देवीको देखा और उनके मनोहर रूपको देखते ही वे अत्यन्त मोहित हो गये। तदनन्तर उन्होंने जाकर अपने स्वामीसे सारा वृत्तान्त सुनाते हुए देवीकी अलौकिक सुन्दरताका वर्णन किया। चण्ड-मुण्डके द्वारा कहा गया यह वचन सुनकर उस असुरने देवीके पास अपना सुग्रीव नामक दूत भेजा और उससे कहा—‘हे दूत ! तुम हिमालय-पर्वतपर जाकर उस सुन्दर स्त्रीको प्रथलपूर्वक मेरे पास लाओ।’ उसकी आज्ञा पाकर उस सुग्रीवने हिमालयपर्वतपर जाकर महेश्वरी जगद्भावोंको अपने स्वामीका सन्देश सुनाया तथा उनसे शुभ्य-निशुभ्यको पतिरूपमें स्वीकार करनेका अप्राप्त किया। देवी बोलीं—‘हे दूत ! जो युद्धमें मुझे जीत लेंगा और मेरा अहंकार दूर करेगा, मैं उसे ही पतिरूपमें वरण करूँगी।’ तब सुग्रीव नामक दूतने देवीका यह वचन वहाँ जाकर विस्तारपूर्वक अपने राजासे कह दिया। दूतकी बात सुनकर शुभ्यने क्रोधित हो अपने सेनापति धूम्रलोचनको उस सुन्दरीको बलपूर्वक लानेकी आज्ञा दी। इस प्रकार शुभ्यकी आज्ञा प्राप्तकर धूम्रलोचन नामक दैत्यने हिमालयपर जाकर उमाके अंशसे उत्पन्न भुवनेश्वरीसे कहा—‘हे सुन्दरी ! तुम मेरे स्वामीके पास चलो, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।’ देवी बोलीं—‘युद्धके बिना मेरा जाना असम्भव है।’

देवीद्वारा ऐसा कहे जानेपर वह दानव धूम्रलोचन उनकी ओर झटपटा, किंतु महेश्वरीने ‘हुँ’ के उच्चारणमात्रसे उसे उसी क्षण भस्म कर दिया। उसी समयसे ये देवी लोकमें धूमाकाती नामसे विख्यात हुईं। धूमाकातके मारे जानेका समाचार सुनकर शुभ्य अत्यन्त क्रोधित हुआ, तब उसने चण्ड-मुण्ड एवं रक्तबीज नामक असुरोंको भेजा। उन असुरोंसे वाद-विवाद तथा युद्ध होनेपर परमेश्वरीने लीलामात्रसे चण्ड-मुण्डसहित महान् असुर रक्तबीजको भी मार डाला।

ऋषि बोले—हे राजन् ! उस महान् असुरने इन

दैत्यवरोंके मारे जानेका समाचार सुनकर अपने दुर्ज्य गणोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी। इसके साथ ही निशुभ्य और शुभ्य दोनों भाइयोंने रथपर आरूढ़ हो स्वयं भी युद्धके लिये प्रस्थान किया।

घोर युद्ध होने तथा राक्षसोंका महान् संहार हो जानेके पश्चात् देवी अम्बिकाने विषमें बुझे तीखे बाणोंद्वारा निशुभ्यको मारकर धराशायी कर दिया। अपने असीम शक्तिशाली छोटे भाइके मारे जानेपर शुभ्य रोषसे भर गया और उसने रथपर बैठकर आठ भुजाओंसे युक्त हो महेश्वरप्रिया अम्बिकापर एक बड़ी भारी शक्ति छोड़ी, जिसकी शिखासे आगकी ज्वाला निकल रही थी, परंतु देवीने एक उल्काके द्वारा उसे मार गिराया। तत्पश्चात् चण्डिकाने त्रिशूल उठाकर उस असुरपर घातक प्रहार किया। शिवाके लोकपावन पाणिपंकजसे मृत्युको प्राप्त होकर वे दोनों असुर परमपदके भागी हुए।

उन महापराक्रमी दोनों भाइयोंके मारे जानेपर सभी दैत्य व्याकुल होकर दसों दिशाओंमें भाग गये। इन्द्रादि सभी देवता सुखी हो गये। राजन् ! इस प्रकार शुभ्यासुरका संहार करनेवाली देवी सरस्वतीके चरित्रका वर्णन किया गया, जो साक्षात् उमाके अंशसे उत्पन्न हुई थी।

भगवती उमाका प्रातुर्भाव

मुनि बोले—सूतजी ! अब आप भुवनेश्वरी उमाके अवतारका वर्णन करें, जो परब्रह्म मूलप्रकृति, निराकार होकर भी साकार तथा नित्यानन्दमयी सती कही जाती हैं।

सूतजी कहते हैं—एक बार देवताओं एवं दैत्योंमें परस्पर युद्ध हुआ, उसमें महामायाके प्रभावसे देवगणोंकी विजय हुई। इससे देवताओंको अहंकार हो गया और वे अपनी प्रसंगा करने लगे। उसी समय वहाँ एक पुंजीभूत तेज प्रकट हुआ, जिसे देखकर देवता आश्चर्यचकित हो उठे। उन्हें यह पता नहीं था कि यह श्यामा (भगवती उमा)-का उल्काप्रभाव है, जो देवताओंके अभियानको चूर्ण करनेवाला है। देवताओंके अधिपतिने देवताओंको उस तेजीकी परीक्षा करनेकी आज्ञा दी। सर्वप्रथम वायुदेव उस तेज़-पुंजके निकट गये। तेज़-पुंजके पूछनेपर वायुदेवता अभिमानपूर्वक बोले—मैं वायु हूँ। सम्पूर्ण जगत्का प्राण

हूँ। मैं ही समस्त विश्वका संचालन करता हूँ। तब उस महातेजने कहा। यदि तुम जगत्के संचालनमें समर्थ हो तो इस तृणको अपने इच्छानुसार चलाओ तो सही, तब वायुदेवताने सभी उपाय करके अपनी सारी शक्ति लगा दी, परंतु वह तिनका अपने स्थानसे तिलभर भी नहीं हटा। इससे वायुदेव लज्जित हो गये और इन्द्रकी सभामें लौटकर अपनी पराजयका सारा वृत्तान्त सुनाया। तब इन्द्रने बारी-बारीसे समस्त देवताओंको भेजा, पर वे उसे जाननेमें समर्थ न हो सके, तब इन्द्र स्वयं ही गये। इन्द्रको आते देख वह तेज तत्काल अदृश्य हो गया। इससे इन्द्र बड़े विस्मित हुए। तब इन्द्रने यह विचार किया कि जिसका ऐसा चरित्र है, मुझे उसीकी शरणमें जाना चाहिये।

इसी बीच अकारणकरुणामूर्ति सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती उमा उनका अभिमान दूर करनेके लिये चैत्र शुक्ल नवमीको मध्याह्नकालमें वहाँ प्रकट हुई। तेजके मध्यमें विरजमान परमब्रह्मस्वरूपिणी महामायाने कहा— मैं निराकार होकर भी साकार हूँ। मैं ही परब्रह्म, परमज्योति, प्रणव और युगलरूपिणी हूँ। काली, लक्ष्मी और सरस्वती आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ तथा ये सकल कलाएँ मेरे ही अंशसे प्रकट हुई हैं। मेरे ही प्रभावसे तुम लोगोंने सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय पायी है।

समुण एवं निरुण—यह मेरा दो प्रकारका रूप कहा गया है। प्रथम रूप मायामय है तथा दूसरा रूप मायारहित है। हे देवताओ! इस प्रकार मुझे जानकर और अपने गर्वका परित्याग करके भक्तिसे युक्त होकर भुज्ञ सनातनी प्रकृतिकी आराधना करो। उसी समयसे वे देवता अभिमान छोड़कर एकाग्रचित्त हो, पूर्वकी भाँति पार्वतीकी आराधना करने लगे। इस प्रकार मैंने उमाके प्रादुर्भावका वर्णन पूर्ण किया।

देवीके द्वारा दुर्गमासुरका वध तथा

उनके दशमहाविद्यासहित विभिन्न

स्वरूपोंका ग्राकृत्य

मुनिगण बोले—महाप्राज्ञ सूतजी! हम सबलोग प्रतिदिन दुर्गके चरित्रको निरन्तर सुनना चाहते हैं, अतः आप भगवतीकी अद्भुत लीलाका वर्णन कीजिये। सूतजी कहते हैं—मुनियो! पूर्वकालमें दुर्गम नामका एक महावलवान्

असुर था, उसने ब्रह्माजीके वरदानसे चारों वेदोंको हस्तगत कर लिया था तथा वह पृथ्वीतलपर बहुत उपद्रव करने लगा, जिससे सब लोग दुखी हो गये, उनके महान् दुःखको देखकर सब देवता महेश्वरी योगमायाकी शरणमें गये। देवगण बोले—हे महामाये! अपनी समस्त प्रजाओंकी रक्षा करें एवं अपने क्रोधको दूर करें। अन्यथा सभी लोग नष्ट हो जायेंगे। तदनन्तर प्रजाओंको दुखी देखकर भगवतीके अनन्त नेत्रोंमें करुणाके आँसू छलक आये। वे व्याकुल होकर लगातार नौ दिन और नौ रात रोती रहीं, अपने नेत्रोंसे हजारों जलधाराएँ बहाने लगीं, उन धाराओंसे सभी लोग तथा समस्त औषधियाँ तृप्त हो गयीं। इस प्रकार ब्राह्मण, देवता और मनुष्योंसहित सभी सन्तुष्ट हो गये। उस समय समस्त देवता एकत्र होकर बोले—देवि! अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहत हुए वेद लाकर हमें दीजिये, तब देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—‘देवताओ! अपने घरको जाओ, मैं शीघ्र ही वेद लाकर तुम्हें अर्पित करूँगी।’

इसके अनन्तर स्वर्ण, भूलोक तथा अन्तरिक्षमें कोलाहल मच गया। उसे सुनकर उस भयानक दैत्यने चारों ओरसे देवपुरीको घेर लिया फिर तो देवी और दैत्य दोनोंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया। समरांगणमें दोनों ओरसे तीखे बाणोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीचमें देवीके शरीरसे सुन्दर स्वरूपवाली काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, धैर्यी, बगला, धूमा, श्रीमती त्रिपुरसुन्दरी तथा मातंगी—ये मनोहर रूपवाली दस महाविद्याएँ शस्त्रयुक्त हो प्रकट हो गयीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ प्रकट हुईं। उन मातृगणोंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। इसके बाद देवीने त्रिशूलकी धारसे उस दुर्गम दैत्यको मार डाला। इस प्रकार भगवतीने उस समय दुर्गमासुर नामक दैत्यको मारकर चारों वेद वापस ले देवताओंको दे दिये।

तब देवतालोग बोले—अम्बिके! हम लोगोंके लिये आपने असंख्य नेत्रोंसे युक्त रूप धारण कर लिया था। इसलिये मुनिजन आपको 'शताशी' कहेंगे। अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा आपने समस्त लोकोंका भरण-

पोषण किया है। इसलिये 'शाकभरी' नामसे आपकी खाति होगी। आपने दुर्गम नामक महादेवका वध किया है, इसलिये लोग आप कल्याणमयी भगवतीको 'दुर्गा' कहेंगे। माता! आपतक मन, बाणी और शरीरकी पहुँच होनी कठिन है। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये तीनों आपके नेत्र हैं। हम आपके प्रभावको नहीं जानते, इसलिये आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं।

देवीने कहा—जैसे पूर्वकालमें उम्मारी रक्षके लिये मैंने दैत्योंको मारा है, उसी प्रकार आगे भी असुरोंका संहार करूँगी। जब मैं भ्रमरका रूप धारण करके अरुण नामक असुरका वध करूँगी, तब संसारके मनुष्य मुझे 'भ्रामरी' कहेंगे। फिर मैं भीम (भयंकर) रूप धारण करके रक्षकोंको खाने लगूँगी, उस समय मैं पैर 'भीम देवी' नाम प्रसिद्ध होगा। जब-जब पृथ्वीपर असुरोंकी ओरसे बाधा उत्पन्न होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर प्रजाजनोंका कल्याण करूँगी, इसमें संशय नहीं है।

कैलाससंहिता

व्यासजीसे शौनकादि ऋषियोंका संवाद

ऋषियोंके द्वारा शिवतत्वका ज्ञान बढ़ानेवाली कैलास-संहिताके वर्णनको सुननेकी इच्छा व्यक्त करनेपर व्यासजीने शिवतत्वसे युक्त दिव्य तथा उत्कृष्ट कैलास नामक संहिताका वर्णन करते हुए कहा—पूर्वकालमें हिमालयपर तप करनेवाले महातेजस्वी ऋषियोंने आपसमें विचारकर काशी जानेकी इच्छा की। उन्होंने काशी पहुँचकर मणिकर्णिकामें स्नानकर देवतादिका तर्पण किया। तदनन्तर देवाधिदेव विश्वेश्वरका पूजनकर शतसदिय आदि मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करके अपनेको कृतार्थ समझा और कहा—‘आज हमलोग शिवकृपासे पूर्ण मनोरथवाले हो गये।’

उसी समय पंचक्रोशी परिक्रमा करनेके लिये आये हुए सूतजीको देखकर उनके पास जाकर सभीने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे महाभाग सूतजी! भगवान् व्यासजीने आपको सभी पुराणोंके

देवीके क्रियायोग एवं व्रत-उत्पव आदिका वर्णन

सूतजी कहते हैं—व्यासजीके द्वारा पार्वतीके अन्धुत क्रियायोगको सुननेकी जिज्ञासा करनेपर सनत्कुमारने कहा—हे द्वैपायन! ज्ञानयोग, क्रियायोग तथा भक्तियोग—यह श्रीमाताकी उपासनाके तीन मार्ग हैं। मुक्तिका प्रधान कारण योग है और उस योगके ध्येयका उत्तम साधन क्रियायोग है।

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्र-व्रत करना चाहिये। इसके करनेपर सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। इस नवरात्रके प्रभावका वर्णन करनेमें ब्रह्मा, महादेव तथा कार्तिकेय भी समर्थ नहीं हैं, फिर दूसरा कौन समर्थ हो सकता है?

यह उमासंहिता परम पुण्यमयी तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाली है। इसमें नाना प्रकारके उपाख्यान हैं। यह कल्याणमयी संहिता भोग तथा मोक्षको प्रदान करनेवाली है, अतः शिवाकी भक्ति चाहनेवाले पुरुषोंको सदा इस परम पुण्यमयी उमासंहिताका त्रिवेण एवं पाठ करना चाहिये।

गुरुरूपमें अभिषिक्तकर सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है, अतः पौराणिकी विद्या आपके हृदयमें स्थित है। सभी पुराण वैदार्थका प्रतिपादन करते हैं। समस्त वेद प्रणवसे उत्पन्न हुए हैं, प्रणवका तात्पर्य स्वयं महेश्वर हैं, अतः महेश्वर आपके हृदयमें प्रतिष्ठित हैं। हे महामते! आप ही हम लोगोंके विशेष गुरु हैं, अतः आप परम कृपापूर्वक महेश्वरके श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश कीजिये।

सूतजी बोले—हे महर्षियो! पूर्व समयमें गुरुदेव व्यासजीने नैमित्तराज्यनिवासी मुनियोंको जो उपदेश दिया था, उसीको मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे लोगोंमें शिवभक्ति उत्पन्न हो जाती है, आपलोग सावधान होकर सुनें।

पूर्वकालमें ऋषिगण यज्ञाधिपति रुद्रको प्रसन्न करनेकी इच्छासे दीर्घसत्र करने लगे। उनकी यह भावना देखकर भगवान् वेदव्यास वहीपर प्रकट हो गये। उन्हें देखकर मुनियोंने सत्कारपूर्वक उन्हें उत्तम आसनपर

विराजमान कराया और कहा—हे महाभाग! प्रणवके अर्थको प्रकाशित करनेकी इच्छावाले हमलोग नैमिषारण्य नामक इस तीर्थमें महासत्र सम्पादित कर रहे हैं। अतः हे दयानिधि! आप इस अपार भ्रमसागरमें झूटते हुए हमलोगोंको शिवज्ञानरूपी नौकासे पार कर दीजिये। इस प्रकार मुनियोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर महामुनि व्यासजीने कहा—हे ब्राह्मणो! प्रणवार्थको प्रकाशित करनेवाला शिवज्ञान सर्वथा दुलंभ है। शिवभक्तिसे रहित लोगोंको यह नहीं प्राप्त होता है। आपलोगोंने भगवान् सदाशिवकी उपासना की है। अतः मैं आपलोगोंसे उमामहेश्वरका संवादरूप प्राचीन इतिहास कह रहा हूँ।

किसी समय हिमालयपर्वतपर पतिके निकट बैठी गौरी शिवजीसे कहने लगी—हे देव! आपके द्वारा उपदिष्ट मन्त्र प्रणवयुक्त कहे गये हैं, अतः सबसे पहले मैं प्रणवके निश्चित अर्थको सुनना चाहती हूँ। प्रणव किस प्रकार उत्पन्न हुआ, यह वेदका आदि क्यों कहा जाता है, इसके जपकी विधि क्या है? हे महेशन! यदि आपकी मुझपर कृपा है तो यह सब मुझे विशेषरूपसे बताइये।

भगवान् शिव बोले—हे देवि! प्रणवके अर्थको जान लेना ही मेरा ज्ञान है। यह सभी विद्याओंका बीज है। यह वेदका आदि, वेदका सार और विशेषरूपसे मेरा स्वरूप है। मैं शिव इस 'ॐ' नामक एकाक्षर मन्त्रमें निवास करता हूँ। शिवको ही प्रणवस्वरूप तथा प्रणवको ही शिवस्वरूप कहा गया है। हे देवेशि! मैं काशीमें जीवोंकी मुक्तिके लिये सभी मन्त्रोंमें श्रेष्ठ इसी प्रणवका उपदेश करता हूँ।

यह प्रणव ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण ही है। अतः इसे प्रणव कहा गया है। इस प्रणवका आदि अक्षर अकार है। उसके बाद उकार, मध्यमें मकार और अन्तमें नाद है। इनके संयोगसे 'ॐ' बनता है। 'सर्वं खत्तिदं ब्रह्म' इस श्रुतिके अनुसार सारा प्रपञ्च ही ओंकारस्वरूप है। जिसे दृढ़ वैराग्य होता है, वही इस प्रणवका अधिकारी है।

इसके अनन्तर जीव और ब्रह्मकी एकत्व भावनासे प्रणवका वर्णन करते हुए भगवान् सदाशिव सन्न्यास-

विधिका वर्णन करते हैं और भगवतीसे कहते हैं कि साधकको सावधानचित होकर 'ॐ' एकाक्षर मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस दहराकाशके मध्य तुम्हरे साथ मेरा सदा स्मरण करना चाहिये। इस प्रकारके उपासकको मेरा लोक प्राप्त होता है और वह मुझसे ज्ञान पाकर मेरे सायुज्यका फल प्राप्त कर लेता है।

शैनकादि ऋषियोंसे वार्ता करनेके उपरान्त सूतजी तीर्थयात्राके प्रसंगसे पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे। एक संवत्सर बीत जानेके बात महामुनि सूतजी पुनः काशी आये। उन्हें देखकर ऋषिगण बहुत प्रसन्न हुए।

ऋषि बोले—हे मुने! विरज होमके समय पहले आपने जो वामदेवका मत सूचित किया था, उसे हमने विस्तारपूर्वक नहीं सुना। अब हम बड़े आदर और श्रद्धाके साथ सुनना चाहते हैं। श्रीशिवकथाकी बात सुनकर सूतजीके शरीरमें रोमांच हो आया और वे प्रसन्न होकर बोले—महाभाग महात्माओं! तुम भगवान् शिवके भक्त तथा दृढ़तापूर्वक ब्रतका पालन करनेवाले हो, यह जानकर ही मैं तुम लोगोंके समक्ष इस विषयका वर्णन करता हूँ—पूर्वकालके रथन्तर कल्पमें महामुनि वामदेव माताके गर्भसे बाहर निकलते ही शिवतत्त्वके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे। वे वेदों, आगमों, पुराणों तथा अन्य सब शास्त्रोंके भी तात्त्विक अर्थको जाननेवाले थे। उनके मनमें किसी वस्तुकी इच्छा नहीं थी तथा वे अहंकारशून्य थे। वे दिग्म्बर महाज्ञानी महात्मा दूसरे महेश्वरके समान जान पड़ते थे। इस तरह घूमते हुए वामदेवजी मेरसे दक्षिण शिखर कुमारशृंगपर प्रसन्नतापूर्वक पहुँचे, जहाँ मयूरवाहन शिवकुमार सर्वदेवविनिद्व भगवान् स्कन्द रहते थे। उनके साथ उनकी शक्तिभूता 'गजावल्ली' भी थीं। वहीं स्कन्दस्थामीके समीप स्कन्दसर नामका एक प्रसिद्ध सरोवर था।

महामुनि वामदेवने शिव्योंके साथ उसमें स्नान करके शिखरपर बैठे हुए कुमारका दर्शन किया। वे उगते हुए सूर्यके समान तेजस्वी थे, मोर उनका बाहन था। स्कन्दका दर्शन और पूजन करके उन मुनीश्वरने बड़ी भक्तिसे उनका स्तवन किया।

वामदेवने भगवान् स्कन्दकी स्तुति करके तीन बार उनकी परिक्रमा की और बारम्बार साष्टांग प्रणाम करके विनीत भावसे उनके पास खड़े हो गये। वामदेवजीके द्वारा किये गये स्तोत्रको सुनकर भगवान् स्कन्द बड़े प्रसन्न हुए और वामदेवजीसे बोले—मुने! मैं तुम्हारी भक्तिसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। यदि मुझसे कुछ सुनना हो तो कहो, मैं लोकपर अनुग्रह करनेके लिये उनका वर्णन करूँगा। वामदेवजी विनयपूर्वक बोले—महाप्राज्ञ! प्रणव सबसे उत्तम मन्त्र है तथा साक्षात् परमेश्वरका वाचक है। पशुओं (जीवों)-के पाश (बन्धन)-को छुड़ानेवाले भगवान् पशुपति ही उसके वाच्यार्थ हैं। 'ओमितीर्दं सर्वम्' (तै० ठ० १।८।१) ओंकार ही यह प्रत्यक्ष दिखनेवाला जगत् है। यह सनातन श्रुतिका कथन है। 'ओमिति ब्रह्म' (तै० ठ० १।८।१) अर्थात् 'ॐ' यह ब्रह्म है तथा 'सर्वं होतद् ब्रह्म' (माण्डूक्योपनिषद् २) यह सबका सब ब्रह्म ही है इत्यादि वातं भी श्रुतियोंद्वारा कही गयी हैं। तात्पर्य यह है कि समष्टि और व्यष्टि सभी पदार्थ प्रणवके अर्थ हैं। प्रणवद्वारा सबका प्रतिपादन होता है। यह वात मैंने सुन रखी है। अतः कृपा करके आप प्रणवके अर्थका प्रतिपादन कीजिये। मुनिके इस प्रकार पूछनेपर स्कन्दने भगवान् सदाशिवको प्रणाम करके उस श्रेयका वर्णन आरम्भ किया, जिसे श्रुतियोंने भी छिपा रखा है।

श्रीस्कन्दने कहा—मुनीश्वर वामदेव। इस लोकमें जितने जीव हैं, वे सब नाना प्रकारके शास्त्रोंसे मोहित हैं। परमेश्वरकी अति विनित्र मायाने उन्हें परमार्थसे विचित कर दिया है। अतः प्रणवके वाच्यार्थभूत साक्षात् महेश्वरको वे नहीं जानते। वे महेश्वर ही सगुण-निर्गुण अर्थात् त्रिदेवोंके जनक परब्रह्म परमात्मा हैं। मैं बारम्बार इस सत्यको दोहराता हूँ कि प्रणवके अर्थ साक्षात् शिव ही हैं। श्रुति, स्मृति, शास्त्रों एवं पुराणोंमें प्रधानतया उन्हीं को प्रणवका वाच्यार्थ बताया गया है। जो परमात्मा स्वयं किसीसे और कभी उत्पन्न नहीं होता, वह परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं ही सर्वेश्वर 'शिव' नाम धारण करता है। मुमुक्षु योगियोंको

नित्य उनके इस स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

इस मानवलोकमें चार वर्ण प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य—ये तीन वर्ण हैं, उनका वैदिक आचारसे सम्बन्ध है। शूद्रोंका वेदाध्ययनमें अधिकार न होनेके कारण त्रैवर्णिकोंकी सेवा ही उनके लिये सारभूत धर्म है। श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादित कर्मका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष अवश्य सिद्धिको प्राप्त होगा। वर्ण-धर्म और आश्रमधर्मके पालनजनित पुण्यसे परमेश्वरका पूजन करके बहुत-से श्रेष्ठ मुनि उनके सायुज्यको प्राप्त हो गये। ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ऋषियोंकी, यज्ञ-कर्मके अनुष्ठानसे देवताओंकी तथा सत्तानोत्पादनसे पितरोंकी तृप्ति होती है—ऐसा श्रुतिने कहा है। इस तरह ऋषित्रृष्ण, देवऋण तथा पितृऋण—इन तीनोंसे मुक्त हो वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट होकर मनुष्य सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहन करते हुए जितेन्द्रिय, तपस्की, मिताहारी हो योगका अभ्यास करे, जिससे बुद्धि निश्चल तथा अतिदृढ़ हो जाय। इस प्रकार क्रमशः अभ्यास करके शुद्ध चित्त हुआ पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंका संन्यास कर दे। समस्त कर्मोंका संन्यास करनेके पश्चात् ज्ञानमयी पूजाके द्वारा परमेश्वरको प्रसन्न करे, यह पूजा जीवकी साक्षात् शिवके साथ एकताका बोध कराकर जीवन्मुक्तिरूप फल देनेवाली है। यतियोंके लिये इस पूजाको सर्वोत्तम तथा निर्दोष समझना चाहिये। इसके अनन्तर श्रीस्कन्दजीने ज्ञानमयी पूजाका वर्णन करते हुए संन्यास-ग्रहणकी शास्त्रीय विधि, दण्डधारण आदिका प्रकार, प्रणवके अर्थोंका विवेचन, शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, शिवसे जीव और जगत्को अभिन्नताका प्रतिपादन तथा महावाक्योंके अर्थका विनान एवं उसका भावार्थ प्रस्तुत किया।

इसके बाद श्रीस्कन्दने यतियोंपर कृपा करके उनसे संन्यासियोंके धौर और स्नान-विधिका वर्णन किया तथा यतिके अन्तर्वेष्ट-कर्म, दशाह-एकादशाह कृत्य एवं द्वादशाह कृत्यका वर्णन तथा उसकी प्रक्रियाका विवेचन किया।

यह सब वर्णन करते हुए श्रीस्कन्दजी कहते हैं—
मुझे ! मैंने जो कुछ वर्णन किया है, वह साक्षात् भगवान् शिवका कहा हुआ उत्तम रहस्य है, जो वेदान्तके सिद्धान्तके अनुरूप है। इस मार्गपर चलनेवाला यति 'शिवोऽहमस्मि' (मैं शिव हूँ) इस आत्मस्वरूप शिवकी भावना करता हुआ शिवस्वरूप हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार मुनीश्वर बामदेवको उपदेश देकर देवेश्वर कार्तिकेय कैलासशिखरपर चले गये। मुनि बामदेव भी कार्तिकेयको प्रणाम करके कैलास-शिखरपर जा पहुँचे और वहाँ उन्होंने उमासहित

महेश्वरके मोक्षदायक चरणोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् उन्होंने भाँति-भाँतिके स्तोत्रोद्घारा जगदभ्या और पुत्रसहित परमेश्वर शिवका स्तवन किया। इसके बाद देवी पार्वती और महादेवजीके चरणकमलोंका आश्रय लेकर वे वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। आप सभी ऋषियों भी इसी प्रकार प्रणवके अर्थभूत महेश्वरका तथा मोक्षदायक तारकमन्त्र 'ॐ कार' का ज्ञान प्राप्त करके यहाँ सुखसे रहो तथा विश्वनाथजीके चरणोंमें सायुज्यरूपा उत्तम मुक्तिका चिन्तन करो। अब मैं भी गुरुदेवकी सेवाके निमित्त बदरिकाश्रमतीर्थको जाऊँगा।

वायवीयसंहिता [पूर्वखण्ड]

किसी समय धर्मक्षेत्र नैमिथारण्यतीर्थके प्रयागक्षेत्रमें स्तवन्तपरायण मुनियोंने महायज्ञका आयोजन किया था। उन महर्षियोंके यज्ञका वृचान्त सुनकर महात्मा सूतजी वहाँ पधारे। मुनियोंने उनका यथोचित स्वागत एवं पूजन किया तथा बोले—हे महाभाग ! हमलोगोंके कल्याणके लिये ज्ञानसे युक्त तथा वेदान्तके सारस्वरूप पुराणको हमें सुनाइये ।

इसके अनन्तर सूतजीने शिवागमोक्त सिद्धान्तोंसे विभूषित पुराणानुक्रम एवं पुराणकी उत्पत्तिका वर्णन करते हुए चारों वेद, उनके छः अंग, मीमांसा, न्याय, पुराण एवं धर्मशास्त्र इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र—इस प्रकार अठारह विद्याओंका वर्णन किया और कहा कि इन सबके आदिकर्ता साक्षात् महेश्वर हैं।

भगवान् सदाशिवने समस्त जगत्को उत्पन्न करनेकी इच्छा करते हुए सनातन ब्रह्मदेवको साक्षात् पुत्ररूपमें उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने मध्यम पुत्र भगवान् विष्णुको जगत्के पालनके लिये रक्षाशक्ति प्रदान की।

ब्रह्माजीने प्रजासृष्टिका विस्तार करते हुए सर्वप्रथम पुराणोंका स्मरण किया। इसके पश्चात् उनके मुखसे वेद उत्पन्न हुए। उसके अनन्तर समस्त शास्त्र उत्पन्न हुए। विस्तृत विद्याओंको संक्षिप्त करनेके लिये प्रत्येक द्वापरके

अन्तमें प्रभु विष्णु व्यासरूपसे इस पृथ्वीपर अवतार लेकर विचरण करते हैं।

सूतजी कहते हैं—श्वेतवाराह कल्पमें ऋषियोंमें परस्पर विवाद हुआ, यह ब्रह्म है या नहीं है—इस प्रकार परब्रह्मका निरूपण बहुत कठिन होनेके कारण वे सभी मुनिगण सुष्ठिकर्ता ब्रह्माजीके पास पहुँचे और कहने लगे—हे भगवन् ! हम लोग घोर अज्ञानान्धकारसे धिरे हुए हैं। अतः परस्पर विवाद करते हुए दुखी हैं। हमलोगोंको परमतत्त्वका ज्ञान अभीतक नहीं हो पाया है—ऐसा पूछे जानेपर ब्रह्माजीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और वे ध्यानमें मान होकर 'रुद्र-रुद्र' इस प्रकारका शब्द उच्चारण करते हुए बोले—'जो सम्पूर्ण जगत्के सुष्ठिकर्ता हैं, जिनसे ये सभी ब्रह्म, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्रादि देवता उत्पन्न हुए, जिन्होंने सर्वप्रथम मुझे पुत्ररूपसे उत्पन्न किया, वेदोंका ज्ञान प्रदान किया; उन्होंकी कृपासे मैंने इस प्रजापति पदको प्राप्त किया, वे एकमात्र भगवान् रुद्र हैं, दूसरा कोई नहीं है।'

समस्त जीव इनके वशमें हैं। ये सबके प्रेरक हैं, ये परम भक्तिसे ही देखे जा सकते हैं, अन्य उपायोंसे नहीं। वह भक्ति शिवकी कृपासे ही प्राप्त होती है और उनकी कृपा भक्तिसे उत्पन्न होती है, जैसे अंकुरसे बीज और बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है।

ज्ञान और भक्तिके अनुरूप शिवकी कृपा प्राप्त

होनेपर मुक्ति होती है। इस समय आप लोगोंने जो दिव्य सहस्र वर्षबाला दीर्घ यज्ञानुष्ठान किया है, उस यज्ञके अन्तमें मन्त्रद्वारा आवाहन करनेपर वायुदेव वहाँ पथरेंगे; वे ही आप लोगोंको कल्याणका साधन एवं उपाय बतायेंगे।

नैमित्तिरप्यकी यज्ञभूमिमें वायुदेवका पथारना

तदनन्तर ब्रह्माजीने कहा—मैंने इस मनोमय चक्रका निर्माण किया है। मैं इस चक्रको छोड़ रहा हूँ, जहाँ इसकी नैमि गिरकर टूट जाय, वही देश तपस्याके लिये शुभ होगा। ऐसा कहकर पितामहने उस सूर्यतुल्य मनोमय चक्रकी ओर देखकर और महादेवजीको प्रणामकर उसे छोड़ दिया। फेंका गया वह कान्तिमय चक्र विमल जलसे युक्त सरोवरवाले किसी बनके एक मनोहर शिलापटपर गिर पड़ा। इसी कारणसे वह वन मुनिपूजित नैमित्तिरप्य नामसे विख्यात हुआ।

सूतजी कहते हैं—उन ऋषियोंने उस स्थानमें यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ किया। कुछ समय बीत जानेपर वह यज्ञ जब समाप्त हो गया तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे वहाँ स्वयं वायुदेव पथरे।

तब सभीने उठकर वायुदेवको प्रणामकर उन्हें स्वर्णमय आसन प्रदान किया, तत्पश्चात् उनकी भलीभांति पूजा की। इसके बाद मुनियोंके द्वाया पूछे जानेपर शिवमें उनकी भक्ति बढ़ानेके लिये वायुदेवने सुष्टिकी उत्पत्ति एवं शिवका ऐश्वर्य संक्षेपमें बताया।

मुनियोंने पूछा—‘आपने वह कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया है, जो परमसे भी परम, सत्य एवं शुभ है तथा जिसमें उत्तम निष्ठा रखकर पुरुष परम आनन्दको प्राप्त करता है।’ वायुदेवता बोले—महर्षियो! मैंने पूर्वकालमें पशु, पाश और पशुपतिका जो ज्ञान प्राप्त किया था, सुख चाहनेवाले पुरुषको उसीमें ऊँची निष्ठा रखनी चाहिये। अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला दुःख ज्ञानसे ही दूर होता है। वस्तुके तीन भेद माने गये हैं—जड़ (प्रकृति), चेतन (जीव) और इन दोनोंका नियन्ता (परमेश्वर)। इन्हीं तीनोंको क्रमसे पाश, पशु तथा पशुपति कहते

हैं। ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर प्राणियोंतक सभी जीव पशु कहे गये हैं। उन सभी पशुओंके लिये ही यह उत्तम दृष्टान्त कहा गया है। यह जीव पाशोंमें बैधता और सुख-दुःख भोगता है, इसलिये ‘पशु’ कहलाता है। यह ईश्वरकी लीलाका साधनभूत है।

महर्षियो! इस विश्वका निर्माण करनेवाला कोई पति है, वही पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाला है। अतः वही पशुपति है। पशु, पाश और पतिका जो वास्तवमें पृथक्-पृथक् स्वरूप है, उसे जानकर ही ब्रह्मावेता मनुष्य योनिसे मुक्त होता है। सुष्टिके आरम्भमें एक रुद्रदेव ही विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं रहता। वे ही इस जगत्की सुष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और सबका संहार कर डालते हैं।

इसके अनन्तर वायुदेवने विद्या-अविद्या, प्रकृति-पुरुष, आत्मतत्त्व-जीवतत्त्वका तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया है।

संक्षेपमें सिद्धान्तकी बात यह है कि भगवान् शिव प्रकृति एवं पुरुषसे परे हैं, यही सुष्टिकालमें जगत्को रखते और संहारकालमें पुनः सबको आत्मसात् कर लेते हैं।

काल-महिमाका वर्णन

ऋषियोंद्वारा जिज्ञासा करनेपर वायुदेवने कालकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा—सम्पूर्ण जगत् तो कालके वशमें है, पर काल जगत्के वशमें नहीं है। शिवजीका अप्रतिहत तेज कालमें सन्निविष्ट है, इसलिये कालकी महान् मर्यादा मिटायी नहीं जा सकती।

तदनन्तर वायुदेवने काल-महिमा, प्रलय, ब्रह्माण्डकी स्थिति, रुद्रतत्त्वति एवं ब्रह्माजीद्वारा सुष्टि-रचना तथा सर्व आदिका वर्णन किया।

वायुदेवने कहा—ब्रह्माजीने पहले पाँच मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया। सनक, सनन्दन, सनातन, ऋभु और सनकुमार—ये सब-के-सब योगी तथा बीतराग थे। उन्होंने सुष्टि-रचनाकी इच्छा नहीं की, तब ब्रह्माजीने पुनः सुष्टि-रचनाकी इच्छासे बड़ी भारी तपस्या की, पर इससे उनका कोई काम न बना। इस कारण ग्रोथित होनेपर ब्रह्माजीके दोनों नेत्रोंसे आँसूकी बूँद गिरने लगीं। इन

अश्रुविन्दुओंसे भूत-प्रेत उत्पन्न हुए। क्रोध-मोहके कारण उन्हें मूळां आ गयी। इसी क्रममें भगवान् नीललोहित शिव ब्रह्माजीके मुखसे ग्यारह रूपोंमें प्रकट हुए। महादेवजीने उन ग्यारह स्वरूपोंसे कहा कि तुम लोग आलस्यरहित होकर प्रजा-संतानकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करो। उनके ऐसा कहनेपर वे व्याकुल होकर रोने और दौड़ने लगे। रोनेके कारण उनका नाम 'रुद्र' हुआ। इसके अनन्तर ब्रह्माने आठ नामोंद्वारा परमेश्वर शिवका स्तवन किया। ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् रुद्रदेवकी आज्ञा प्राप्तकर ब्रह्माने अन्यान्य प्रजाओंकी सृष्टि आरम्भ की। उन्होंने अपने मनसे ही मरीचि, भगु, अंगिरा, पुलस्त्य आदि बारह पुत्रोंकी सृष्टि की। तत्पश्चात् समाधिद्वारा अपने चित्तको एकाग्र करके रुद्रसहित ब्रह्माजीने देवताओं, असुरों, पितरों, विद्याधरों, गन्धर्वों, गुह्यकों, मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों, जलचरों, सर्पों, कीटों इत्यादिको अपने अंगों-उपांगोंसे उत्पन्न किया।

वायुदेवने कहा—वास्तवमें अचिन्त्यरूप महेश्वर ही सब भूतोंके निर्माता हैं। उनके मुखसे ब्राह्मण प्रकट हुए हैं, वक्षस्थलके ऊपरी भागसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, दोनों जांघोंसे वैश्य तथा पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार उनके अंगोंसे सम्पूर्ण वर्णोंका प्रादुर्भाव हुआ है।

ब्रह्माजीद्वारा भगवान् अर्धनारीश्वरकी स्तुति

वायुदेव बोले—जब ब्रह्माजीद्वारा रची गयी प्रजाओंका पुनः विस्तार नहीं हुआ, तब ब्रह्माजीने मैथुनी सृष्टिके लिये परमेश्वरको प्रसन्न करनेको इच्छासे कठोर तप करना प्रारम्भ किया। भगवान् सदाशिव ब्रह्माजीके तपसे सनुष्ट होकर अर्धनारीश्वरके रूपमें प्रकट हो गये। तब ब्रह्माजी हाथ जोड़कर दण्डवत् प्रणाम करके वेदार्थसे युक्त सूक्ष्म अर्थोंसे परिपूर्ण सूक्ष्मोंसे भगवान् अर्धनारीश्वरकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर मधुर वचन कहते हुए महादेवने अपने शरीरके वामभागसे देवी रुद्राणीको प्रकट किया। जिन दिव्य गुणसम्पन्न देवीको ब्रह्मवेत्ता लोग परात्पर परमात्मा शिवकी पराशक्ति कहते हैं, जिनमें

जन्म, मृत्यु, जरा आदि नहीं हैं, वे भवानी शिवजीके अंगसे उत्पन्न हुईं।

ब्रह्माजी बोले—हे सर्वजगन्मयी देवी! सृष्टिकी बढ़ोत्तरीके लिये मैं मैथुनी सृष्टि करना चाहता हूँ। आपसे पहले नारीकुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। सम्पूर्ण शक्तियोंका आविर्भाव आपसे ही होता है। इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये आप अपने अंशसे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाइये।

ब्रह्माके इस प्रकार याचना करनेपर देवी रुद्राणीने अपनी थौंहोंके मध्य भागसे अपने ही समान कान्तिमती एक शक्ति प्रकट की। ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार वे देवी दक्षपुत्री हो गयीं तथा ब्रह्माजीको अनुपम शक्ति देकर वे महादेवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं और महादेवजी भी अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस जगत्में स्त्री जातिमें भोग प्रतिष्ठित हुआ तथा मैथुनद्वारा प्रजाकी सृष्टि होने लगी। इससे ब्रह्माजीको भी संतोष और आनन्द प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् ऋषियोंकी कई शंकाओंका समाधान वायुदेवताके द्वारा किया गया तथा भगवान् शिव और भगवती पार्वतीकी लीलाओंका वर्णन भी सूतजीने किया।

वायुदेवता कहते हैं—मुनियो! परोक्ष तथा अपरोक्ष प्रकारभेदसे ज्ञान दो प्रकारका माना गया है। परोक्ष ज्ञानको अस्थिर कहा जाता है और अपरोक्ष ज्ञानको सुस्थिर। युक्तिपूर्ण उपदेशसे जो ज्ञान होता है, उसे परोक्ष कहते हैं। वही श्रेष्ठ अनुष्ठानसे अपरोक्ष हो जाता है। अपरोक्ष ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं होता। अतः तुम लोग आलस्यरहित हो श्रेष्ठ अनुष्ठानकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करो।

ऋषियोंने पूछा—वायुदेव! वह कौन-सा श्रेष्ठ अनुष्ठान है, जो मोक्षस्वरूप ज्ञानको अपरोक्ष कर देता है। वायुने कहा—भगवान् शिवका वताया हुआ जो परम धर्म है, उसीको श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है। उसके सिद्ध होनेपर स्वयं मोक्षदायक शिव अपरोक्ष हो जाते हैं।

उपमन्युपर भगवान् शंकरकी कृपा धौम्यके बड़े भाई उपमन्युके द्वारा बाल्यावस्थामें दूधको प्राप्तिके लिये माताकी आज्ञासे तपस्या करनेपर भगवान् शिवने किस प्रकार उपमन्युपर कृपा की और उन्हें वर प्रदान किया, इस प्रकार ऋषियोंद्वारा जिज्ञासा करनेपर वायुदेवने विस्तारपूर्वक इसका वर्णन करते हुए कहा कि भगवान् विष्णुके अनुरोध करनेपर शिवजी

पहले इन्द्रका रूप धारणकर उपमन्युके पास गये, परंतु उपमन्युद्वारा इन्द्रसे कुछ प्राप्त करना स्वीकार नहीं करनेपर सदाशिव भगवान् शंकर उपमन्युपर कृपा करते हुए अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये तथा उपमन्युको अभीष्ट फल प्रदानकर महेश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये। उपमन्यु भी परमेश्वरसे उत्तम वर पाकर सुखपूर्वक अपनी जन्मदात्री माताके स्थानपर चले गये।

वायवीयसंहिता [उत्तरखण्ड]

श्रीकृष्ण और उपमन्युके मिलनका प्रसंग तथा उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपत ज्ञानका उपदेश

वायुदेवके पथानेपर ऋषियोंने उनसे कहा—‘भगवन्! भगवान् श्रीकृष्ण किसी समय धौम्यके बड़े भाई उपमन्युसे मिले थे और उनकी प्रेरणासे पाशुपत ब्रतका अनुष्ठान करके उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आप यह बतायें कि भगवान् श्रीकृष्णने परम उत्तम पाशुपत ज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया?’

वायुदेवता बोले—महर्षियो! पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने महर्षि उपमन्युको प्रणाम करके उनसे इस प्रकार कहा—भगवन्! महादेवजीने देवी पार्वतीको जिस पाशुपत ज्ञान तथा अपनी जिस सम्पूर्ण विभूतिका उपदेश दिया था, मैं उसीको सुनना चाहता हूँ। महादेवजी पशुपति कैसे हुए? पशु कौन कहलाते हैं?

श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर उपमन्युने कहा—देवकीनन्दन! ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यन्त जो भी संसारके चराचर प्राणी हैं, वे सबके सब भगवान् शिवके पशु कहलाते हैं और उनके पति (स्वामी) होनेके कारण देवेश्वर शिवको पशुपति कहा गया है। वे पशुपति अपने पशुओंको माया आदि पाशोंसे बाँधते हैं और भक्तिपूर्वक उनके द्वारा आराधित होनेपर वे स्वयं ही उन्हें उन पाशोंसे मुक्त कर देते हैं। यही है पाशुपत ज्ञान।

शिव और शिवाकी विभूतियोंका वर्णन

श्रीकृष्ण कहते हैं—भगवन्! मुझे यह जाननेकी इच्छा है कि परमेश्वरी शिवा और परमेश्वर शिवका

यथार्थ स्वरूप क्या है? उन दोनोंने स्त्री और पुरुषरूप इस जगत्को किस प्रकार व्याप्त कर रखा है?

उपमन्यु बोले—देवकीनन्दन! साक्षात् महादेवी पार्वती शक्ति हैं और महादेवजी शक्तिमान् हैं। यह जगत् शिव और शिवाके शासनमें है, इसलिये वे दोनों इसके ईश्वर या विश्वेश्वर कहे गये हैं। जैसे शिव हैं, वैसे ही शिवा देवी हैं तथा जैसी शिवा देवी हैं, वैसे ही शिव हैं। जिस तरह चन्द्रमा और उनकी चाँदीनीमें कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार शिव और शिवामें अन्तर नहीं है। शिवके बिना शक्ति नहीं रह सकतीं और न शक्तिके बिना शिव।

परमेश्वर शिव पुरुष हैं और परमेश्वरी शिवा प्रकृति। महेश्वर शिव रुद्र हैं और उनकी बलभा शिवादेवी रुद्राणी। विश्वेश्वर देव विष्णु हैं और उनकी प्रिया लक्ष्मी। जब सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्मा कहलाते हैं तब उनकी प्रियाको ब्रह्माणी कहते हैं। भगवान् शंकर ही सारे संसारके पुरुष और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियोंके रूपमें व्यक्त हैं। अतः सभी स्त्री-पुरुष उन्हींकी विभूतियाँ हैं।

जैसे जलते हुए दीपककी शिखा समूचे घरको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वतीका यह तेज व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश दे रहा है। ये दोनों शिवा और शिव सर्वरूप हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं, अतः सदा ही इन दोनोंका पूजन, नमन एवं चिन्तन करना चाहिये।

श्रीकृष्ण! आज मैंने तुम्हारे समक्ष अपनी बुद्धिके

अनुसार परमेश्वर शिव और शिवाके यथार्थ स्वरूपका वर्णन किया है, परंतु यह नहीं मान लेना कि इन दोनोंके यथार्थ रूपका पूर्णतः वर्णन हो गया।

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! यह चराचर जगत् देवाधिदेव महादेवजीका ही स्वरूप है।

'प्रणव' की महिमा

शिव साक्षात् परमात्मा हैं। वे नित्य परिपूर्ण हैं। दूसरोंपर परम अनुग्रह ही उनके समस्त कर्मोंका फल है। 'प्रणव' उन परब्रह्म परमात्मा शिवका बाचक है। शिवके रूद्र आदि नामोंमें प्रणव ही सबसे उत्कृष्ट माना गया है। प्रणववाच्य शम्भुके चिन्तन और जपसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वही परा सिद्धि है। माण्डूक्योपनिषद्में प्रणवकी चार मात्राएँ बतायी गयी हैं—अकार, उकार, मकार और नाद। अकारको ऋग्वेद, उकारको यजुर्वेद, मकारको सामवेद और नादको अथर्ववेद कहा गया है। अकार सुचिकर्ता ब्रह्म है। उकार पालनकर्ता श्रीहरि है, मकार संहारकर्ता रुद्र है, नाद परमपुरुष परमेश्वर है, वह निरुण एवं निक्षिय शिव है। इस प्रकार प्रणव अपनी तीन मात्राओंके द्वारा ही तीन रूपोंमें इस सम्पूर्ण जगत्का प्रतिपादन करके अपनी अर्धमात्रा (नाद)-के द्वारा शिवस्वरूपका बोध कराता है। इनसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है। उन प्रणवरूप परम पुरुष परमेश्वर शिवसे ही यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है।

शिवके प्रसादसे प्राणियोंकी मुक्ति तथा पाँच प्रकारके शिवधर्मका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण! जो अपने हृदयमें शक्तिसहित भगवान् शिवका दर्शन करते हैं, उन्हींको सनातन शान्ति प्राप्त होती है। जब शिव और शक्तिकी कृपा होती है, तब मुक्ति हथमें आ जाती है। देवता, दानव, पशु-पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े भी उनकी कृपासे मुक्त हो जाते हैं।

परमात्मा शिवने पाँच प्रकारका शिवधर्म बताया है—तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान। लिंग-पूजन आदिको कर्म कहते हैं; चान्द्रायण आदि द्रवतका नाम तप है; चाचिक, उपांशु तथा मानस तीन प्रकारकी जो

शिवमन्त्रकी आवृत्ति है, उसीको जप कहते हैं; शिवका चिन्तन ही ध्यान कहलाता है तथा शिवसम्बन्धी आगमोंमें जिस ज्ञानका वर्णन है, उसीको यहाँ 'ज्ञान' शब्दसे कहा गया है। अतः कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि वह परम कारण शिवमें भक्तिको बढ़ाये तथा विषयासक्तिका त्याग करे।

भगवान् शिवके प्रति श्रद्धाभक्तिकी

आवश्यकताका प्रतिपादन

तदनन्तर श्रीकृष्णके प्रश्न करनेपर उपमन्यु बोले— श्रीकृष्ण! एक समय देवी पार्वतीने भगवान् शिवसे पूछा—महादेव! जो आत्मतत्त्व आदिके साधनमें नहीं लगे हैं तथा जिनका अन्तःकरण पवित्र एवं वशीभूत नहीं है, ऐसे मन्दमति मर्त्यलोकवासी जीवात्माओंके वशमें आप किस उपायसे हो सकते हैं? महादेवजी बोले—देवी! यदि साधकके मनमें श्रद्धाभक्ति न हो तो पूजन, तपस्या, जप, आसन आदि, ज्ञान तथा अन्य साधनोंसे भी मैं उसके वशीभूत नहीं होता हूँ। यदि मनुष्योंकी मुझमें श्रद्धा हो तो जिस किसी भी हेतुसे मैं उनके वशमें हो जाता हूँ। श्रद्धा ही स्वधर्मका हेतु है और वही इस लोकमें वर्णाश्रमी पुरुषोंकी रक्षा करनेवाली है। वर्णाश्रमी पुरुषोंके सम्पूर्ण धर्म वेदोंसे सिद्ध हैं। अतः मेरे मुखसे प्रतिपादित वर्णधर्मका पालन अवश्य करना चाहिये।

सब प्राणियोंपर दया करनो चाहिये तथा अहिंसा धर्मका पालन करना चाहिये। सत्य बोलना, चोरीसे दूर रहना, ईश्वर और परलोकपर विश्वास रखना, मुझमें श्रद्धा रखना, इन्द्रियोंका संयम रखना, शास्त्रोंको पढ़ना, मेरा चिन्तन करना, ईश्वरके प्रति अनुराग रखना, सदा ज्ञानशील होना सभीके लिये नितान्त आवश्यक हैं। फलकी कामनासे प्रेरित होकर कर्म करनेसे ही मनुष्य बन्धनमें पड़ता है, अतः कर्मके फलकी कामनाको त्याग देना चाहिये।

वर्णधर्म, नारीधर्म आदिका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—मैं अब वर्णधर्मका वर्णन करता हूँ। तीनों काल स्नान, विधिवत् शिवलिंग-पूजन,

दान, ईश्वर-प्रेम, सदा और सर्वत्र दया, सत्यभाषण, सन्तोष, आस्तिकता, अहिंसा, लज्जा, श्रद्धा, स्वाध्याय, योग, ब्रह्मधर्मका पालन, उपदेश-श्रवण, तपस्या, क्षमा, शौच, निषिद्ध वस्तुका सेवन न करना, भस्म धारण करना, रुद्राक्षकी माला पहनना और मद्य तथा मदकी गन्धतका त्याग—ये सभी वर्णोंके सामान्य नियम हैं।

इसके बाद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके विशेष धर्मोंका वर्णन करनेके अनन्तर महादेवजी नारीधर्मका वर्णन करते हुए कहते हैं कि स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही सनातन धर्म है। यदि पतिकी आज्ञा हो तो नारी मेरा पूजन भी कर सकती है। जो स्त्री पतिकी सेवा छोड़कर ब्रतमें तत्पर होती है, वह नरकमें जाती है। इसके अनन्तर भगवान् शिव विधवा स्त्रियोंके सनातन धर्मका वर्णन करते हुए कहते हैं कि ब्रत, दान, तप, शौच, भूमिशयन, केवल रात्रिमें ही भोजन, सदा ब्रह्मचर्यका पालन, भस्म अथवा जलसे स्नान, सान्ति, मौन, क्षमा, विधिपूर्वक सभी जीवोंको अनन्का वितरण, एकादशी आदि पवौंपर विधिवत् उपवास एवं मेरा पूजन—ये विधवा स्त्रियोंके धर्म हैं।

महादेवजी आगे कहते हैं—जिनका चित्त भगवान् शिवमें लगा है और जिनकी बुद्धि सुस्थिर है, ऐसे लोगोंको इहलोकमें और परलोकमें सर्वत्र परमानन्दकी प्राप्ति होती है। 'उ३० नमः शिवाय' इस मन्त्रसे सब सिद्धियाँ सुलभ होती हैं, अतः परावर विभूति (उत्तम-मध्यम ऐश्वर्य)-की प्राप्तिके लिये इस मन्त्रका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

पंचाक्षर मन्त्रके याहात्म्यका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महर्षिप्रवर! अब मैं आपसे पंचाक्षर मन्त्रके माहात्म्यका तत्त्वतः वर्णन सुनना चाहता हूँ। उपमन्त्र कहते हैं—देवकीनन्दन! यह पंचाक्षर मन्त्र वेदका सारात्म्व है, मोक्ष देनेवाला है, शिवकी आज्ञासे सिद्ध है, सदेहशून्य है तथा शिवस्वरूप वाक्य है। इस मन्त्रमें अक्षर तो थोड़े ही हैं, पर यह मन्त्र महान् अर्थसे सम्पन्न है। यह नाना प्रकारकी सिद्धियोंसे युक्त, दिव्य, लोगोंको निर्मल एवं प्रसन्न करनेवाला तथा परमेश्वरका

गम्भीर वचन है। सर्वज्ञ शिवने सम्पूर्ण देहधारियोंके सारे मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस 'उ३० नमः शिवाय' मन्त्रका प्रतिपादन किया है। यह आद्य बड़क्षर मन्त्र सम्पूर्ण विद्याओं (मन्त्रों)-का बीज है। जैसे वटके बीजमें महान् वृक्ष छिपा हुआ है, इसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी इस मन्त्रको महान् अर्थसे परिपूर्ण समझना चाहिये। 'उ३०' इस एकाक्षर मन्त्रमें तीनों गुणोंसे अतीत, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, द्वितीयान्, सर्वव्यापी प्रभु शिव प्रतिष्ठित हैं।

'उ३० नमः शिवाय'—यह जो बड़क्षर शिववाक्य है, इतना ही शिवज्ञान है और इतना ही परमपद है—यह शैव विधिवाक्य है, अर्थवाद नहीं। यह उहीं शिवका स्वरूप है जो सर्वज्ञ, परिपूर्ण और स्वभावतः निर्मल है।

देवी बोली—यदि मनुष्य पतित होकर सर्वथा कर्म करनेके योग्य न रह जाय तो उसके द्वारा किया गया कर्म नरकगामी हो सकता है, परंतु पंचाक्षर मन्त्रके लिये ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। जो भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्रसे एक बार मेरा पूजन कर लेता है, वह इस मन्त्रके ही प्रभावसे मेरे धाममें पहुँच जाता है?

महादेवजीने कहा—यदि पतित मनुष्य मोहवश अन्य मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक मेरा पूजन करे तो वह नरकगामी हो सकता है, परंतु पंचाक्षर मन्त्रके लिये ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। जो भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्रसे एक बार मेरा पूजन कर लेता है, वह इस मन्त्रके ही प्रभावसे मेरे धाममें पहुँच जाता है।

मन्त्र-जपकी विधि—जो प्रतिदिन संयमसे रहकर केवल रातमें भोजन करता है और मन्त्रके जितने अक्षर हैं, उन्हें लाखका चौंगुना जप आदरपूर्वक कर लेता है, वह पौरश्चरणिक कहलाता है। जो पुरुश्चरण करके प्रतिदिन जप करता रहता है, उसके समान इस लोकमें दूसरा कोई नहीं है। जप तीन प्रकारसे किया जाता है, जिसमें मानस जप उत्तम है, उपांशु जप मध्यम है तथा वाचिक जप उससे निम्न कोटिका माना गया है। जप करते समय क्रोध, मद, छोंकना, थूकना, जँभाई लेना तथा कुत्तों और नीच पुरुषोंकी ओर देखना वर्जित है। यदि कभी वैसा हो जाय तो आचमन करे अथवा शिव-

शिवाका स्मरण करे या प्राणायाम करे।

सदाचारी मनुष्य शुद्ध भावसे जप और ध्यान करके कल्याणका भागी होता है। आचार परम धर्म है, आचार उत्तम धन है, आचार श्रेष्ठ विद्या है और आचार ही परम गति है। आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित होता है और परलोकमें भी सुख नहीं पाता, इसलिये सबको आचारवान् होना चाहिये—

आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम्।

आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः॥

सदाचार भगवान् शंकर भगवतो पार्वतीसे कहते हैं—सदाचारसे हीन, पतित और अन्त्यजका उद्धार करनेके लिये कलियुगमें पंचाक्षर मन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। चलते-फिरते, खड़े होते तथा स्वेच्छानुसार कर्म करते हुए अपवित्र अथवा पवित्र मनुष्यद्वारा जप करनेपर भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता। किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ मनुष्य यदि मुझमें उत्तम भक्तिभाव रखता है तो उसके लिये यह मन्त्र निःसन्देह सिद्ध ही होगा। फिर भी छोटे-छोटे कुछ फलोंके लिये सहसा इस मन्त्रका विनियोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र महान् फल देनेवाला है।

इसके अनन्तर उपमन्युने साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन करते हुए कहा कि साधकको विना भोजन किये ही एकाग्रचित्त होकर एक सहस्र मन्त्रका जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह इस लोकमें विद्या, लक्ष्मी तथा सुख पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। नित्य-नैमित्तिक कर्ममें क्रमशः जलसे, मन्त्रसे और भस्मसे भी स्नान करके पवित्र होकर शिखा बाँधकर यज्ञोपवीत धारणकर कुशकी पवित्री हाथमें ले लालाटमें त्रिपुण्ड्र लगाकर रुद्राक्षकी माला लिये पंचाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये।

नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका वर्णन

श्रीकृष्णके द्वारा नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके सुननेकी इच्छा करनेपर उपमन्युजी कहते हैं—प्रातःकाल शब्दनसे उठकर अपने दैनन्दिन कर्मका भलीभांति चिन्तन करके अरुणोदयकालमें शौच, दन्तधावन आदि कार्योंसे निवृत्त

होकर विधिवत् किसी पवित्र नदी, सरोवर अथवा घरमें ही प्रातःकालीन स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये। यदि जलसे स्नान करनेमें व्यक्ति असमर्थ हो तो भीगे हुए शुद्ध वस्त्रसे अपने सम्पूर्ण शरीरको पोछना चाहिये। भस्मस्नान अथवा मन्त्रस्नान शिवमन्त्रसे करना चाहिये। इसके बाद महादेवका ध्यान करके सूर्यस्वरूप शिवको अर्च्य प्रदान करना चाहिये। प्रातःकालीन सन्ध्यासे निवृत्त होकर देवताओं, ऋषियों, पितरों एवं भूतोंके निमित्त तर्पण विधिपूर्वक करके अर्च्य प्रदान करना चाहिये।

इसके अनन्तर उपमन्युजीने करन्यासकी विस्तृत विधिका वर्णन करते हुए यह निर्देश किया कि ललाटपर भस्मसे स्पष्ट त्रिपुण्ड्र लगाये, इसके साथ ही दोनों भुजाओंमें, हृदयस्थलपर तिलक लगाकर सिरपर, कण्ठमें, कानमें तथा हाथमें रुद्राक्षोंको धारण करे। अपवित्र अवस्थामें रुद्राक्ष धारण नहीं करना चाहिये।

बतायी गयी रीतिसे न्यासद्वारा अपनेमें शिवतत्त्वका आधान करके तथा पशुभावनाका त्याग करके 'मैं शिव हूँ' इस प्रकार विचारकर शिवकर्म करे।

कर्मयज्ञ, तपयज्ञ, जपयज्ञ, ध्यानयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ—ये पाँच प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं। इन पाँच यज्ञोंमें ध्यानयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञकी विशेष महिमा है। जिसने ध्यान तथा ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसने मानो भवसागर पार कर लिया। ज्ञानसे ध्यानयोग सिद्ध होता है और पुनः ध्यानसे ज्ञानोपलब्धि होती है, इन दोनोंसे मुक्ति हो जाती है।

अन्तर्याग एवं मानसिक पूजा-विधिका वर्णन

नित्य-नैमित्तिक कर्म एवं न्यासका वर्णन करनेके पश्चात् उपमन्युजीने अन्तर्याग पूजाका वर्णन किया। उपमन्युजी कहते हैं कि मनुष्य अन्तर्यागका अनुष्टान करके पीछे बहिर्याग (बाह्य पूजन) करे। अन्तर्यागमें पहले पूजा-द्रव्योंको मनसे कल्पित और शुद्ध करके सर्वधृथम गणेशजीका स्मरण करे, तत्पश्चात् सिंहासन, योगासन अथवा पदासनपर ध्यान करते हुए सर्वमनोहर साम्बृशिवको विराजमान कराये। वे सदाचार शुभ लक्षणोंसे युक्त हों, उनकी शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल

अंगकान्ति हो तथा वे प्रफुल्ल कमलके समान नेत्र, चार भुजाएँ और मनोहर चन्द्रकलाका मुकुट धारण किये हों। इस प्रकार ध्यान करके उनके वाम भागमें महेश्वरी शिवाके भी मनोहर रूपका चिन्तन करे। इस प्रकार महादेव और महादेवीका ध्यान करके श्रेष्ठ आसनपर सम्पूर्ण उपचारोंसे युक्त भावमय पुष्टोद्घारा उनका पूजन करे।

इस तरह ध्यानमय आराधनाका सम्पूर्ण क्रम समाप्त करके महादेवजीका शिवलिंगमें, वेदीपर अथवा अग्निमें वाहा पूजन करे।

शिवपूजनकी विधि एवं शिवभक्तिकी महिमा

उपमन्तु कहते हैं—भगवान् शिवकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे सम्पूर्ण वेदोंके सारतत्त्व हैं। भवरोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये औषधरूप हैं और सबका कल्याण करनेके लिये जगत्में सुस्थिर शिवलिंगके रूपमें विद्यमान हैं। शिवलिंगमें या अन्यत्र मूर्ति आदिमें अर्धनारीश्वरकी भावनासे शिव-शिवाके लिये एक साथ सभी उपचारोंसे पूजन करना चाहिये।

सर्वप्रथम आसन और ध्यानके निमित्त पुष्ट समर्पण करके पाद्य, अर्द्ध, आचमन तथा शुद्ध जलसे स्नान कराये। तदनन्तर पंचगव्य, धी, दूध, दही, मधु और शर्कराके साथ फल-मूलके सार-तत्त्वसे स्नान करकर शुद्ध जलसे भगवान्को नहलाये।

पवित्र सुगन्धित जलसे शिवलिंगका अधिषेक करके उसे वस्त्रसे पोछे, फिर नूतन वस्त्र एवं यज्ञोपवीत अर्पण करे, तत्पश्चात् गन्ध, पुष्ट, आभूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, पीनेयोग्य जल, मुखशुद्धि, आचमन, मुख्यावस तथा रथोंसे जटित सुन्दर मुकुट, आभूषण, नाना प्रकारकी पुष्टमालाएँ, छत्र, चँचर, व्यजन, दर्पण प्रदानकर सब मंगलमयी वाद्य-व्यनियोंके साथ इष्टदेवका नीराजन करे (आरती उतारे)। उस समय गीत और नृत्यादिके साथ जय-जयकर भी होना चाहिये। फिर पुष्टांजलि अर्पित करके अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रथर्णा करे। तत्पश्चात् देवताका विसर्जन करके अपने हृदयमें प्रभुका चिन्तन करे।

उपमन्तुजी कहते हैं—हे कृष्ण! यह परम रहस्यमय तथ्य है कि परमेश्वर शिवकी पूजामें भाव और भक्तिका

ही महत्त्व है। शिवमन्त्रका जप, ध्यान, होम, यज्ञ, तप, वेदाभ्यास, दान तथा स्वाध्याय—ये सब भाव (भक्ति)-के लिये ही हैं। भावरहित मनुष्य इन सबका अनुष्ठान करके भी मुक्त नहीं होता है।

पापके महासागरको पार करनेके लिये भगवान् शिवकी भक्ति नौकाके समान है। अन्त्यज, अधम, मूर्ख अथवा पतित मनुष्य भी यदि भगवान् शिवकी शरणमें चला जाय तो वह सबके लिये आदरणीय हो जाता है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके भक्तिभावसे ही शिवकी पूजा करे; क्योंकि अभक्तोंको कहाँ भी फल नहीं मिलता।

जो देवलोकमें महान् भोग और राज्य चाहते हैं, वे सदा भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हैं। सौभाग्य, कान्तिमान् रूप, बल, त्याग, दयाभाव, शूरता और विश्वमें विख्याति—ये सब वातें भगवान् शिवकी पूजा करनेवाले लोगोंको ही सुलभ होती हैं।

जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सब कुछ छोड़कर केवल भगवान् शिवमें मन लगाकर उनकी आराधना करनी चाहिये। जीवन बड़ी तेजीसे जा रहा है, जबतक वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं होता और जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हो जाती है, तबतक ही भगवान् शंकरकी आराधना कर लो। भगवान् शंकरकी आराधनाके समान दूसरा कोई धर्म तीनों लोकोंमें नहीं है। इस बातको समझकर प्रयत्नपूर्वक भगवान् सदाशिवकी अर्चना निरन्तर करनी चाहिये।

इसके अनन्तर उपमन्तुजीने अग्निकार्यके लिये कुण्ड और वेदी आदिके संस्कार, शिवाग्निकी स्थापना और उसके संस्कार, होम, पूर्णाहुति, भस्मके संग्रह एवं रक्षणकी विधि तथा हवनान्तरमें किये जानेवाले कृत्यका वर्णन करते हुए काम्य कर्मके प्रसंगमें शक्तिसहित पंचमुख महादेवकी पूजाके विधानका वर्णन किया तथा आवरण-पूजाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महिमाका वर्णन करते हुए शिवके पांच आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्ट पूर्ति एवं मंगलकी कामनाका दिग्दर्शन कराया।

ऐहिक एवं पारलैकिक फल देनेवाले कर्मों और उनकी विधिका वर्णन

इसके बाद उपमन्युने ऐहिक फल देनेवाले अर्थात् यहीं फल देनेवाले कर्म तथा परलोकमें फल देनेवाले पूजन्, जप, ध्यान, तप और दानमय महान् कर्मोंकी विधिका वर्णन किया।

इसके अनन्तर श्रीकृष्णके यह पूछनेपर कि महेश्वरकी पूजा लिंगमें क्यों होती है ? शिव लिंगस्वरूप कैसे हुए ? उपमन्युजीने कहा यह लिंग ही मूल प्रकृति है और यह चराचर जगत् उसीसे उत्पन्न हुआ है। शिव तथा शिवाका नित्य अधिष्ठान होनेके कारण यह लिंग उनका स्थूल विग्रह कहा जाता है। अतः उसीमें नित्य अम्बासहित शिवकी पूजा की जाती है। लिंगका आधार—वेदिका साक्षात् महादेवी पार्वती हैं और उसपर अधिष्ठित लिंग स्वयं महेश्वर हैं। उन दोनोंके पूजनसे ही शिव तथा पार्वती पूजित हो जाते हैं। वह देवी परमात्मा शिवकी परमाशक्ति है। वह शक्ति परमात्माकी आज्ञाको प्राप्त करके चराचर जगत्की सृष्टि करती है। उसकी महिमाका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है।

योग एवं उनके अंगोंका विवेचन

श्रीकृष्णके द्वारा परम दुर्लभ योगका वर्णन सुननेकी इच्छा करनेपर उपमन्युजी बोले—हे श्रीकृष्ण ! जिसकी दूसरी वृत्तियोंका निरोध हो गया है, ऐसे चित्तकी भगवान् शिवमें जो निश्चला वृत्ति है, उसीको 'योग' कहा गया है। प्रायः योग आठ या छः अंगोंसे युक्त होते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ अंग बताये गये हैं। कहा गया है कि उत्तम योगका अभ्यास करनेवाले योगीके सारे अन्तराय शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण विघ्न भी धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं। जिसके आहार-विहार उचित एवं परिमित हों, जो कर्मोंमें यथायोग्य समुचित चेष्टा करता हो तथा जो उचित समयसे सोता और जागता हो एवं सर्वथा आलस्यरहित हो, उसीको योगाभ्यासमें तत्पर होना चाहिये तथा उसे ही सफलता प्राप्त होती है।

ध्यान और उसकी महिमा

उपमन्युजी ध्यानकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं—भगवान् शिवका चिन्तन एवं ध्यान करनेपर सब सिद्धियाँ प्रत्यक्ष और सिद्ध हो जाती हैं। जिस-जिस रूपमें मनकी स्थिरता लाक्षित हो, उस-उसका बारबार ध्यान करना चाहिये। कुछ लोग मनकी स्थिरताके लिये स्थूल रूपका ध्यान करते हैं। स्थूल रूपके चिन्तनमें लगकर जब चित्त निश्चल हो जाता है, तब सूक्ष्म रूपमें वह स्थिर होता है। जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हैं, उन्हींकी बुद्धि ज्ञान और ध्यानमें लगती है। जिनकी बुद्धि पापसे ग्रसित है, उनके लिये ज्ञान और ध्यानकी बात भी अत्यन्त दुर्लभ है। जैसे बहुत छोटा दीपक भी महान् अन्धकारका नाश कर देता है, इसी तरह थोड़ा-सा योगाभ्यास भी महान् पापका विनाश कर डालता है। अद्वौपूर्वक क्षणभर भी परमेश्वरका ध्यान करनेवाले पुरुषको जो महान् ब्रिय प्राप्त होता है, उसका कोई अन्त नहीं है।

ध्यानके समान कोई तीर्थ नहीं है, ध्यानके समान कोई तप नहीं है, ध्यानके समान कोई यज्ञ नहीं है; इसलिये ध्यान अवश्य करे। अपने आत्मा एवं परमात्माका बोध प्राप्त करनेके कारण योगीजन आत्मतीर्थमें अवगाहन करते और आत्मदेवके ही भजनमें लगे रहते हैं। उन्हें ईश्वरके सूक्ष्म स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। भगवान् शंकरको अन्तःकरणमें ध्यान लगानेवाले भक्त ही अधिक प्रिय हैं, बाह्य उपचारोंका आश्रय लेनेवाले नहीं।

वायुदेवका प्रस्थान, मुनियोंका वाराणसी

जाना और आकाशस्थित ज्योतिर्मय

लिंगके दर्शन करना

सूतजी कहते हैं—उपमन्युसे श्रीकृष्णने जो ज्ञान-योग प्राप्त किया था, उन मुनियोंको उसका उपदेश देकर आत्मदर्शी वायुदेव उसी समय सायंकाल आकाशमें अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर प्रातःकाल नैमित्यारण्यके समस्त तपस्वी मुनि सरस्वती नदीमें अवभृथ स्नानकर वाराणसीमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने आकाशमें एक दिव्य और परम अद्भुत प्रकाशमान तेज देखा। कुछ ही क्षणोंमें वह तेज अदृश्य हो गया। इस महान् आश्रयको देखकर

वे 'महर्षि' 'यह क्या है'—यह जाननेकी इच्छासे ब्रह्मवनको चले गये। उनके जानेसे पहले ही वायुदेव वहाँ जा पहुँचे और ब्रह्माजीको ऋषियोंके उस दीर्घकालिक यज्ञकी सारी बातें बतायीं तथा अपने नगरको चले गये।

इसके अनन्तर वे सभी ऋषि ब्रह्माजीके पास पहुँचे और उन्होंने अपनी सारी बातें उन्हें बतायीं। आकाशमें तेजःपुंजके दिखायी देनेकी बात कही तथा कहा कि हम लोग उस तेजःपुंजको ठीक-ठीक जान न सके।

मुनियोंका यह कथन सुनकर विश्वस्ता ब्रह्माने सिर हिलाकर गम्भीर वाणीमें कहा—महर्षियो। तुमने दीर्घकालिक सत्राद्वारा चिरकालतक प्रभुकी आराधना की है, इसलिये वे प्रसन्न होकर तुम लोगोंपर कृपा कर रहे हैं। तुमने वाराणसीमें आकाशमें जो दीपित्मान् दिव्य तेज देखा था, वह साक्षात् ज्योतिर्मय लिंग ही था, उसे महेश्वरका उत्कृष्ट तेज समझो। तुम लोग मेरुर्पर्वतके दक्षिण शिखरपर जहाँ देवता रहते हैं, जाओ। वहाँ मेरे पुत्र सनत्कुमार निवास करते हैं, वे वहाँ नन्दीके आनेकी प्रतीक्षामें हैं। ब्रह्माजीके इस प्रकार आदेश देकर भेजनेपर वे मुनि मेरुर्पर्वतके दक्षिणवर्ती कुमारशिखरपर गये।

मुनियोंको सनत्कुमार और नन्दीके दर्शन

सूतजी कहते हैं—वहाँ मेरुर्पर्वतपर सागरके समान एक विशाल सरोवर है, जिसका नाम स्कन्दसर है। उसका जल अमृतके समान स्वादिष्ट, शीतल और स्वच्छ है। वहाँ शिष्ट पुरुष जलमें स्नान करते देखे जाते हैं। सरोवरके किनारे पितृपर्ण करनेके उपरान्त छोड़े हुए तिल, अक्षत, फूल तथा कुश आदिसे युक्त वह सरोवर स्नानादि धर्मकृत्योंके सम्पादनार्थ आये हुए छिंजोंका माने परिचय-सा देता रहता है।

इस सरोवरके उत्तर तटपर एक कल्पवृक्षके नीचे हीरीकी शिलासे बनी हुई वेदीपर कोमल मृगाचर्म विछाकर सदा बालरूपधारी सनत्कुमारजी बैठे थे। नैमित्तारण्यके मुनियोंने वहाँ सनत्कुमारजीका दर्शन किया तथा सनत्कुमारजीके पूछनेपर उन ऋषियोंने अपने आगमनका कारण बताना आरम्भ किया। उसी समय सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान दृष्टिगोचर हुआ। वहाँ मृदंग, ढोल

और वीणाकी ध्वनि गौंग उठी। उस विमानके मध्य भागमें दो चैंकरोंके बीच चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मणिमय दण्डबाले शुभ्र छत्रके नीचे दिव्य सिंहासनपर शिलादपुत्र नन्दी देवी सुयशाके साथ बैठे थे। उन्हें देखकर ऋषियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। सनत्कुमारने देव नन्दीको साप्तांग प्रणाम करके उनकी स्तुति की और मुनियोंका परिचय देते हुए कहा—ये छः कुलोंमें उत्पन्न ऋषि हैं, जो नैमित्तारण्यमें दीर्घकालसे सत्रका अनुष्ठान करते थे। ब्रह्माजीके आदेशसे आपका दर्शन करनेके लिये ये लोग पहलेसे ही यहाँ आये हुए हैं। ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका यह कथन सुनकर नन्दीने दृष्टिपातमारसे उन सबके पाशोंको तत्काल काट डाला और ईश्वरीय शैवधर्म एवं ज्ञानयोगका उपदेश देकर वे फिर महादेवजीके पास चले गये।

सूतजी कहते हैं—सनत्कुमारने वह समस्त ज्ञान मेरे गुरु व्यासजीको दिया। पूजनीय व्यासजीने मुझे संक्षेपसे वह सब कुछ बताया और उस ज्ञानको मैंने संक्षेपमें आप लोगोंको बताया। अब मैं सफल-मनोरथ होकर जा रहा हूँ। हम लोगोंका सदा सब प्रकारसे मंगल हो।

सूतजीके आशीर्वाद देकर चले जाने और उस महायज्ञके पूर्ण हो जानेपर वे सदाचारी मुनि काशीके निकट निवास करने लगे तथा पशु-पाशसे छूटनेकी इच्छासे उन सबने पूर्णतया पाशुपतव्रतका अनुष्ठान किया और वे महर्षि परमानन्दको प्राप्त हो गये।

शिवपुराणके पाठ एवं श्रवणकी महिमा

व्यासजी कहते हैं—इस पुराणको बड़े आदरपूर्वक पढ़ना अथवा सुनना चाहिये। श्रद्धाहीन, शत, भक्तिसे रहित तथा धर्मध्वजी (पाखण्डी)-को इसका उपदेश नहीं देना चाहिये।

जो मनुष्य भक्तिपरायण हो इसका श्रवण करेगा, वह भी इहलोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेगा। यह श्रेष्ठ शिवपुराण भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह वेदके तुल्य माननीय, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा भक्तिभावको बढ़ानेवाला है। भगवान् शंकर इसके बक्ता और श्रोताका सदा कल्याण करें—‘शं करोतु स शङ्करः।’ —राधेश्याम खेमका

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

शतरुद्रसंहिता

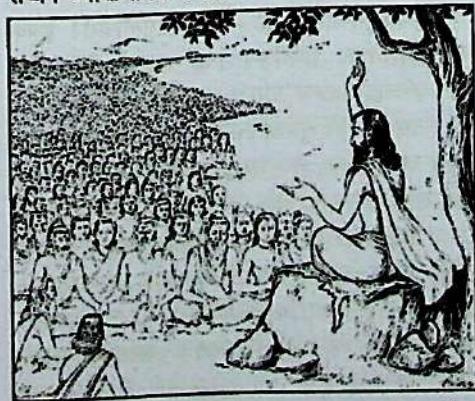
पहला अध्याय

सूतजीसे शौनकादि मुनियोंका शिवावतारविषयक प्रश्न

**वन्दे महानन्दमनन्तलीलं
महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराजं-
समुद्रं शङ्करमादिदेवम्॥**

मैं परम आनन्दस्वरूप, अनन्त लीलाओंसे युक्त,
सर्वत्र व्यापक, महान्, गौरीप्रिय, कार्तिकेय और गजाननको
उत्पन्न करनेवाले आदिदेव महेश्वर शंकरको नमस्कार
करता हूँ।

शौनकजी बोले—हे व्यासशिष्य! हे महाभाग! हे ज्ञान और दयके साथर सूतजी! आप शिवजीके उन
अवतारोंका वर्णन कीजिये, जिनके द्वारा [उन्होंने]
सज्जन व्यक्तियोंका कल्पाण किया है ॥ १ ॥



सूतजी बोले—हे मुने! हे शौनक! मैं [शिवजीमें] मन लगाकर और इन्द्रियोंको वशमें करके भक्तिपूर्वक शिवजीके अवतारोंका वर्णन आप महर्षिसे कर रहा हूँ,

आप सुनिये ॥ २ ॥

हे मुने! पूर्वकालमें इसी बातको सनत्कुमारने शिवस्वरूप तथा सत्पुरुषोंको रक्षा करनेमें समर्थ नन्दीश्वरसे पूछा था, तब शिवजीका स्मरण करते हुए नन्दीश्वरने उनसे कहा था ॥ ३ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] सर्वव्यापक तथा सर्वेश्वर शंकरके विविध कल्पोंमें यद्यपि असंख्य अवतार हुए हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार यहाँपर उनका वर्णन कर रहा हूँ ॥ ४ ॥

उनीसवाँ कल्प श्वेतलोहित नामवाला जानना चाहिये, इसमें प्रथम सद्योजात अवतार कहा गया है ॥ ५ ॥

उस कल्पमें जब ब्रह्माजी परम ब्रह्मके ध्यानमें अवस्थित थे, उसी समय उनसे शिखासे युक्त श्वेत और लोहित वर्णवाला एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीने उस पुरुषको देखते ही उन्हें ब्रह्मस्वरूप ईश्वर जानकर उनका हृदयमें ध्यान करके हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ ७ ॥

उनको सद्योजात शिव समझकर वे भुवनेश्वर अत्यन्त हर्षित हुए और बार-बार सद्बुद्धिपूर्वक परमतत्त्वरूप उन पुरुषका चिन्तन करने लगे ॥ ८ ॥

उसके बाद ब्रह्माके पुनः ध्यान करनेपर श्वेतवर्ण, यशस्वी, परम ज्ञानी एवं परब्रह्मस्वरूपवाले अनेक कुमार उत्पन्न हुए। उनके नाम सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द और उपनन्दन थे। ये सभी महात्मा उनके शिष्य हुए, उनके द्वारा यह सम्पूर्ण ब्रह्मलोक समावृत है ॥ ९-१० ॥

उन्होंने सद्योजात नामक परमेश्वर शिवजीने प्रसन्न

होकर प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीको ज्ञान प्रदान किया एवं सृष्टि उत्पन्न करनेका सामर्थ्य भी प्रदान किया ॥ ११ ॥

इसके बाद बीसवाँ रक्त नामक कल्प कहा गया है, जिसमें महातेजस्वी ब्रह्माजीने रक्तवर्ण धारण किया ॥ १२ ॥

जब पुत्रप्राप्तिकी कामनासे ब्रह्माजी ध्यानमें लीन थे, उसी समय उनसे रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्रोंको धारण किये हुए रक्तनेत्रवाला तथा रक्त आभूषणोंसे अलंकृत एक कुमार प्रादुर्भूत हुआ ॥ १३ ॥

ध्यानमें निमग्न ब्रह्माजीने उन महात्मा कुमारको देखते ही उन्हें वामदेव शिव जानकर हाथ जोड़ करके प्रणाम किया ॥ १४ ॥

तदुपरान्त उनसे लाल वस्त्र धारण किये हुए विरजा, विवाह, विशेष और विश्वभावन नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥

उन्हीं वामदेव नामक शिवने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीको ज्ञान प्रदान किया और सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्ति भी प्रदान की ॥ १६ ॥

इक्कीसवाँ कल्प पीतवासा—इस नामसे कहा गया है। इस कल्पमें महाभाग्यशाली ब्रह्मा पीतवस्त्र धारण किये हुए थे। [इस कल्पमें] जब ब्रह्माजी पुत्रकी अभिलाषासे ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनसे पीताम्बरधारी, महातेजस्वी तथा महाबाहु एक कुमार अवतरित हुआ ॥ १७-१८ ॥

उस कुमारको देखते ही ध्यानयुक्त ब्रह्माने उन्हें तत्पुरुष शिव जानकर प्रणाम किया और शुद्धबुद्धिसे वे शिवगायत्री (तत्पुरुषाय विद्याहे महादेवाय धीमहि)–का जप करने लगे। सम्पूर्ण लोकोंसे नमस्कृत महादेवी गायत्रीका ध्यानमग्न मनसे जप करते हुए देखकर महादेवजी ब्रह्मापर बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ १९-२० ॥

उसके बाद ब्रह्माजीके पार्श्वभागसे पीतवस्त्रधारी अनेक दिव्य कुमार उत्पन्न हुए; वे सभी कुमार योगमार्गिक प्रवर्तकके रूपमें प्रसिद्ध हुए ॥ २१ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीके पीतवासा नामक कल्पके व्यतीत हो जानेके पश्चात् शिव नामक एक अन्य कल्प प्रारम्भ हुआ ॥ २२ ॥

उस कल्पके हजार दिव्य वर्ष बीतनेपर जब सारा

जगत् जलमय था, उस समय ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेके विचारसे [समस्त जगत्को जलमय देखकर] दुखी होकर सोचने लगे ॥ २३ ॥

उसी समय महातेजस्वी ब्रह्माने कृष्णवर्णवाले, महापराक्रमी तथा अपने तेजसे दीप एक कुमारको उत्पन्न हुआ देखा, जो काला वस्त्र, काली पगड़ी, काले रंगका यज्ञपवीत, कृष्णवर्णका मुकुट तथा कृष्णवर्णके सुगन्धित चन्दनका अनुलेप धारण किये हुए था ॥ २४-२५ ॥

ब्रह्माजीने उन महात्मा, घोर पराक्रमी, कृष्णपिंगल वर्णयुक्त, अद्भुत तथा अघोर रूपधारी देवाधिदेव शंकरको देखकर प्रणाम किया। इसके बाद ब्रह्माजी अघोरस्वरूप परब्रह्मका ध्यान करने लगे और उन भक्तवत्सल तथा अविनाशी अघोरकी प्रिय वचनोंसे स्तुति करने लगे ॥ २६-२७ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीके पार्श्वभागसे कृष्ण सुगन्धिनुलेपनसे लिप्त कृष्णवर्णके चार महात्मा कुमार उत्पन्न हुए। कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य, कृष्णकण्ठधृक्—इस प्रकारके अव्यक्त नामवाले वे परमतेजसे सम्पन्न तथा शिवस्वरूप थे ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकारके उन महात्माओंने ब्रह्माजीको सृष्टि करनेके लिये घोर [अघोर] नामक अत्यन्त अद्भुत योगमार्गिका उपदेश किया ॥ ३० ॥

[श्रीसूतजीने कहा—] हे मुनीश्वरो! इसके बाद ब्रह्माजीका विश्वरूप इस नामसे प्रसिद्ध एक अत्यन्त अद्भुत कल्प प्रारम्भ हुआ ॥ ३१ ॥

उस कल्पमें पुत्रकामनावाले ब्रह्माजीने शिवजीका मनसे ध्यान किया, तब महानादस्वरूपवाली विश्वरूपा सरस्वती उत्पन्न हुईं और उसी तरह शुद्ध स्फटिकके समान कान्तिवाले तथा सभी आभूषणोंसे अलंकृत परमेश्वर भगवान् शिव ईशानके रूपमें प्रकट हुए ॥ ३२-३३ ॥

ब्रह्माने अजन्मा, विभु, सर्वगमी, सब कुछ देनेवाले, सर्वस्वरूप, रूपवान् एवं रूपहित उन ईशानको देखकर प्रणाम किया ॥ ३४ ॥

इसके बाद सर्वव्यापक उन ईशानने भी ब्रह्माको सम्मार्गिका उपदेश करके अपनी शक्तिसे युक्त हो चार सुन्दर बालकोंको उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥

वे जटी, मुण्डी, शिखण्डी तथा अर्धमुण्ड नामवाले उत्पन्न हुए। वे योगके द्वारा उपदेश देकर सद्गुर्म करके योग-गतिको प्राप्त हो गये ॥ ३६ ॥

[नन्दीश्वर बोले—] हे सनक्तुमार ! हे सर्वज्ञ ! इस प्रकार मैंने लोकके कल्प्याणके निर्मित शिवके सद्गोजात आदि अवतारोंका संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ३७ ॥

हे महाप्राज्ञ ! तीनों लोकोंके लिये हितकर उनका सम्पूर्ण यथोचित व्यवहार इस ब्रह्माण्डमें फैला हुआ है ॥ ३८ ॥

महेश्वरकी ईशान, तत्पुरुष, अधोर, वामदेव तथा [सद्गोजात] नामक पाँच मूर्तियाँ ब्रह्म संज्ञासे [इस जगतमें] प्रख्यात हैं ॥ ३९ ॥

उनमें ईशान प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ शिवरूप कहा गया है, जो साक्षात् प्रकृतिका भोग करनेवाले क्षेत्रज्ञको अधिकृत करके स्थित है ॥ ४० ॥

शिवजीका द्वितीय रूप तत्पुरुषसंज्ञक है, जो गुणोंके आश्रयवाले तथा भोगनेवोग्य सर्वज्ञपर अधिकार करके स्थित है ॥ ४१ ॥

शिवजीका जो तीसरा अधोर नामक रूप है, वह धर्मके व्यवहारके लिये अपने अंगोंसे संयुक्त बुद्धितत्त्वका विस्तार करके अन्तःकरणमें अवस्थित है ॥ ४२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतक्रसांहितामें शिवका पांचब्रह्मावतारवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे प्रभो ! हे तात ! हे मुने ! अब महेश्वरके समस्त प्राणियोंको सुख प्रदान करनेवाले तथा लोकके सम्पूर्ण कार्योंको सम्पादित करनेवाले अन्य श्रेष्ठतम अवतारोंको सुनें ॥ १ ॥

यह सारा संसार परेश शिवकी उन आठ मूर्तियोंका स्वरूप ही है, उस मूर्तिसमूहमें व्याप्त होकर विश्व उसी प्रकार स्थित है, जैसे सूर्यमें [पिरोड़ी हुई] मणियाँ ॥ २ ॥

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशन और महादेव—ये [शंकरकी] आठ मूर्तियाँ विख्यात हैं ॥ ३ ॥

भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य एवं

शिवजीका चौथा रूप वामदेवके नामसे विख्यात है, जो समस्त अहंकारका अधिष्ठान होकर अनेक प्रकारके कार्योंको सर्वदा सम्पादित करनेवाला है ॥ ४६ ॥

सर्वव्यापी शिवजीका ईशान नामक रूप श्रोत्रेन्द्रिय, वाणिज्य तथा आकाशका ईश्वर है ॥ ४४ ॥

बुद्धिमान् विचारक शिवजीके तत्पुरुष नामक रूपको त्वचा, पाणि, स्पर्श और वायुका ईश्वर मानते हैं ॥ ४५ ॥

मनीषीण शिवजीके अधोर नामसे विख्यात रूपको शरीर, रस, रूप एवं अग्निका अधिष्ठान मानते हैं ॥ ४६ ॥

शिवजीका वामदेव नामक रूप जिह्वा, पायु, रस तथा जलका स्वामी माना गया है। शिवजीके सद्गोजात नामक रूपको नासिका, उपस्थितिय, गन्ध एवं भूमिका अधिष्ठात्रदेवता कहा गया है ॥ ४७-४८ ॥

अपना कल्प्याण चाहेनेवाले पुरुषोंको शिवजीके इन रूपोंकी प्रयत्नपूर्वक नित्य वन्दना करनी चाहिये; क्योंकि [ये रूप] सभी प्रकारके कल्प्याणके एकमात्र कारण हैं ॥ ४९ ॥

जो व्यक्ति सद्गोजात आदिकी उत्पत्तिको सुनता अथवा पढ़ता है, वह सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर परमगति प्राप्त कर लेता है ॥ ५० ॥

चन्द्रपा—ये निश्चय ही शिवके शर्व आदि आठों रूपोंसे अधिष्ठित हैं। महेश्वर शंकरका विश्वभरात्मक [शर्व] रूप चराचर विश्वको धारण करता है—ऐसा ही शास्त्रका निश्चय है ॥ ४-५ ॥

समस्त संसारको जीवन देनेवाला जल परमात्मा शिवका भव नामक रूप कहा जाता है ॥ ६ ॥

जो प्राणियोंके भीतर तथा बाहर गतिशील रहकर विश्वका भरण-पोषण करता है और स्वयं भी स्पन्दित होता रहता है, सज्जनोद्धारा उसे उग्रस्वरूप परमात्मा शिवका उग्र रूप कहा जाता है ॥ ७ ॥

भीमस्वरूप शिवका सबको अवकाश देनेवाला, सर्वव्यापक तथा आकाशात्मक भीम नामक रूप कहा गया है, वह महाभूतोंका भेदन करनेवाला है ॥ ८ ॥

जो सभी आत्माओंका अधिष्ठान, समस्त क्षेत्रोंका निवासस्थान तथा पशुपाशके काटेवाला है, उसे पशुपतिका [पशुपति नामक] रूप जानना चाहिये ॥ ९ ॥

सूर्यनामसे जो विख्यात होकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है और आकाशमें भ्रमण करता है, वह महेशका ईशन नामक रूप है ॥ १० ॥

जो अमृतके समान किरणोंसे युक्त होकर चन्द्ररूपसे सारे संसारको आप्यायित करता है, महादेव शिवजीका वह रूप महादेव नामसे विख्यात है ॥ ११ ॥

उन परमात्मा शिवका आठवाँ रूप आत्मा है, जो अन्य सभी मूर्तियोंकी अपेक्षा सर्वव्यापक है। इसलिये यह समस्त चराचर जगत् शिवका ही स्वरूप है ॥ १२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवामूर्तिवर्णन नामक दूसरा अव्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

जिस प्रकार वृक्षकी जड़ (मूल)-को सीचनेसे उसकी शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार शिवका शरीरभूत संसार शिवार्चनसे पुष्ट होता है ॥ १३ ॥

जिस प्रकार इस लोकमें पुत्र, पौत्रादिके प्रसन्न होनेपर पिता प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार संसारके प्रसन्न होनेसे शिवजी प्रसन्न रहते हैं ॥ १४ ॥

यदि किसीके द्वारा जिस किसी भी शरीरधारीको कष्ट दिया जाता है, तो मानो अष्टमूर्ति शिवका ही वह अनिष्ट किया गया है, इसमें संशय नहीं है ॥ १५ ॥

अतः अष्टमूर्तिरूपसे सारे विश्वको व्याप्त करके सर्वतोभावेन स्थित परमकारण रुद्र शिवका सर्वभावसे भजन कीजिये। [हे सनत्कुमार !] हे विधिपुत्र ! इस प्रकार मैंने आपसे शिवके प्रसिद्ध आठ स्वरूपोंका वर्णन किया, अपना कल्प्याण चाहेनेवाले मनुष्योंको सभीके उपकारमें निरत इन रूपोंकी उपासना करनी चाहिये ॥ १६-१७ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान् शिवका अर्धनारीश्वर-अवतार एवं सतीका प्रादुर्भाव

नन्दीश्वर बोले—हे तात ! हे महाप्राज्ञ ! अब मैं ब्रह्माजीकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाले शिवके उत्तम अर्धनारीश्वर नामक रूपका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनें। ब्रह्माके द्वारा विरचित समस्त प्रजाओंका जब विस्तार नहीं हुआ, तब उस दुःखसे व्याकुल हो वे चिन्तित रहने लगे ॥ १-२ ॥

तब आकाशवाणी हुई कि आप मैथुनी सृष्टि करें। यह सुनकर ब्रह्माने मैथुनी सृष्टि करनेका निश्चय किया। उस समय शिवजीसे स्त्रियाँ उत्पन्न नहीं हुई थीं, अतः ब्रह्माजी मैथुनी सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥ ३-४ ॥

शिवके प्रभावके बिना इन प्रजाओंकी वृद्धि नहीं होगी—ऐसा विचार करते हुए ब्रह्माजी तप करनेको उद्यत हुए। यार्वतीरूप परम शक्तिसे संयुक्त परमेश्वर शिवका हृदयमें ध्यानकर वे अत्यन्त प्रीतिसे महान् तपस्या करने लगे। इस प्रकारकी उग्र तपस्यासे संयुक्त हुए उन स्वयम्भू ब्रह्मापर थोड़े समयमें शिवजी शीघ्र ही

प्रसन्न हो गये ॥ ५-७ ॥

उसके पश्चात् भगवान् हर अपनी पूर्ण चैतन्यमयी, ऐश्वर्यशालिनी तथा सर्वकामप्रदायिनी मूर्तिमें प्रविष्ट



होकर अर्धनारीनका रूप धारणकर ब्रह्माके पास गये ॥ ८ ॥

वे ब्रह्माजी परम शक्तिसे सम्पन्न उन परमेश्वरको देखकर दण्डवत् प्रणामकर हाथ जोड़े हुए उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद देवाधिदेव विश्वकर्ता महेश्वरने अन्तर्गत प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें सृष्टि के लिये ब्रह्माजीसे कहा— ॥९-१०॥

ईश्वर बोले—वत्स! हे महाभाग! हे मेरे पुत्र पितामह! मैं तुम्हरे समस्त मनोरथको यथार्थ रूपमें जान गया हूँ। प्रजाओंकी वृद्धिके लिये ही तुमने इस समय तपस्या की है। उस तपस्यासे मैं सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें इच्छित वरदान दे रहा हूँ॥ ११-१२॥

परम उदाहर एवं स्वभावसे मधुर यह वचन कहकर भगवान् शिवने अपने शरीरके [वाम] भागसे देवी पार्वतीको अलग किया॥ १३॥

शिवसे अलग हुई और पृथक् रूपमें स्थित उन परम शक्तिको देखकर विनीत भावसे प्रणाम करके ब्रह्माजी उनसे प्रार्थना करने लगे— ॥१४॥

ब्रह्माजी बोले—हे शिव! आपके पति देवाधिदेव शिवजीने सृष्टिके आदिमें मुझे उत्पन्न किया और उन्होंने परमात्मा शिवने सभी प्रजाओंको नियुक्त किया है॥ १५॥

हे शिव! [उनकी आज्ञासे] मैंने अपने मनसे सभी देवताओं आदिकी सृष्टि की, किंतु बार-बार सृष्टि करनेपर भी प्रजाओंकी वृद्धि नहीं हो रही है। इसलिये अब मैथुनसे होनेवाली सृष्टि करके ही मैं अपनी समस्त प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ॥ १६-१७॥

आपसे पहले शिवजीके शरीरसे स्त्रियोंका अविनाशी समुदाय उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिये मैं उस नारीकुलकी सृष्टि करनेमें असमर्थ रहा। सभी शक्तियाँ आपसे ही उत्पन्न होती हैं, इसलिये मैं परम शक्तिस्वरूपा आप अखिलेश्वरीसे प्रार्थना कर रहा हूँ॥ १८-१९॥

हे शिव! हे मात! इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये नारीकुलकी रचनाका सामर्थ्य प्रदान कीजिये। हे शिवप्रिये! आपको नमस्कार है॥ २०॥

हे वरदेश्वर! मैं आपसे एक अन्य वरकी प्रार्थना

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवके अर्धनारीश्वर-अवतारका

वर्णन नामक तीसरा अथवा पूर्ण हुआ॥ ३॥

करता हूँ, मुझपर कृपाकर उसे प्रदान करें। हे जगन्मात! आपको नमस्कार है॥ २१॥

हे सर्वें! हे अम्बिके! इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये आप अपने एक सर्वसमर्थरूपसे मेरे पुत्र दक्षकी कन्याके रूपमें अवतरित हों॥ २२॥

ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार याचना करनेपर 'ऐसा ही होगा'—यह वचन कहकर देवी परमेश्वरीने ब्रह्माको वह शक्ति प्रदान की। इस प्रकार [यह स्पष्ट ही है कि] भगवान् शिवकी परमशक्ति वे शिवादेवी विश्वात्मिका (स्त्रीपुरुषात्मिका) हैं। उन्होंने अपनी भौंहोंके मध्यसे अपने ही समान कान्तिवाली एक दूसरी शक्तिका सृजन किया॥ २३-२४॥

उस शक्तिको देखकर देवताओंमें श्रेष्ठ, कृपासिन्धु, लीलाकारी महेश्वर हर हँसते हुए उन जगन्मातासे कहने लगे— ॥२५॥

शिवजी बोले—हे देवि! परमेष्ठी ब्रह्माने तपस्याके द्वारा आपकी आराधना की है, अतः आप प्रसन्न हो जाइये और प्रेमपूर्वक उनके सारे मनोरथोंको पूर्ण कीजिये। तब उन देवीने परमेश्वर शिवजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके ब्रह्माजीके प्रार्थनानुसार दक्षपुत्री होना स्वीकार कर लिया॥ २६-२७॥

हे मुने! इस प्रकार ब्रह्माको अपार शक्ति प्रदानकर वे शिवा शिवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं और प्रभु शिव भी अन्तर्धान हो गये॥ २८॥

उसी समयसे इस लोकमें सृष्टि-कर्ममें स्त्रियोंको भाग प्राप्त हुआ। तब वे ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए और मैथुनी सृष्टि होने लगी। हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे शिवजीके अत्यन्त उत्तम तथा सज्जनोंको परम भंगल प्रदान करनेवाले इस अर्धनारी और अर्धनर रूपका वर्णन कर दिया॥ २९-३०॥

जो इस निष्याप कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह [इस लोकमें] सभी सुखोंको भोगकर परम गति प्राप्त कर लेता है॥ ३१॥

चौथा अध्याय

वाराहकल्पके प्रथमसे नवम द्वापरतक हुए व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब शंकरजीके जिस सुखदायक चरित्रको हर्षित होकर रुद्रने ब्रह्माजीसे प्रेमपूर्वक कहा था, [उस चरित्रको सुनें] ॥ १ ॥

शिवजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] वाराहकल्पके सातवें मन्वन्तरमें सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान् कल्पेश्वर, जो तुम्हारे प्रपीत्र हैं, वैवस्वत मनुके पुत्र होंगे ॥ २-३ ॥

हे विधे! हे ब्रह्मन्! उस समय लोकोंके कल्प्याणके निमित्त तथा ब्राह्मणोंके हितके लिये मैं [प्रत्येक] द्वापर युगके अन्तर्में अवतार ग्रहण करूँगा ॥ ४ ॥

इस प्रकार क्रमशः युगोंके प्रवृत्त होनेपर प्रथम युगमें (चतुर्थ्युगे) प्रथम द्वापरयुगमें जब स्वयंप्रभु नामक व्यास होंगे, तब मैं ब्राह्मणोंके हितके लिये उस कलिके अन्तर्में पार्वतीसहित श्वेत नामक महामुनिके रूपमें अवतार लूँगा ॥ ५-६ ॥

हे विधे! उस समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ, रमणीय हिमालयके छागल नामक शिखरपर शिखासे युक्त श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित नामक मेरे चार शिष्य होंगे। वे चारों ध्यानयोगके प्रभावसे मेरे लोकको जायेंगे ॥ ७-८ ॥

तब [वहाँ] मुझ अविनाशीको तत्त्वपूर्वक जानकर वे मेरे भक्त होंगे और जन्म-मृत्यु-जरासे रहित तथा परम ब्रह्ममें समाधि लगानेवाले होंगे ॥ ९ ॥

हे पितामह! हे वत्स! ध्यानके बिना मनुष्य मुझे दान-धर्मादि कर्मके हेतुभूत साधनोंसे देखेन्मैं असमर्थ हूँ ॥ १० ॥

दूसरे द्वापरमें जब सत्य नामक प्रजापति व्यास होंगे, तब मैं कलियुगमें सुतार नामसे अवतार ग्रहण करूँगा ॥ ११ ॥

उस युगमें भी दुन्दुभि, शतरूप, हथीक तथा केतुमान् नामक वेदज्ञ ब्राह्मण मेरे शिष्य होंगे ॥ १२ ॥

वे चारों ध्यानयोगके प्रभावसे मेरे लोकको प्राप्त

करेंगे और मुझ अव्ययको यथार्थरूपसे जानकर मुक्त हो जायेंगे ॥ १३ ॥

तीसरे द्वापर युगके अन्तर्में जब भार्गव [नामक] व्यास होंगे, तब मैं दमन नामसे अवतार ग्रहण करूँगा ॥ १४ ॥

उस समय भी विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे ॥ १५ ॥

हे चतुरानन! उस कलियुगमें मैं अपने शिष्योंके द्वारा व्यासकी सहायता करूँगा तथा निवृतिमार्गको दृढ़ करूँगा ॥ १६ ॥

चौथे द्वापरमें जब अंगिरा व्यासरूपमें प्रसिद्ध होंगे, तब मैं सुहोत्र नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी महात्मा योगसाधक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे। हे ब्रह्मन्! मैं उनके नाम बता रहा हूँ। सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरुतिक्रम। हे विधे! उस समय मैं अपने शिष्योंके द्वारा व्यासकी सहायता करूँगा ॥ १७-१९ ॥

पाँचवें द्वापरमें सविता नामक व्यास कहे गये हैं, उस समय मैं महातपस्वी कंक नामक योगीके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी मेरे चार योगसाधक तथा महात्मा पुत्र (शिष्य) होंगे, उनके नाम मुझसे सुनिये—सनक, सनातन, प्रभु सनन्दन और सर्वव्यापी निर्मल अहंकाररहित सनत्कुमार। हे ब्रह्मन्! उस समय भी कंक नामक मैं सविता व्यासकी सहायता करूँगा और निवृतिमार्गका संवर्धन करूँगा ॥ २०-२३ ॥

इसके बाद छठे द्वापरके आनेपर लोककी रक्षा करनेवाले तथा वेदोंका विभाग करनेवाले मृत्यु नामक व्यास होंगे। उस समय भी मैं लोकाक्षि नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और व्यासकी सहायताके लिये निवृति-मार्गिका वर्धन करूँगा। उस समय भी सुधामा, विरजा, संजय एवं विजय नामक मेरे चार दृढ़ती शिष्य होंगे ॥ २४-२६ ॥

हे विधे! सातवें द्वापरके आनेपर जब शतक्रुष्ण [नामक] व्यास होंगे, उस समय भी मैं विभु जैगीवव्य

नामसे अवतरित होऊँगा और महायोगविचक्षण होकर काशीकी गुफामें दिव्य स्थानमें कुशाके आसनपर बैठकर योगमार्गको दृढ़ करूँगा तथा शतक्रतु व्यासकी सहायता करूँगा एवं हे विधे ! संसारके भयसे भक्तोंका उद्धार करूँगा । उस युगमें भी सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे ॥ २७—३० ॥

आठवें द्वापरयुगके आनेपर वेदोंका विभाग करनेवाले मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ वेदव्यास होंगे । हे योग जानेवालोंमें श्रेष्ठ ! उस समय मैं दधिवाहन नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और व्यासकी सहायता करूँगा । उस समय कपिल, आसुरि, पंचशिख और शाल्वल नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे, जो मेरे ही समान योगी होंगे ॥ ३१—३३ ॥

हे विधे ! नौवें द्वापरयुगके आनेपर उसमें सारस्वत नामक मुनिश्रेष्ठ व्यास होंगे । उस समय वे व्यासजी निवृत्तिमार्गको बढ़ानेका विचार करेंगे, तब मैं ऋषभ नामसे विष्णुता होकर अवतार लूँगा । उस समय पराशर, गर्ग, भार्गव एवं गिरिश नामक मेरे परम योगी शिष्य होंगे । हे प्रजापते ! मैं उनके साथ योगमार्गको दृढ़ करूँगा और हे सन्मुने ! मैं वेदव्यासकी सहायता करूँगा ॥ ३४—३७ ॥

उस समय हे विधे ! दयालु मैं अपने उस रूपसे बहुत-से दुःखित भक्तोंका और स्वयं आपका भी उद्धार करूँगा । हे विधे ! मेरा वह ऋषभ नामक अवतार योगमार्गका प्रवर्तक, सारस्वत व्यासके मनको सन्तुष्ट करनेवाला तथा अनेक प्रकारकी लीला करनेवाला होगा ॥ ३८—३९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुप्रसंहितामें ऋषभचारित्रवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

वाराहकल्पके दसवेंसे अट्टाईवें द्वापरतक होनेवाले व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन

शिवजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] दसवें द्वापरयुगमें जब त्रिधामा नामक मुनि व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालय पर्वतके मनोहर भूतुंग नामक कैचे शिखरपर अवतार ग्रहण करूँगा । उस समय भी मेरे श्रुतिसम्मित तथा तपस्त्री भृगु, बलवन्तु, नर्यमित्र तथा केतुभूंग नामक पुत्र होंगे ॥ १-२ ॥

मेरे उस अवतारने भद्रायु नामक राजकुमारको, जो विषके दोषसे मर गया था एवं जिसके पिताने त्याग दिया था, पुनः जीवित कर दिया था ॥ ४० ॥

उस राजकुमारके सोलह वर्षका होनेपर मेरे अंशसे उत्पन्न ऋषभ पुनः सहस्र उसके घर गये ॥ ४१ ॥

हे प्रजापते ! उस राजकुमारने कृपानिधि तथा अति सुन्दर उन ऋषभजीका [आदरपूर्वक] पूजन किया और ऋषभजीने उसे उस समय राजयोगसे युक्त धर्मोपदेश दिया । तदनन्तर उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर दिव्य कवच, शंख तथा प्रकाशमान खड्ग प्रदान किया, जो शत्रुओंके विनाशमें समर्थ था ॥ ४२-४३ ॥

तदनन्तर दीनवत्सल उन [महात्मा] ऋषभजीने उसके अंगोंमें भस्म लगाकर कृपापूर्वक बारह हजार हाथियोंका बल भी उसे प्रदान किया ॥ ४४ ॥

इस प्रकार मातासहित भद्रायुको भलीभाँति आश्वस्त करके तथा उन दोनोंसे पूजित होकर स्वेच्छागामी प्रभु ऋषभ चले गये ॥ ४५ ॥

हे विधे ! राजर्षि भद्रायु भी अपने शत्रुओंको जीतकर कीर्तिमालिनीसे विवाहकर धर्मानुसार गम्य करने लगे ॥ ४६ ॥

मैंने इस प्रकारके प्रभाववाले, सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले तथा दीन-दुःखियोंके बन्धुरूप मुझ शंकरके नौवें ऋषभ-अवतारका वर्णन आपसे किया ॥ ४७ ॥

ऋषभका चारित्र परम पवित्र, महान्, स्वर्ग देनेवाला यश तथा कीर्ति देनेवाला और आयुको बढ़ानेवाला है, इसे यत्पूर्वक सुनना चाहिये ॥ ४८ ॥

ग्यारहवें द्वापरयुगमें जब त्रिवृत नामक व्यास होंगे, उस समय मैं कलियुगमें गंगाद्वारपर तप नामसे अवतरित होऊँगा । उस समय भी लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब एवं प्रलम्बक नामक चार दृढ़ब्रती मेरे शिष्य होंगे ॥ ३-४ ॥

बारहवें द्वापरयुगके आनेपर वेदोंके विभाग करनेवाले

शततेजा नामक व्यास होंगे, तब मैं द्वापरके अन्त होनेपर कलियुगमें यहाँ पृथिवीपर अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय हेमकंचुक नामक स्थानपर आविर्भूत हुआ। मैं अत्रिके नामसे प्रसिद्ध होकर व्यासजीके सहायतार्थ निवृत्तिमार्गको दूढ़ करूँगा॥ ५-६॥

हे महामुने! उस समय सर्वज्ञ, सम्बुद्धि, साध्य एवं शर्व नामक मेरे परम योगी चार पुत्र होंगे॥ ७॥

तेरहवें द्वापरयुगमें धर्मस्वरूप नारायण नामक व्यास होंगे, उस समय मैं वालखिल्ल्यके आश्रममें उत्तम गन्धमालन पर्वतपर बलि नामक महामुनिके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँपर सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा नामक मेरे चार श्रेष्ठ पुत्र होंगे॥ ८-९॥

चौदहवें द्वापरयुगके आनेपर जब रक्ष नामक व्यास होंगे, तब मैं आंगिरस वंशमें गौतम नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी कलियुगमें अत्रि, वशद, त्रवण और श्रीविष्ट क्षट नामक मेरे चार पुत्र होंगे॥ १०-११॥

पन्द्रहवें द्वापरयुगमें जब त्रय्यारुणि नामक व्यास होंगे, उस समय मैं वेदशिरा नामसे अवतरित होऊँगा। वेदशिरा नामक महावीर्यवान्, मेरा अस्त्र होगा और सरस्वतीके उत्तर तथा हिमालयके पृष्ठभागमें मैं वेदशीर्ष पर्वतपर निवास करूँगा। उस समय भी कुणि, कुणिवाहु, कुशरीर और कुनेत्र नामक मेरे चार शक्तिशाली पुत्र होंगे॥ १२-१४॥

सोलहवें द्वापरयुगमें जब देव नामक व्यास होंगे, उस समय मैं योगमार्गका उपदेश देनेके लिये गोकर्ण नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहाँपर परम पुण्यप्रद गोकर्ण नामक वन है। वहाँपर भी जलके समान निर्यत अन्तःकरणवाले काश्यप, उशना, च्यवन और वृहस्पति नामक मेरे चार योगपरायण पुत्र होंगे और वे पुत्र भी योगमार्गसे शिवपदको प्राप्त करेंगे॥ १५-१६॥

सत्रहवें द्वापरयुगके आगमनपर देवकृतंजय नामक व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालयके उत्तम तथा ऊँचे शिखरपर, हिमसे व्याप्त जो महालय नामका शिवक्षेत्र

है, वहाँ गुहावासी नामसे अवतार धारण करूँगा और वहाँ भी उत्थय, वामदेव, महायोग एवं महाबल नामक मेरे चार पुत्र होंगे॥ १७-१९॥

अठारहवें द्वापरयुगके आनेपर जब ऋतंजय नामक व्यास होंगे, तब मैं उस हिमालयके मनोहर शिखरपर शिखण्डी नामसे प्रकट होऊँगा। उस महापुण्यप्रद सिद्धक्षेत्रमें शिखण्डी नामक पर्वत है और उसी नामवाला वन भी है, जहाँ सिद्ध निवास करते हैं, वहाँ भी वाचःश्रवा, रुचीक, श्यावास्य एवं यतीश्वर—ये मेरे चार महातपस्वी पुत्र होंगे॥ २०-२२॥

उनीसवें द्वापरयुगमें जब भरद्वाज मुनि व्यास होंगे, तब हिमालयके शिखरपर जटाएँ धारण किया हुआ मैं माली नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँ समुद्रके समान गम्भीर हिरण्यनामा, कौशल्य, लोकाक्षी तथा प्रधिमि नामक मेरे चार पुत्र होंगे॥ २३-२४॥

बीसवें द्वापरमें गौतम नामक व्यास होंगे, तब मैं हिमालयपर्वतपर अद्वृहास नामसे अवतोर्ण होऊँगा। वहाँ हिमालयके पृष्ठभागपर अद्वृहास नामक महापर्वत है, जहाँ अद्वृहासप्रिय मनुष्य निवास करते हैं और जो देव, मनुष्य, यक्षराज, सिद्ध और चारणोंसे सेवित है। वहाँ भी सुमन्तु, विद्वान् वर्वारि, कवन्य तथा कुशिक्षन्चर नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे॥ २५-२७॥

इकीसवें द्वापरमें जब वाचःश्रवा नामक व्यास होंगे, तब मैं दारुक नामसे अवतरित होऊँगा। इसलिये उस उत्तम वनका नाम भी दारुवन होगा। वहाँपर भी प्लक्ष, दार्भायणी, केतुमान् और गौतम नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे॥ २८-२९॥

बाईसवें द्वापरयुगके आनेपर जब शुष्मायण नामक व्यास होंगे, तब मैं लांगली भीम नामक महामुनिके रूपमें वाराणसीमें अवतरित होऊँगा, जहाँ कलियुगमें इन्द्रसहित समस्त देवगण मुझ हलायुध शिवका दर्शन करेंगे। वहाँ भी भल्लवी, मधु, फिंग तथा श्वेतकेतु नामक मेरे चार परम धार्मिक पुत्र होंगे॥ ३०-३२॥

तीर्थसवें द्वापरयुगके आनेपर जब मुनि तृणविन्दु

व्यास होंगे, तब मैं उत्तम कालंजरपर्वतपर श्वेत नामसे अवतार लूँगा। उस समय उशिक, बृहदश्व, देवल एवं कवि नामक मेरे चार तपस्वी पुत्र होंगे ॥ ३३-३४ ॥

चौबीसवें द्वापरयुगके प्राप्त होनेपर जब यक्ष नामक व्यास होंगे, उस समय मैं नैमित्यक्षेत्रमें शूली नामक महायोगीके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँपर भी शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व एवं शरदसु नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे ॥ ३५-३६ ॥

पच्चीसवें द्वापरयुगमें जब शक्ति नामक व्यास होंगे, तब मैं दण्डधारी महायोगी मुण्डीश्वर प्रभुके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड एवं प्रवाहक नामक चार तपस्वी शिष्य होंगे ॥ ३७-३८ ॥

छब्बीसवें द्वापरयुगमें जब पराशर नामक व्यास होंगे, उस समय मैं भद्रवटपुरुमें आकर सहिष्णु नामसे अवतारित होऊँगा। वहाँपर भी उलूक, विद्वृत, शम्बूक और आश्वलायन नामवाले मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे ॥ ३९-४० ॥

सत्ताईसवें द्वापरयुगमें जब जातकूर्प व्यास होंगे, उस समय मैं प्रभासतीर्थमें आकर सोमशर्मी नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँपर भी अक्षपाद, कुमार, उलूक एवं वत्स नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे ॥ ४१-४२ ॥

अद्वौईसवें द्वापरयुगमें जब महाविष्णु पराशरके पुत्ररूपमें जन्म लेकर द्वौपायन नामक व्यास होंगे, तब छठे अंशसे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भी वासुदेवके नामसे प्रसिद्ध और वसुदेवके पुत्ररूपमें अवतारित होंगे। उस समय मैं भी योगमायासे संसारको विस्मित करनेके लिये योगमात्मा नामक ब्रह्मचारीका रूप धारण करूँगा और शरीरको अनामय समझकर इसे मृतकी भाँति श्मशानमें छोड़कर ब्राह्मणोंके हितके लिये योगमायासे आप ब्रह्मा एवं विष्णुके साथ दिव्य तथा पवित्र मेरुगुहामें प्रवेश करूँगा। हे ब्रह्मन्! उस समय मैं लंकुली नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। मेरे उत्पन्न होनेसे यह कायावतार तीर्थ सिद्धक्षेत्रके

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके शिवावतारोपाञ्चानमें शिवके उनीस अवतारोंका वर्णन नामक याँचाँवां अथवा पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

नामसे उस समयतक विख्यात रहेगा, जबतक यह पृथ्वी रहेगी। उस समय भी कुशिक, गर्ग, मित्र एवं कौरुष नामक मेरे तपस्वी शिष्य होंगे। ये सभी योगी, ब्रह्मनिष्ठ, वेदके पारगामी विद्वान् तथा ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी होकर माहेश्वर योगको प्राप्तकर शिवलोकको जायेंगे ॥ ४३-४० ॥

[सूतजी बोले—] हे उत्तम ब्रतवाले मुनियो! इस प्रकार परमात्मा शिवने वैवस्वत मन्वन्तरके प्रत्येक कलियुगमें होनेवाले अपने योगावतारोंका सम्यक् वर्णन किया ॥ ५१ ॥

हे विभो! इसी प्रकार प्रत्येक द्वापरयुगमें अद्वौईस व्यास तथा प्रत्येक कलियुगके प्रारम्भमें योगेश्वरके अवतार होते रहते हैं ॥ ५२ ॥

प्रत्येक महायोगेश्वरके अवतारोंमें उनके चार महाशैव शिष्य भी होते रहते हैं, जो योगमार्गकी वृद्धि करनेवाले तथा अविनाशी होते हैं ॥ ५३ ॥

ये सभी शिष्य पाशुपतब्रतका आचरण करनेवाले, शरीरमें भस्मलेपन करनेवाले, रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले तथा त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित मस्तकवाले होते हैं। सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदांगके ज्ञाता, लिंगार्चनमें सदा तत्पर, बाहर तथा भीतरसे मुझमें भक्ति रखनेवाले योगध्यानपरायण तथा जितेन्द्रिय होते हैं। विद्वानोंद्वारा इनकी संख्या एक सौ बारह कही गयी है ॥ ५४-५६ ॥

इस प्रकार मैंने अद्वौईस युगोंके क्रमसे मनुसे लेकर श्रीकृष्णावतारपर्यन्त [शिवजीके] अवतारोंका लक्षण कह दिया। इस कल्पमें जब कृष्णद्वौपायन व्यास होंगे, तब श्रुतिसमूहोंका ब्रह्मलक्षणसम्पन्न विधान अर्थात् वेदान्तके रूपमें प्रयोग होगा ॥ ५७-५८ ॥

[हे सनत्कुमार!] देवेश्वर शिव ब्रह्मासे इतना कहकर उनपर कृपा करके उनकी ओर पुनः देखकर बहींपर अनर्थित हो गये ॥ ५९ ॥

छठा अध्याय

नन्दीश्वरावतारवर्णन

सनत्कुमार बोले—[हे नन्दीश्वर!] आप महादेवके अंशसे किस प्रकार उत्पन्न हुए और किस प्रकार शिवत्वको प्राप्त हुए? हे प्रभो! मैं वह सब सुनना चाहता हूँ, अतः आप मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ १ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे मुने! जिस प्रकार शिवजीके अंशसे उत्पन्न होकर मैंने शिवत्वको प्राप्त किया है, उसको आप सावधानीपूर्वक सुनिये ॥ २ ॥

किसी समय उद्धारकी अभिलाषावाले पितरोंने [महर्षि] शिलादसे आदरपूर्वक कहा कि सन्तान उत्पन्न करनेका प्रयत्न करें, तब शिलादने भक्तिपूर्वक उनका उद्धार करनेकी इच्छासे पुत्रोत्पत्ति करनेका विचार किया ॥ ३ ॥

परम धर्मात्मा तथा तेजस्वी उन शिलादमुनिने अधोवृष्टि एवं मुनिवृत्ति धारण कर ली और वे शिवलोकको गये। उन शिलादमुनिने स्थिर मन तथा दृढ़ व्रतवाला होकर इन्द्रको उद्देश्य करके बहुत समयतक अति कठोर तप किया ॥ ४-५ ॥

तब तपोनिरत उनके तपसे सर्वदेवप्रभु इन्द्र सन्तुष्ट हो गये और वर देनेहेतु गये तथा अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिलादसे बोले—हे अनंथ! मैं आपपर प्रसन्न हूँ। अतः हे मुनिशर्दूल! आप वर मांगें ॥ ६-७ ॥

तब शिलादमुनि देवेश इन्द्रको प्रणामकर स्तोत्रोंके द्वारा आदरपूर्वक सुन्ति करके हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे— ॥ ८ ॥

शिलाद बोले—हे इन्द्र! हे सुरेशान! हे प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं आपसे अयोनिज, अमर तथा उत्तम व्रतवाले पुत्रकी कामना करता हूँ ॥ ९ ॥

शक्त बोले—हे पुत्रार्थिन्! मैं आपको योनिसे उत्पन्न तथा मृत्युको प्राप्त होनेवाला पुत्र दे सकता हूँ, इसके विपरीत नहीं; क्योंकि मृत्युहीन तो कोई नहीं है। मैं आपको अयोनिज तथा मृत्युरहित पुत्र नहीं दे सकता, हे महामुने! [अयोनिज एवं अमर पुत्र तो] भगवान् विष्णु,

ब्रह्मा तथा कोई अन्य भी नहीं दे सकते हैं ॥ १०-११ ॥ वे दोनों भी शिवके शरीरसे उत्पन्न होते हैं और मरते रहते हैं एवं उन दोनोंकी आयुका प्रमाण भी वेदमें अलग कहा गया है ॥ १२ ॥

इसलिये हे विप्रवर! मृत्युहीन एवं अयोनिज पुत्रकी कामना प्रथलपूर्वक छोड़ें और अपने सामर्थ्यवाला पुत्र प्राप्त करें ॥ १३ ॥

हाँ, यदि देवाधिदेव महादेव रुद्र आपपर प्रसन्न हो जायें, तो आपको अत्यन्त दुर्लभ, मृत्युहीन और अयोनिज पुत्र प्राप्त हो सकता है ॥ १४ ॥

हे महामुने! मैं, भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मा भी अयोनिज तथा मृत्युहीन पुत्र नहीं दे सकते। यदि इस प्रकारके पुत्रको प्राप्त करनेकी कामनासे आप महादेवकी आराधना कीजिये, तो महान् सामर्थ्यवाले वे सर्वेश्वर आपको इस प्रकारका पुत्र देंगे ॥ १५-१६ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! परम दयालु इन्द्र उन विप्रेन्द्रको इस प्रकारसे कहकर तथा उनपर अनुग्रह करके देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये ॥ १७ ॥

वरदाता इन्द्रके चले जानेपर वे शिलादमुनि महादेवकी आराधना करते हुए अपनी तपस्यासे शिवको प्रसन्न करने लगे ॥ १८ ॥

इस प्रकार रात-दिन तत्परतापूर्वक तपस्या करते हुए उन द्विज [शिलादमुनि]-के दिव्य एक हजार वर्ष एक क्षणके समान बीत गये, यह आश्चर्यजनक था ॥ १९ ॥

उनका समस्त शरीर वज्रसूचीके समान मुखवाले एवं अन्यान्य रुधिरपान करनेवाले लाखों कीड़ोंसे तथा वल्मीकिसे ढाँक गया। उनका शरीर त्वचा, रुधिर एवं मांससे रहित हो गया, बाँबीमें स्थित उन मुनिश्रेष्ठ शिलादकी हड्डियाँ ही बची रह गयी थीं ॥ २०-२१ ॥

तब शिवजीने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य गुणोंसे युक्त अपना दिव्य शरीर दिखलाया, जिसे कुटिल बुद्धि रखनेवाले नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥ २२ ॥

तब सभी देवताओंके स्वामी शूलधारी शिवने

देवताओंके एक हजार वर्षसे तप करते हुए उन शिलादमुनिसे कहा कि मैं आपको वर देनेहेतु आया हूँ ॥ २३ ॥

महासमाधिमें लीन वे महामुनि शिलाद भक्तिके अधीन रहनेवाले शिवजीकी उस वाणीको नहीं सुन सके ॥ २४ ॥

जब शिवजीने अपने हाथसे मुनिका स्पर्श किया, तब मुनिश्रेष्ठ शिलादने तपस्या छोड़ी ॥ २५ ॥

हे मुने ! तदनन्तर नेत्र खोलकर पार्वतीसहित शिवका दर्शन प्राप्तकर शीघ्रतासे आनन्दपूर्वक प्रणाम करके शिलादमुनि उनके चरणोंपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् प्रसन्नचित् वे शिलाद कंधा झुकाकर हाथ जोड़कर हर्षके कारण गदगद वाणीमें परमेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥

तदनन्तर प्रसन्न हुए देवाधिदेव त्रिलोचन भगवान् शिवने उन मुनिश्रेष्ठ शिलादसे [पुनः] कहा—मैं आपको वर देने आया हूँ। हे महामते ! इस तपस्यासे आपको क्या करना है ? मैं आपको सर्वज्ञ तथा सर्वशास्त्रार्थवेता पुत्र दे रहा हूँ ॥ २८-२९ ॥

तब यह सुनकर शिलादने शिवजीको प्रणामकर हर्षके कारण गदगद वाणीमें उन चन्द्रशेखरसे कहा— ॥ ३० ॥

शिलाद बोले—हे महेश्वर ! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं, तो मैं आपके समान ही अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र चाहता हूँ ॥ ३१ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार !] तब उनके ऐसा कहनेपर त्रिनेत्र भगवान् शिव प्रसन्नचित् होकर मुनिश्रेष्ठ शिलादसे कहने लगे— ॥ ३२ ॥

शिवजी बोले—हे विष्र ! हे तपोधन ! पूर्वकालमें ब्रह्मा, देवताओं तथा मुनियोंने [मेरे] अवतारके लिये तपस्याके द्वारा मेरी आराधना की थी, इसलिये मैं नन्दी नामसे आपके अयोनिज पुत्रके रूपमें अवतारित होऊँगा और हे मुने ! तब आप मुझ तीनों लोकोंके पिताके भी पिता बन जायेंगे ॥ ३३-३४ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर प्रणाम करके स्थित मुनिकी ओर देखकर उन्हें आज्ञा देकर उमासहित दयालु शिव वर्ण अन्तर्हित हो गये ॥ ३५ ॥

तब उन महेदेवके अन्तर्धान हो जानेपर अपने आत्रमें

आकर उन महामुनि शिलादने ऋषियोंको [वह वृत्तान्त] बताया ॥ ३६ ॥

[हे सनत्कुमार !] कुछ समय बाद यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मेरे पिता शिलादमुनि यज्ञ करनेके लिये यज्ञस्थलका शीघ्रतासे कर्षण करने लगे ॥ ३७ ॥

उसी समय [यज्ञारम्भसे पूर्व ही] शिवजीकी आज्ञासे प्रलयगिनके सदृश देवीप्यमान होकर मैं उनके शरीरसे पुत्ररूपमें प्रकट हुआ ॥ ३८ ॥

उस समय शिलादमुनिके पुत्ररूपमें मेरे अवतारित होनेपर पुष्करवर्त आदि मेघ वर्षा करने लगे; आकाशचारी किनार, सिद्ध और साध्यगण गान करने लगे और ऋषिगण चारों ओरसे पुष्पवृष्टि करने लगे। इसके बाद ब्रह्मा आदि देवगण, देवपत्नियाँ, विष्णु, शिव, अम्बिका—ये सब अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये ॥ ३९-४० ॥

उस समय वहाँपर बहुत बड़ा उत्सव हुआ। अप्सराएँ नाचने लगीं। वे सभी देवगण हर्षित होकर मेरा समादर तथा आलिंगन काके स्तुति करने लगे। वे लोग उन शिलादमुनिकी प्रशंसाकर तथा उत्तम स्तोत्रोंसे शिव एवं पार्वतीकी स्तुतिकर अपने-अपने धामोंको चले गये, अखिलेश्वर शिव-शिवा भी अपने धामको चले गये ॥ ४१-४२ ॥

[महर्षि] शिलाद भी प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके समान कान्तिमान्, तीन नेत्रोंसे युक्त, चार भुजावाले, जटामुकुटधारी, त्रिशूल आदि शस्त्र धारण करनेवाले, देवीप्यमान रूढ़के समान रूपवाले तथा सब प्रकारसे प्रणाम्य मुझ नन्दीश्वरको बालकके रूपमें देखकर परम आनन्दसे परिपूर्ण होकर प्रेमपूर्वक प्रणाम करने लगे ॥ ४३-४४ ॥

शिलाद बोले—हे सुरेश्वर ! आपने मुझे आनन्दित किया है, अतः आपका नाम नन्दी होगा और इसलिये आनन्दस्वरूप आप प्रभु जगदीश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार !] पिताजी उन महेश्वरको भलीभांति प्रणाम करके मुझे साथ लेकर शीघ्रतापूर्वक पर्णकुटीमें चले गये। वे इतने प्रसन्न हुए, मानो किसी निर्धनको निधि मिल गयी हो ॥ ४६ ॥

हे महामुने ! जब मैं [महर्षि] शिलादकी कुटीमें

गया, तब मैंने उस प्रकारके रूपको त्यागकर मनुष्य-शरीर धारण कर लिया ॥ ४७ ॥

तदनन्तर मुझे मनुष्य-शरीर धारण किया हुआ देखकर लोकपूजित मेरे पिता अपने कुटुम्बियोंसहित दुखी होकर विलाप करने लगे। शालंकार्यनमुनिके पुत्र पुत्रवत्सल शिलादने भेरा समस्त जातकर्मादि संस्कार सम्पादित किया ॥ ४८-४९ ॥

पाँचवें वर्षमें मेरे पिताने मुझे सांगोपांग बेटों तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका भी अध्ययन कराया। सातवें वर्षके सम्पूर्ण होनेपर मित्र और वरुण नामवाले दो मुनि शिवजीकी आज्ञासे मुझे देखनेके लिये उनके आश्रमपर आये ॥ ५०-५१ ॥

उन मुनि [शिलाद]-के द्वाग सत्कृत होकर सुखपूर्वक बैठे हुए दोनों महात्मा महामुनि मुझे बार-बार देखकर कहने लगे— ॥ ५२ ॥

मित्र और वरुण बोले—हे तात! आपके पुत्र नन्दी-जैसा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारंगत मुझे अभीतक कोई दिखायी या सुनायी नहीं पड़ा, किंतु [दुःख है कि] यह अल्पायु है। अब इस वर्षसे अधिक इसकी आयु हमलोग देख नहीं पा रहे हैं ॥ ५३ ॥

उन विद्रोंके ऐसा कहनेपर पुत्रवत्सल शिलाद उसका आलिंगनकर दुःखसे व्याकुल होकर ऊँचे स्वरमें अत्यधिक विलाप करने लगे ॥ ५४ ॥

॥ इस प्रकार शिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतसप्तसंहितामें नन्दिकेश्वरतारवणन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

तदनन्तर मृतकके समान गिरे हुए पिता एवं पितामहको देखकर वह बालक शिवके चरणकमलका ध्यानकर प्रसन्नचित्त होकर कहने लगा—हे तात! आप किस दुःखसे दुखी होकर काँपते हुए रो रहे हैं, आपको यह दुःख कहाँसे उत्पन्न हुआ, मैं उसको यथार्थ रूपसे जानना चाहता हूँ ॥ ५५-५६ ॥

पिता बोले—हे पुत्र! तुम्हारी अल्पावस्थामें मृत्युके दुःखसे मैं अत्यधिक दुखी हूँ। मेरे दुःखको कौन दूर करेगा, मैं उसकी शरणमें जाऊँ ॥ ५७ ॥

पुत्र बोला—[हे पिताजी!] देवता, दानव, यमराज, काल अथवा अन्य कोई भी प्राणी यदि मुझे मारना चाहें, तो भी मेरी अल्पमृत्यु नहीं होगी, आप दुखी न हों। हे पिताजी! मैं आपकी सौन्ध खाता हूँ, यह सच कह रहा हूँ ॥ ५८-५९ ॥

पिता बोले—हे पुत्र! वह कौन-सा तप है, ज्ञान है अथवा योग है या कौन तुम्हारा प्रभु है, जिससे तुम मेरे इस दारुण दुःखोंको दूर करोगे? ॥ ६० ॥

पुत्र बोला—हे तात! मैं न तो तपसे और न विद्यासे ही मृत्युको रोक सकूँगा, मैं तो केवल महादेवके भजनसे मृत्युको जीतूँगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६१ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! ऐसा कहकर मैं सिर झुकाकर पिताके चरणोंमें प्रणामकर उनकी प्रदक्षिणा करके उत्तम वनकी ओर चला गया ॥ ६२ ॥

सातवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वरका गणेश्वराधिपति पदपर अभिषेक एवं विवाह

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! मैं उस वनमें जाकर निर्जन स्थलमें आसन लगाकर धीरतापूर्वक कठोर तप करने लगा, जो मुनिजनोंके लिये भी असाध्य है ॥ १ ॥

नन्दीके उत्तरकी ओर पवित्र भगामें स्थित हो अपने हृदयकमलके [मध्यवर्ती] विवरमें तीन नेत्रवाले, दस भुजाओंसे युक्त, परम शान्त, पंचमुख सदाशिव ऋष्यांकदेवका ध्यान करके परम समाधिमें लीन होकर एकाग्रचित्तसे सावधानीपूर्वक रुद्रमन्त्रका जप करने लगा।

मुझको उस जपमें स्थित देखकर चन्द्रकला धारण करनेवाले पार्वतीसहित परमेश्वर महादेवने मुझपर प्रसन्न होकर कहा— ॥ २-४ ॥

शिवजी बोले—हे शिलादपुत्र! मैं तुम्हारी हस्तपस्यासे सन्तुष्ट होकर वर प्रदान करने आया हूँ। हे धीमन्! तुमने अच्छी तरह तपस्या की है, तुमको जो अभीष्ट हो, उसे माँग लो ॥ ५ ॥

शिवजीके ऐसा कहनेपर मैंने सिर झुकाकर उनके

चरणोमें प्रणाम किया और जरा एवं शोकका विनाश करनेवाले उन परमेश्वरकी स्तुति की ॥ ६ ॥

महाकष्टोंका नाश करनेवाले, वृषभध्वज, परमेश्वर शम्भुने परम भक्तिसे युक्त, अशूपूर्ण नेत्रवाले और चरणोमें सम्पूर्ख सिर झुकाये हुए मुझ नन्दीको उठाकर दोनों हाथोंसे पकड़कर मेरा स्पर्श किया। इसके बाद गणपतियों एवं देवी पार्वतीकी ओर देखकर दयामयी दृष्टिसे मुझे निहारते हुए जगत्पति शिवजी कहने लगे— ॥ ७-९ ॥

हे वत्स! हे नन्दिन! हे महाप्राज्ञ! तुमको मृत्युसे भय कहाँ? मैंने ही उन दोनों ब्राह्मणोंको भेजा था। तुम तो मेरे ही समान हो, इसमें संशय नहीं है। तुम अपने पिता एवं सुहृजनोंके सहित अजर, अमर, दुःखरहित, अविनाशी, अक्षय और सदा मेरे परम प्रिय गणपति हो गये। तुममें मेरे समान ही बल होगा और मेरे प्रिय होकर तुम निरन्तर मेरे समीप निवास करोगे। मेरी कृपासे तुमको जरा, जन्म एवं मृत्यु प्राप्त नहीं होगी॥ १०-१२ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इस प्रकार कहकर कृपानिधि शिवने कमलकी बनी हुई अपनी



शिरोमालाको उतारकर मेरे कण्ठमें शीश्रतासे पहना दिया ॥ १३ ॥

हे विप्र! उस पवित्र मालाके गलेमें पड़ते ही मैं तीन नेत्र एवं दस भुजाओंसे युक्त होकर दूसरे शिवके समान

हो गया ॥ १४ ॥

तदनन्तर परमेश्वरने मुझे अपने हाथसे पकड़कर कहा—हे वत्स! बताओ, मैं तुमको कौन-सा श्रेष्ठ वर प्रदान करूँ? ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् वृषभध्वजने अपनी जटामें स्थित हारके समान निर्वल जलको लेकर 'तुम यहाँपर नदी हो जाओ'—ऐसा कहा और उसे छिड़क दिया ॥ १६ ॥

उससे स्वच्छ जलवाली, महावेगसे युक्त, दिव्यस्वरूपा सुन्दरी एवं कल्याणकारिणी पाँच नदियाँ उत्पन्न हुईं। जटोदका, त्रिसोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदका एवं जामुनदी—ये पाँच नदियाँ कही गयी हैं ॥ १७-१८ ॥

हे मुने! यह पंचनद नामक शिवका सुभ पृष्ठदेश परम पवित्र है, जो जपेश्वरके समीप विद्यमान है। जो [चक्कि] पंचनदमें आकर इसमें स्नान तथा जपकर जपेश्वर शिवकी पूजा करता है, उसे शिवसायुज्यकी प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है ॥ १९-२० ॥

इसके बाद शिवजीने पार्वतीजीसे कहा—मैं नन्दीको अधिष्ठित करना चाहता हूँ और इसे गणेश्वर बनाना चाहता हूँ। हे अव्यये! इसमें तुम्हारी क्या सम्पत्ति है? ॥ २१ ॥

उमा बोली—हे देवेश! हे परमेश्वर! आप इस नन्दीको अवश्य ही गणेश्वरपद प्रदान करें। हे नाथ! यह शिलादपुत्र [आजसे] मेरा परम प्रिय पुत्र है ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] तदनन्तर स्वतन्त्र, सब कुछ प्रदान करनेवाले तथा भक्तवत्सल परमेश्वर शंकरने अपने श्रेष्ठ गणाधिपोंका स्मरण किया। शिवके स्मरण करते ही असंख्य गणेश्वर वहाँ उपस्थित हो गये, वे सब परम आनन्दसे परिपूर्ण तथा शंकरके स्वरूपवाले थे ॥ २३-२४ ॥

वे महाबली गणेश्वर शिव एवं पार्वतीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर तथा विनत होकर शुभ वचन कहने लगे ॥ २५ ॥

गणेश्वर बोले—हे देव! आपने किसलिये हमलोगोंका स्मरण किया है? हे महाप्रभो! हे त्रिपुरार्द्धन! हे कामद! यहाँ आये हुए हम सेवकोंको आज्ञा दीजिये ॥ २६ ॥

क्या हमलोग समुद्रोंको सुखा दें अथवा सेवकोंसहित यमराजको मार डालें अथवा मृत्यु महामृत्यु तथा बूढ़े ब्रह्माका संहार कर दें अथवा देवताओंके सहित इन्द्रको अथवा पार्वदोंसहित विष्णुको अथवा दानवोंसहित अत्यन्त कुद्ध दैत्योंको बाँधकर ले आयें ? आज आपकी आज्ञासे हम किसे घोर दण्ड दें अथवा है देव ! सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये हम आज किसका उत्सव मनायें ? ॥ २७—२९ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार वीरतापूर्ण वचन कहनेवाले उन गणोंकी बात सुनकर वे परमेश्वर उन गणपतियोंकी प्रशंसा करके कहने लगे ॥ ३० ॥

शिवजी बोले—यह नन्दीश्वर मेरा परम प्रिय पुत्र है, अतः तुमलोग इसे सभी गणोंका अग्रणी तथा सभी गणाध्यक्षोंका ईश्वर बनाओ, यह मेरी आज्ञा है ॥ ३१ ॥

मेरे जितने भी गणपति हैं, उन गणपतियोंके आश्रय इस [नन्दी]-को पतिपदपर तुम सब प्रेमपूर्वक अभिषिक्त करो। यह नन्दीश्वर आजसे तुम सभीका स्वामी होगा ॥ ३२ ॥

नन्दीश्वर बोले—तब शंकरजीके द्वारा इस प्रकार कहे गये वे सभी गणेश्वर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर [अभिषेकको] सामग्री एकत्र करने लगे ॥ ३३ ॥

इसके बाद प्रसन्न मुखमण्डलवाले इन्द्रसहित सभी देवता, नारायण आदि मुख्य [देवगण], मुनिगण एवं अन्य सभी लोग वहाँ उपस्थित हुए ॥ ३४ ॥

हे भगवन् ! शिवजीकी आज्ञासे स्वयं ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर नन्दीश्वरका समस्त गणाध्यक्षोंके अधिपति-पदपर अभिषेक किया। तत्पश्चात् विष्णु इन्द्र एवं [अन्य] लोकपालोंने भी उसी प्रकार अभिषेक किया, तत्पश्चात् ऋषिगण एवं पितामह आदिने उनकी स्तुति की। उन सभीके स्तुति कर लेनेके अनन्तर सम्पूर्ण जगत्के स्वामी विष्णुने सिरपर अंजलि बाँधकर एकाग्रचित्त हो उनकी स्तुति की और हाथ जोड़कर ग्रणाम करके उनका जयकार किया, पुनः सभी गणाधिपों, देवताओं एवं असुरोंने जयकार किया ॥ ३५—३८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! इस प्रकार परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्मासहित सभी देवताओंने मुझ नन्दीश्वरका अभिषेक तथा स्तवन

किया ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने शिवजीकी आज्ञासे बड़े उत्सवके साथ प्रेमपूर्वक मेरा विवाह भी सम्पन्न किया ॥ ४० ॥

मन तथा नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मनोहर तथा दिव्य सुयशा नामक मरुत्कन्या मेरी पत्नी हुई ॥ ४१ ॥

उस [सुयशा]-ने हाथके अग्रभागमें चामर धारण की हुई स्त्रियोंसे युक्त तथा चामरोंसे सुशोभित चन्द्रप्रभासदृश छत्र प्राप्त किया। मैं उसके साथ श्रेष्ठतम सिंहासनपर बैठा और स्वयं महालक्ष्मीने मुकुट आदि सुन्दर भूषणोंसे मुझे सुशोभित किया ॥ ४२—४३ ॥

देवीने अपने कण्ठमें स्थित उत्तम हार उतारकर मुझे प्रदान किया। हे मुने ! मुझे श्वेत वृषेन्द्र, हाथी, सिंह, सिंहध्य, रथ, चन्द्रबिम्बके समान स्वच्छ सोनेका हार और अन्यान्य वस्तुएँ भी प्राप्त हुई ॥ ४४—४५ ॥

हे महामुने ! इस प्रकार विवाह हो जानेपर मैंने उस पत्नीके साथ शिव, पार्वती, ब्रह्मा एवं विष्णुके चरणोंकी बन्दना की ॥ ४६ ॥

उस समय उन त्रिलोकेश्वर भक्तवत्सल प्रभु सदाशिवने उस स्वरूपवाले मुझ सपलीक नन्दीश्वरसे अत्यन्त प्रेमके साथ कहा— ॥ ४७ ॥

ईश्वर बोले—हे सत्यनुत्र ! सुनो, तुम मेरे पुत्र हो। यह सुमशा तुम्हारी पत्नी है। तुम्हरे मनमें जो भी अभिलाषा है, उसे मैं प्रेमपूर्वक तुम्हें प्रदान करूँगा ॥ ४८ ॥

हे गणेश्वर ! हे नन्दीश्वर ! पार्वतीसहित मैं तुमपर सदा सन्तुष्ट हूँ। हे वत्स ! तुम मेरी उत्तम बात सुनो। तुम अपने पिता एवं पितामहके साथ सदा मेरे प्रिय, विशिष्ट, परमेश्वर्यसे युक्त, महायोगी, महाधूर्ध, अजेय, सर्वजेता, सदा पूज्य एवं महाबली होओगे। जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ तुम रहोगे और जहाँ तुम रहोगे, वहाँ मैं भी रहूँगा ॥ ४९—५१ ॥

हे पुत्र ! तुम्हारे ये पिता महान् ऐश्वर्यसे युक्त, महाबली, मेरे भक्त एवं गणोंके अध्यक्ष होंगे ॥ ५२ ॥

हे वत्स ! तुम्हारे पितामह भी उसी प्रकारके होंगे। ये सभी मेरे द्वारा वरदान प्राप्तकर मेरी समीपता प्राप्त करेंगे। तुम्हारे लिये मैंने यह वरदान दिया ॥ ५३ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] तब वरदायिनी
महाभागा पार्वती देवीने मुझ नन्दीश्वरसे कहा—हे पुत्र!
तुम मुझसे सभी अभिलिप्त वर माँगो॥ ५४ ॥

तब पार्वती देवीके उस वचनको सुनकर नन्दीश्वरने
हाथ जोड़कर कहा—हे देवि! आपके चरणोंमें सदा मेरी
उत्तम भक्ति हो॥ ५५ ॥

मेरे वचनको सुनकर उन देवीने कहा—ऐसा ही
हो, पुनः उन्होंने बड़े प्रेमसे मुझ नन्दीकी कल्याणमयी
पत्नी सुयसासे कहा—॥ ५६ ॥

देवी बोली—हे वत्स! तुम यथेष्ट वर ग्रहण
करो। तुम तीन नेत्रवाली एवं जन्म [-मृत्यु]-से रहित
रहोगी और पुत्र-पौत्रोंके सहित तुम्हारी भक्ति मुझमें और
अपने पतिमें निरन्तर बनी रहेगी॥ ५७ ॥

नन्दी बोले—उस समय ब्रह्मा, विष्णु तथा सभी
देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक शिवको आज्ञासे उन दोनोंको

// इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दिकेश्वर-अवतार-अभियेक
एवं विवाहवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७ ॥

वर दिये॥ ५८ ॥

उसके बाद ईश शिवजी सम्बन्धियों, बन्धु-बाध्यवाँ
एवं कुदुम्बके साथ मुझे लेकर पार्वतीसहित बैलपर सवार
होकर अपने धामको गये॥ ५९ ॥

वे विष्णु आदि सभी देवता भी मेरी प्रशंसा करते
हुए तथा शिव-पार्वतीकी स्तुति करते हुए अपने-अपने
धामको चले गये॥ ६० ॥

हे वत्स! हे महामुने! इस प्रकार मैंने अपना
अवतार आपसे कहा, जो मनुष्योंको सदा आनन्द
देनेवाला एवं शिवजीमें भक्ति बढ़ानेवाला है॥ ६१ ॥

जो [व्यक्ति] श्रद्धा तथा भक्तिसे युक्त होकर मुझ
नन्दीके इस जन्म, वरदान, अभियेक तथा विवाहके
प्रसंगको सुनता है अथवा सुनाता है अथवा भक्तिपूर्वक
पढ़ता है या पढ़ाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको
भोगकर परलोकमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ६२-६३ ॥

आठवाँ अध्याय

भैरवावतारवर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब
आप भैरवकी कथा सुनें, जिसके सुननेमात्रसे शिवभक्ति
सुस्थिर हो जाती है॥ १ ॥

भैरवजी परमात्मा शंकरके पूर्णरूप हैं, शिवजीकी
मायासे मोहित मूर्खलोग उन्हें नहीं जान पाते॥ २ ॥

हे सनत्कुमार! चतुर्मुख विष्णु तथा चतुर्मुख ब्रह्माजी
भी महेश्वरकी महिमाको नहीं जान पाते हैं॥ ३ ॥

इसमें कोई आशर्चय नहीं है; क्योंकि शिवजीकी
माया दुर्ज्ञ है। उसी मायासे मोहित होकर [ये] सभी
[संसारी] लोग उन परमेश्वरकी पूजा नहीं करते हैं॥ ४ ॥

यदि वे परमेश्वर स्वयं ही अपना ज्ञान करा दें, तभी
वे सभी लोग उन्हें जान सकते हैं, अपनी इच्छासे कोई
भी उन्हें नहीं जान पाता है॥ ५ ॥

यद्यपि महेश्वर सर्वव्याप्ती हैं, किंतु मूढ़ बुद्धिवाले
उन्हें देख नहीं पाते हैं। जो वाणी एवं मनसे परे हैं, उन्हें

लोग मात्र देवता ही समझते हैं॥ ६ ॥

हे महर्ये! इस विषयमें पुराना इतिहास कह रहा है।
हे तात! आप उसको श्रद्धापूर्वक सुनिये। वह परमोत्तम
और ज्ञानका कारण है॥ ७ ॥

समस्त देवता और ऋषिगण परम तत्त्व जाननेकी
इच्छासे सुमेरुरूपर्वतके अद्वत तथा मनोहर शिखरपर स्थित
भगवान् ब्रह्माके पास गये॥ ८ ॥

वहाँ जाकर ब्रह्माजीको नमस्कार करके वे सब
हाथ जोड़कर तथा कन्धा छुकाकर आदरपूर्वक पूछने
लगे—॥ ९ ॥

देवता तथा ऋषि दोले—हे देवदेव! हे प्रजानाथ!
हे सुष्ठिकर्ता! हे लोकनायक! आप हमें ठीक-ठीक
बताइये कि अद्वितीय तथा अविनाशी तत्त्व क्या है?॥ १० ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी मायासे मोहित वे
ब्रह्माजी परम तत्त्वको न समझकर सामान्य बात कहने

लगे ॥ ११ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओं तथा ऋषियों! आप सब आदरपूर्वक सद्बुद्धिसे मेरी बात सुनें। मैं यथार्थ रूपसे अव्यय परम तत्त्वको बता रहा हूँ ॥ १२ ॥

मैं जगत्का मूल कारण हूँ। मैं धाता, स्वयम्भू अज, ईश्वर, अनादिभास, ब्रह्म, अद्वितीय एवं निरंजन आत्मा हूँ। मैं ही सारे जगत्का प्रवर्तक, संवर्तक तथा निवर्तक हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओं! मुझसे बड़ा दूसरा कोई नहीं है ॥ १३-१४ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! जब ब्रह्माजी इस बातको कह रहे थे, उसी समय वहाँ स्थित विष्णुने सनातनी मायासे विमोहित होकर हँसते हुए कुछ होकर यह बचन कहा— ॥ १५ ॥

हे ब्रह्मन्! योगसे युक्त होते हुए भी आपकी यह मूर्खता उचित नहीं है। परमतत्त्वको न जानकर आप यह व्यर्थ बोल रहे हैं ॥ १६ ॥

सम्पूर्ण लोकोंका कर्ता, परमपुरुष, परमात्मा, यज्ञस्वरूप नारायण, मायाधीश एवं परमगति प्रभु मैं ही हूँ ॥ १७ ॥

हे ब्रह्मन्! आप मेरी आज्ञासे ही इस सृष्टिकी रचना करते हैं। मुझ ईश्वरका अनादरकर यह जगत् किसी भी प्रकार जीवित नहीं रह सकता ॥ १८ ॥

इस प्रकार परस्पर तिरस्कृत होकर वे दोनों ही अर्थात् ब्रह्मा एवं विष्णु मोहबश एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छाकर आपसमें विवाद करते हुए अपने-अपने विषयमें वेदप्रामाण्यकी अपेक्षासे प्रमाणतत्त्वज्ञ, मूर्तिधारी चारों वेदोंके पास जाकर पूछने लगे— ॥ १९-२० ॥

ब्रह्मा एवं विष्णु बोले—हे वेदो! आपलोगोंका सर्वत्र प्रामाण्य है और आपलोगोंको परम प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई है, अतः विश्वासपूर्वक कहिये कि एकमात्र अविनाशी तत्त्व क्या है? ॥ २१ ॥

नन्दीश्वर बोले—उन दोनोंका यह बचन सुनकर ऋक् आदि सभी वेद परमेश्वर शिवका स्मरण करते हुए यथार्थ बात कहने लगे ॥ २२ ॥

हे सृष्टिस्थितिकर्ता, सर्वव्यापी देवो! यदि हम [आपलोगोंको] मान्य हैं, तो आपलोगोंके सन्देहको दूर करनेवाले प्रमाणको हमलोग कह रहे हैं ॥ २३ ॥

नन्दीश्वर बोले—वेदोंके द्वारा कही गयी विधिको सुनकर ब्रह्मा एवं विष्णु वेदोंसे कहा कि जो कुछ भी आपलोग कहेंगे, वही प्रमाण हमलोग मान लेंगे, अतः तत्त्व क्या है, इसे भलीभांति कहें ॥ २४ ॥

ऋग्वेद बोला—जिनके भीतर सम्पूर्ण भूत स्थित हैं, जिनसे सब कुछ प्रवृत्त होता है एवं जिन्हें परम तत्त्व कहते हैं, वे एकमात्र रुद्र ही हैं ॥ २५ ॥

यजुवेद बोला—मनुष्य योग एवं समस्त यज्ञोंके द्वारा जिन ईश्वरकी आराधना करता है और जिनसे निश्चय ही हमलोग प्रमाणित हैं, वे एकमात्र सबके द्रष्टा शिव ही परमतत्त्व हैं ॥ २६ ॥

सापवेद बोला—यह जगत् जिनके द्वारा भ्रमण कर रहा है, योगीजन जिनका चिन्तन करते हैं और जिनके प्रकाशसे यह संसार प्रकाशित हो रहा है, वे एकमात्र ऋष्वक शिव ही परमतत्त्व हैं ॥ २७ ॥

अथवेद बोला—जिनकी भक्तिका अनुग्रह प्राप्तकर भक्तजन उनका साक्षात्कार करते हैं, उन्हीं दुःखरहित एवं कैवल्यस्वरूप एकमात्र शंकरको परमतत्त्व कहा गया है ॥ २८ ॥

नन्दीश्वर बोले—वेदोंका यह बचन सुनकर शिवजीकी मायासे अत्यन्त विमोहित ब्रह्मा एवं विष्णु अचेतसे हो गये, फिर मुसकराकर उन वेदोंसे कहने लगे— ॥ २९ ॥

ब्रह्मा एवं विष्णु बोले—हे वेदो! आपलोग चेतनाहीन होकर यह क्या प्रलाप कर रहे हैं? आज आपलोगोंको क्या हो गया है? अवश्य ही आपलोगोंका सारा श्रेष्ठ ज्ञान नष्ट हो गया है ॥ ३० ॥

प्रमथनाथ, दिग्घर, पीतवर्णवाले, धूलिधूसरित, निरन्तर पार्वतीके साथ रमण करनेवाले, अत्यन्त विकृत रूपवाले, जटाधारी, बैलपर सवारी करनेवाले तथा सपौका आभूषण धारण करनेवाले वे शिव निःसंग परम ब्रह्म किस प्रकार हो सकते हैं? ॥ ३१-३२ ॥

उस समय उन दोनोंकी इस बातको सुनकर सर्वत्र व्यापक तथा निराकार प्रणवने मूर्तिमान् प्रकट होकर उनसे कहा— ॥ ३३ ॥

प्रणव बोला—लीलास्वरूपधारी, हर भगवान् रुद्र

अपनी शक्तिके बिना कभी भी रमण करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ३४ ॥

ये परमेश्वर शिव सनातन तथा स्वयं ज्योतिःस्वरूप हैं और ये शिव उन्हींकी आहादिनी शक्ति हैं, अतः आगन्तुक नहीं हैं, अपितु उन्हींके समान नित्य [तथा उनसे अधिन] हैं ॥ ३५ ॥

नन्दीश्वर बोले— उस समय उँकारके इस प्रकार कहनेपर भी शिवमायासे मोहित ब्रह्मा एवं विष्णुका अज्ञान जब दूर नहीं हुआ, तब उसी समय अपने प्रकाशसे पृथ्वी तथा आकाशके अन्तरालको पूर्ण करती हुई एक महान् ज्योति उन दोनोंके बीचमें प्रकट हो गयी ॥ ३६-३७ ॥

हे मुने! उस ज्योतिसमूहके बीचमें स्थित एक अत्यन्त अद्भुत शरीरवाले पुरुषको ब्रह्मा एवं विष्णुने देखा ॥ ३८ ॥

तब क्रोधके कारण ब्रह्माजीका पाँचवाँ सिर जलने लगा कि हम दोनोंके मध्य यह पुरुषशरीरको धारण किये हुए कौन है? ॥ ३९ ॥

जबतक ब्रह्माजी यह विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें उसी क्षण वह महापुरुष त्रिलोचन, नीललोहित सदाशिवके रूपमें दिखायी पड़ा। हाथमें त्रिशूल धारण किये, मस्तकपर नेत्रवाले, सर्प एवं चन्द्रमाको भूषणके रूपमें धारण किये उन्हें देखकर मोहित हुए ब्रह्माजी हँसते हुए कहने लगे— ॥ ४०-४१ ॥

ब्रह्माजी बोले— हे नीललोहित! हे चन्द्रशेखर! मैं तुम्हें जानता हूँ, डरो मत। तुम पूर्व समयमें मेरे ललाट-प्रदेशसे रोते हुए उत्पन्न हुए थे। पहले मैंने ही रोनेके कारण तुम्हारा नाम रुद्र रखा था। हे पुत्र! मेरी शरणमें आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ॥ ४२-४३ ॥

नन्दीश्वर बोले— हे मुने! उसके बाद ब्रह्माकी अहंकारयुक्त वाणी सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रोधित हुए, उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो प्रलय कर देंगे ॥ ४४ ॥

उस समय परमेश्वर शिव अपने क्रोधके द्वारा परम तेजसे देवीप्रभान भैरव नामक एक पुरुषको उत्पन्न करके प्रेमपूर्वक [उससे कहने लगे—] ॥ ४५ ॥

इश्वर बोले—हे कालभैरव! सर्वप्रथम तुम इस पद्मयोनि ब्रह्माको दण्ड दो, तुम साक्षात् कालके सदृश शोभित हो रहे हो, अतः तुम कालराज [नामसे विख्यात] होओगे ॥ ४६ ॥

तुम संसारका पालन करनेमें सर्वथा समर्थ हो, उसका भरण-पोषण करनेसे तुम भैरव कहे गये हो, तुमसे काल भी डरेगा। अतः तुम कालभैरव कहे जाओगे ॥ ४७ ॥

तुम रुष्ट होनेपर दुष्टात्माओंका मर्दन करोगे, इसलिये सर्वत्र आमर्दक नामसे विख्यात होओगे ॥ ४८ ॥

तुम भक्तोंके पापोंका तत्काल भक्षण करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम पापभक्षण भी होगा ॥ ४९ ॥

हे कालराज! सभी पुरियोंसे श्रेष्ठ जो मेरी मुक्तिपुरी काशी है, तुम सदा उसके अधिपति बनकर रहोगे। वहाँ जो पापी मनुष्य होंगे, उनके शासक तुम ही रहोगे, उनके अच्छे-बुरे कर्मको चित्रगुप्त लिखेंगे ॥ ५०-५१ ॥

नन्दीश्वर बोले— कालभैरवने इस प्रकारके वरोंको प्राप्तकर अपनी बाँधी औंगुलियोंके नखोंके अग्रभागसे ब्रह्माका पाँचवाँ सिर तत्क्षण ही काट डाला ॥ ५२ ॥

जो आंग अपराध करता है, उसीको दण्ड देना चाहिये, अतः जिस सिरने निन्दा की थी, उस पाँचवें सिरको उन्होंने काट दिया ॥ ५३ ॥

उसके बाद ब्रह्माके सिरको कटा हुआ देखकर विष्णु बहुत भयभीत हो गये और शतरुद्रिय मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥

हे मुने! तब भयभीत हुए ब्रह्माजी भी शतरुद्रिय मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार वे दोनों ही उसी क्षण अहंकारहित हो गये ॥ ५५ ॥

उन दोनोंको यह ज्ञान हो गया कि साक्षात् शिव ही सच्चिदानन्द लक्षणसे युक्त परमात्मा, गुणातीत तथा परब्रह्म हैं ॥ ५६ ॥

हे सनक्तुमार! हे सर्वज्ञ! मेरा यह उत्तम शुभ चत्वर सुनिये, जबतक अहंकार रहता है, तबतक विशेषरूपसे ज्ञान लुप्त रहता है ॥ ५७ ॥

अहंकारका त्याग करनेपर ही मनुष्य परमेश्वरको जान पाता है। विश्वेश्वर शिव अहंकारी [के अहंकार]—का नाश करते हैं, क्योंकि वे गर्वापहरक कहे गये हैं ॥ ५८ ॥

इसके बाद ब्रह्मा तथा विष्णुको अहंकाररहित जानकर परमेश्वर महादेव प्रसन्न हो गये और उन प्रभुने उन दोनोंको भयरहित कर दिया ॥ ५९ ॥

प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महादेव उन्हें आश्वस्त करके अपने दूसरे स्वरूप उन कपर्दी भैरवसे कहने लगे— ॥ ६० ॥

महादेव बोले—[हे भैरव!] ये ब्रह्मा एवं विष्णु तुम्हरे मान्य हैं। हे नीललोहित! तुम ब्रह्माके [कटे हुए] इस कपालको धारण करो और ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिये संसारके समक्ष व्रत प्रदर्शित करो, कपालद्रवत धारणकर तुम निरन्तर भिक्षाचरण करो ॥ ६१-६२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुप्रसंहितामें भैरवावतारवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

इस प्रकार [कालभैरवसे] कहकर उनके देखते ही ब्रह्महत्या नामक कन्याको उत्पन्नकर तेजोरूप शिवजीने उससे कहा— ॥ ६३ ॥

तुम उग्र रूप धारण करनेवाले इन भयंकर कालभैरवके पीछे-पीछे तबतक चलो, जबतक ये वाराणसीपुरीतक नहीं जाते। इनके वाराणसीमें जाते ही तुम मुक्त हो जाओगी। वाराणसीपुरीको छोड़कर सर्वत्र तुम्हारा प्रवेश होगा ॥ ६४-६५ ॥

नन्दीश्वर बोले—वे परम अद्भुत प्रभु भगवान् शंकर भी उस ब्रह्महत्याको [उस यात्राके लिये] नियुक्त करके अन्तर्हित हो गये ॥ ६६ ॥

नौवाँ अध्याय

भैरवावतारलीलावर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब आप महादोषोंको दूर करनेवाली और भक्तिको बढ़ानेवाली दूसरी भैरवी कथाको प्रेमपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥

काशीका सानिध्य प्राप्तकर वे कालभैरव कालके भी भक्षक महाकाल हुए। देवदेवके आदेशसे कापालिक व्रत धारण किये हुए वे विश्वात्मा भैरव हाथमें [ब्रह्माका] कपाल लेकर तीनों लोकोंमें घूमने लगे, किंतु उस दारुण ब्रह्महत्याने कहीं भी उन प्रभुका पीछा करना न छोड़ा ॥ २-३ ॥

प्रत्येक तीर्थमें घूमते हुए भी वे ब्रह्महत्यासे नहीं मुक्त हुए, इसमें भी सभीको शिवकी अद्भुत महिमा ही जाननी चाहिये ॥ ४ ॥

एक बार प्रमथगणोंसे सेवित होते हुए भी कापालिक वेषवाले शिवजी [कालभैरव] विहार करते हुए अपनी इच्छासे विष्णुके निवासस्थानपर पहुँचे ॥ ५ ॥

उस समय महादेवके अंशसे उत्पन्न हुए, सर्पका कुण्डल धारण किये, त्रिनेत्र, महाकाल तथा पूर्णकार उन भैरवको आता हुआ देखकर गरुडध्वज विष्णुने तथा देवों, मुनियों एवं देवस्त्रियोंने भी दण्डवत् प्रणाम किया। इसके बाद लक्ष्मीपति विष्णुने उन्हें तत्त्वतः जानते हुए

पुनः प्रणामकर सिरपर अंजलि रखकर नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की ॥ ६-८ ॥

हे महामुने! तदनन्तर आनन्दसे पूर्ण हुए विष्णु प्रसन्नचित्त होकर क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई कमलनिवासिनी लक्ष्मीसे प्रेमपूर्वक कहने लगे— ॥ ९ ॥

विष्णुजी बोले—हे प्रिये! हे कमलनयने! हे सुभगे! हे अनधे! हे देवि! हे सुश्रोणि! देखो, तुम धन्य हो और मैं भी धन्य हूँ, जो कि हम दोनों जागत्पति [शिव]-का साक्षात् दर्शन कर रहे हैं ॥ १० ॥

ये ही धाता, विधाता तथा लोकके प्रभु, ईश्वर, अनादि, सबको शरण देनेवाले, शान्त तथा छब्बीस तत्त्वोंके रूपमें भी ये ही अभिव्यक्त हो रहे हैं ॥ ११ ॥

ये सर्वज्ञ, सभी योगियोंके स्वामी, सभी प्राणियोंके एकमात्र नायक, सर्वभूतान्तरात्मा एवं सबको सदा सब कुछ देनेवाले हैं ॥ १२ ॥

हे पद्म! निद्राको त्यागकर तथा श्वासको रोककर शान्त स्वभाववाले जन जिन्हें ध्यान लगाकर बुद्धिके द्वारा हृदयमें देखते हैं, वे ये ही हैं, आप उनको देखें ॥ १३ ॥

वेदतत्त्वज्ञ एवं स्थिर मनवाले योगीजन जिन्हें

जानते हैं, वे ही सर्वव्यापक शिव अरूप होते हुए भी स्वरूप धारणकर यहाँ आ रहे हैं ॥ १४ ॥

अहो, इन परमेष्ठीकी चेष्टा भी अद्भुत है कि जिनके चरित्रका वर्णन करनेवाला मनुष्य शरीरधारी होकर भी विदेह हो जाता है एवं जिनका दर्शन करनेसे मनुष्योंको पुनः पृथ्वीपर जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता, वे ही त्र्यम्बक शशिभूषण भगवान् शिव आ रहे हैं ॥ १५-१६ ॥

हे लक्ष्मि! श्वेत कमलदलके समान बड़े-बड़े ये मेरे नेत्र आज धन्य हुए, जो इनके द्वारा महेश्वर महादेवका दर्शन किया जा रहा है ॥ १७ ॥

देवताओंके उस पदको धिक्कार है, जिन्होंने शंकरका दर्शन नहीं किया, जो समस्त दुःखोंका नाश करनेवाले तथा मोक्षदायक हैं ॥ १८ ॥

यदि देवदेवेश शिवका दर्शनकर हम सभीने मुक्ति न प्राप्त की, तो देवलोकमें देवता होनेसे बढ़कर और कुछ भी अशुभ बात नहीं है ॥ १९ ॥

नन्दीश्वर बोले—[लक्ष्मीसे] इस प्रकार कहकर रोमांचित शरीरवाले विष्णु वृषभध्वज महादेवको प्रणाम करके यह कहने लगे— ॥ २० ॥

विष्णुजी बोले—हे विभो! हे सर्वपापहर! हे अव्यय! हे सर्वज्ञ तथा संसारके धाता देवदेव! आप यह क्या कर रहे हैं? ॥ २१ ॥

हे देवेश! हे त्रिलोचन! हे महामते! यह आपकी क्रीड़ा किसलिये हो रही है? हे विरूपाक्ष! हे स्मरादेव! आपको इस प्रकारकी चेष्टाका क्या कारण है? ॥ २२ ॥

हे भगवन्! हे शम्भो! हे शक्तिपते! आप किस कारणसे भिक्षाटन कर रहे हैं? हे जगन्नाथ! हे त्रैलोक्यका राज्य देनेवाले! मुझे यह सन्देह हो रहा है ॥ २३ ॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णु ने जब इस प्रकार शिवरूप भैरवसे कहा, तब अद्भुत लीला करनेवाले उन प्रभुने विष्णुजीसे हँसते हुए कहा— ॥ २४ ॥

भैरव बोले—मैंने अपने औंगुलीके नखाग्रसे ब्रह्मदेवका सिर काट लिया है, उसी पापको दूर करनेके निमित्त इस शुभ व्रतका अनुष्ठान कर रहा हूँ ॥ २५ ॥

नन्दीश्वर बोले—महेश्वर भैरवके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मीपति कुछ स्मरण करके सिर छुकाकर पुनः इस प्रकार कहने लगे— ॥ २६ ॥

विष्णुजी बोले—सभी विष्णुओंका नाश करनेवाले हे महादेव! आपकी जैसी इच्छा हो, वैसी क्रीड़ा कीजिये, परंतु मुझे अपनी मायासे मोहित न करें ॥ २७ ॥

हे विभो! आपकी आज्ञाशक्तिसे मेरे नाभिकमलके कोशसे कल्प-कल्पमें करोड़ों ब्रह्मा पहले उत्पन्न हो चुके हैं ॥ २८ ॥

हे देव! आप पुण्यहीन मनुष्योंके लिये दुस्तर इस मायाका त्याग करें। हे महादेव! आपकी मायासे ब्रह्मा आदि भी मोहित हो जाते हैं ॥ २९ ॥

सत्पुरुषोंको गति देनेवाले हे पार्वतीपते! हे शम्भो! हे सर्वेश्वर! मैं आपकी कृपासे ही आपकी समस्त चेष्टाएँ ठीक-ठीक जानता हूँ ॥ ३० ॥

हे हर! संहारकालके उपस्थित होनेपर जब आप समस्त देवताओं, मुनियों एवं वर्णश्रीमी जनोंको उपसंहत करेंगे, तब भी हे महादेव! आपको ब्रह्मवध आदिका पाप नहीं लगेगा। हे शिव! आप पराधीन नहीं हैं। अतः आप स्वतन्त्र होकर क्रीड़ा करते हैं ॥ ३१-३२ ॥

आपके कण्ठमें पूर्वमें उत्पन्न हो चुके ब्रह्माओंकी अस्थियोंकी माला भासित हो रही है, तब भी हे निष्पाप शिव! आपके पीछे ब्रह्महत्या लगी है ॥ ३३ ॥

हे ईश! जो मनुष्य महान् पाप करके भी आप जगदाधारका स्मरण करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार सूर्यके समीप अन्धकार टिक नहीं सकता, उसी प्रकार जो आपका भक्त है, उसका पाप विनष्ट हो जाता है ॥ ३५ ॥

जो पुण्यात्मा आपके दोनों चरणकमलोंका स्मरण करता है, उसका ब्रह्महत्याजनित पाप भी नष्ट हो जाता है। हे जगत्पते! जिस मनुष्यकी वाणी आपके नाममें अनुरक्त है, वर्तसमूहके समान भारी-से-भारी पाप भी उसे बाधित नहीं कर सकता है ॥ ३६-३७ ॥

हे परमात्मन्! हे परमधाम! स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले हे ईश्वर! यह भक्तोंकी अधीनता भी आपका

कुतूहलमात्र है ॥ ३८ ॥

हे देवेश! आज मैं धन्य हूँ; क्योंकि योगीजन भी जिन्हें नहीं देख पाते हैं, उन जगान्मूर्ति अव्यय परमेश्वरका मैं दर्शन कर रहा हूँ ॥ ३९ ॥

आज मुझे परम लाभ मिला और मेरा परम कल्याण हो गया। उन आपके दर्शनसे मैं अमृतपानकर तृप्त हुएके समान तृप्त हो गया। मुझे स्वर्ग और मोक्ष तृणके समान ज्ञात हो रहे हैं ॥ ४० ॥

गोविन्द विष्णुके इस प्रकार कहनेके पश्चात् उन महालक्ष्मीने अत्यन्त निर्यत भूतरथवती नामकी भिक्षा उनके पात्रमें दे दी। तब लीलासे भैरवरूपधारी वे महादेव भी परम प्रसन्न हो भिक्षाटनके लिये अन्यत्र चलनेको उद्यत हो गये ॥ ४१-४२ ॥

उस समय विष्णुने उनके पीछे-पीछे जानेवाली ब्रह्महत्याको बुलाकर उससे प्रार्थना की कि तुम इन त्रिशूलधारी भैरवको छोड़ दो ॥ ४३ ॥

ब्रह्महत्या बोली—जिनका दर्शन करनेसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती, ऐसे वृषभध्वजकी सेवाकर इस बहानेसे मैं भी अपेक्षो पवित्र कर लूँगी ॥ ४४ ॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णुके कहनेसे भी जब ब्रह्महत्याने भैरवका पीछा नहीं छोड़, तब भैरव शम्भुने मुसकाराकर हरिसे यह वचन कहा— ॥ ४५ ॥

भैरव बोले—हे बहुमान! आपके वचनामृतका पानकर मैं तृप्त हो गया। हे लक्ष्मीके पति! सज्जनोंके स्वभावके अनुरूप ही आप वचन बोल रहे हैं ॥ ४६ ॥

हे गोविन्द! तुम वर माँगो। हे निष्पाय! मैं तुम्हें वर देनेवाला हूँ। हे विकाररहित हरे! तुम मेरे भक्तोंमें अग्रगण्य रहोगे ॥ ४७ ॥

भिक्षाटनरूपी ज्वरसे पीड़ित भिष्म मानसुधाका पानकर जैसी तृप्ति प्राप्त करते हैं, वैसी तृप्ति अतिसंस्कृत भिक्षाओंसे भी नहीं प्राप्त करते हैं ॥ ४८ ॥

नन्दीश्वर बोले—परमात्मा शम्भुके अवतार भैरवके इन वचनोंको सुनकर विष्णु परम प्रसन्न होकर महेश्वरसे बोले— ॥ ४९ ॥

विष्णु बोले—हे देवदेव! मेरे लिये यही वह प्रशंसनीय है, जिससे कि मैं [आज] मन और वाणीसे

अगोचर देवताओंके स्वामी आपका दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ ॥ ५० ॥

आपकी जो अमृतमयी पूर्ण दृष्टि [मुद्दापर] पढ़ रही है, इसीसे मुझे महान् हर्ष हो रहा है। हे हर! सज्जनोंके लिये आपका दर्शन बिना यत्के प्राप्त निधिके समान है ॥ ५१ ॥

हे देव! आपके चरणयुगलसे मेरा वियोग न हो, हे शम्भो! यही मेरे लिये वरदान है। मैं किसी अन्य वरका वरण नहीं करता हूँ ॥ ५२ ॥

श्रीभैरव बोले—महामते तात! जैसा आपने कहा है, वैसा ही हो। आप सभी देवताओंको वर देनेवाले होंगे ॥ ५३ ॥

नन्दीश्वर बोले—[ब्रह्माण्डके] भुवनोंसहित केन्द्रभूत सुमेरुर्वतपर विचरण करते हुए दैत्यशत्रु विष्णुको इस प्रकार अनुग्रहीतकर भैरव विमुक्तनगरी वाराणसीपुरीमें जा पहुँचे ॥ ५४ ॥

भृंकर आकृतिवाले भैरवके उस क्षेत्रमें प्रवेश करनेमात्रसे ही ब्रह्महत्या उसी समय हाहाकार करके पातालमें चली गयी ॥ ५५ ॥

उसी समय भैरवके हस्तकमलसे ब्रह्माका कपाल पृथिवीपर गिर पड़ा। तबसे वह तीर्थ कपालमोचन नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥ ५६ ॥

अपने हाथसे ब्रह्माके कपालको गिरता हुआ देखकर रुद्र सबके सामने परमानन्दसे नाचने लगे ॥ ५७ ॥

अत्यन्त दुस्सह जो ब्रह्माजीका कपाल [अन्य क्षेत्रोंमें] भ्रामण करते हुए परमेश्वरके हाथसे कहीं नहीं छूट पाया था, वह काशीमें क्षणमात्रमें छूटकर गिर पड़ा। शूल धारण करनेवाले शिवकी जो ब्रह्महत्या कहीं भी नहीं दूर हो सकी, वह काशीमें आते ही क्षणभरमें नष्ट हो गयी, इसलिये काशीका ही सेवन करना चाहिये ॥ ५८-५९ ॥

जो मनुष्य काशीमें [स्थित] कपालमोचन नामक उत्तम तीर्थका स्मरण करता है, उसका यहाँ अथवा अन्यत्रका किया हुआ पाप भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ६० ॥

इस श्रेष्ठ तीर्थमें आकर विधानके अनुसार स्नानकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है ॥ ६१ ॥

कपालमोचन नामक तीर्थको समादृतकर भैरव
भक्तोके पापसमूहका भक्षण करते हुए वर्होपर विराजमान
हो गये ॥ ६२ ॥

सुन्दर लीला करनेवाले, सज्जनोंके प्रिय, भैरवात्मा
परमेश्वर शिव मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी
तिथिको आविर्भूत हुए ॥ ६३ ॥

जो मनुष्य मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी-
तिथिको कालभैरवकी सन्निधिमें उपवास करके जागरण
करता है, वह महान् पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य अन्यत्र भी भक्तिपूर्वक जागरणके सहित
इस ऋतको करेगा, वह महापापोंसे मुक्त होकर सद्गमातिको
प्राप्त कर लेगा ॥ ६५ ॥

प्राणीके द्वारा लाखों जन्मोंमें किया गया जो पाप
है, वह सभी कालभैरवके दर्शन करनेसे लुप्त हो जाता
है। जो कालभैरवके भक्तोंका अपराध करता है, वह मूर्ख
दुःखित होकर पुनः-पुनः दुर्गतिको प्राप्त करता रहता

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भैरवावतारलीलावर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

नृसिंहचित्रवर्णन

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] दक्ष प्रजापतिके
यज्ञको विघ्वस करनेवाले वीरभद्र नामक [गणाध्यक्ष]-
को परमात्मा प्रभु शिवजीका अवतार जानना चाहिये,
उनका सम्पूर्ण चरित सतीके चरित्रमें कहा गया है।
आपने भी उसे अनेक प्रकारसे सुन लिया है, इसीलिये
यहाँ विस्तारसे नहीं कहा गया ॥ १-२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसके पश्चात् आपके स्नेहवश अब
प्रभु शंकरके शार्दूल नामक अवतारको कह रहा हूँ,
उसको सुनिये ॥ ३ ॥

भगवान् सदाशिवने देवताओंके कल्याणार्थ जलती
हुई अग्निके समान कान्तियुक्त अत्यन्त अद्भुत शरभ-
रूपको धारण किया था ॥ ४ ॥

हे मुनिसत्तमो! श्रेष्ठ भक्तोंके हितसाधक अपरिमित
शिवावतार हुए हैं, उनकी संख्याकी गणना नहीं की जा
सकती है ॥ ५ ॥

है ॥ ६६-६७ ॥

जो काशीमें रहकर विश्वेश्वरमें तो भक्ति करते हैं,
परंतु कालभैरवकी भक्ति नहीं करते, वे विशेषरूपसे
महादुःखको प्राप्त करते हैं ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य वाराणसीमें रहकर [भी] कालभैरवका
भजन नहीं करता है, उसके पाप शुक्लपक्षके चन्द्रमाके
समान बढ़ते हैं ॥ ६९ ॥

जो मंगलवार, चतुर्दशी तथा अष्टमीके दिन काशीमें
कालगणजका भजन नहीं करता है, उसका पुण्य कृष्णपक्षके
चन्द्रमाके समान क्षीण हो जाता है ॥ ७० ॥

ब्रह्महत्याको दूर करनेवाले, भैरवोत्पत्तिसंजक इस
पवित्र आख्यानको सुनकर प्राणी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो
जाता है ॥ ७१ ॥

कारागरमें पड़ा हुआ अथवा भयंकर कष्टमें फँसा
हुआ प्राणी भी भैरवकी उत्पत्ति [के आख्यान]-को
सुनकर संकटसे छुट जाता है ॥ ७२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भैरवावतारलीलावर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

आकाशके तारोंकी, पृथ्वीके धूलिकणोंकी तथा
वर्षाकी बूँदोंकी गणना अनेक कल्पोंमें अनेक जन्म लेकर
कोई बुद्धिमान् पुरुष भले ही कर ले, परंतु शिवजीके
अवतारोंकी गणना कदापि नहीं की जा सकती है, मेरा
यह कथन सत्य समझें। फिर भी जैसा मैंने सुना है,
अपनी बुद्धिके अनुसार दिव्य तथा परम ऐश्वर्यसूचक
उस शरभ-चरित्रको कह रहा हूँ ॥ ६-८ ॥

हे मुने! जब आपलोगोंद्वारा जय-विजय [नामक
द्वारपालों]-को शाप दिया गया, तब वे दोनों कशयपके
द्वारा दितिके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

प्रथम हिरण्यकशिषु तथा छोटा भाई महावली
हिरण्यकश था, वे दोनों पहले भगवान् विष्णुके देवर्य-
पार्षद थे, जो [आपलोगोंसे शापित होकर] दितिके
पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए ॥ १० ॥

पूर्वकालमें पृथ्वीका उद्धार करनेहेतु ब्रह्माजीद्वारा

प्रार्थना किये जानेपर भगवान् विष्णुने वाराहरूप धारणकर हिरण्यकश्चका वध किया ॥ ११ ॥

हे मुने ! अपने प्राणोंके समान [प्रिय] उस बीर भाईको मारा गया सुनकर हिरण्यकशिपुने विष्णुपर अत्यधिक ब्रोध किया ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् हिरण्यकशिपुने दस हजार वर्षतक तप करके सन्तुष्ट हुए ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त किया कि आपकी सुष्ठिमें कोई भी मुझे न मार सके ॥ १३ ॥

वह हिरण्यकशिपु शोणितपुर नामक पुरमें जाकर चारों तरफसे देवताओंको बुलाकर त्रिलोकीको अपने वशमें करके निष्कण्टक राज्य करने लगा ॥ १४ ॥

हे मुने ! सभी धर्मोंको नष्ट करनेवाला तथा ब्राह्मणोंको पीड़ित करनेवाला पापी हिरण्यकशिपु देवताओं तथा ऋषियोंको सताने लगा ॥ १५ ॥

हे मुने ! तदनन्तर विष्णुवैरो दैत्यराजने अपने हरिभक्त पुत्र प्रह्लादसे भी जब विशेषरूपसे द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया, तब सभामण्डपके खम्भेसे सन्ध्याके समय अत्यन्त क्रोधित होकर भगवान् विष्णु नृसिंहशरीरसे प्रकट हुए ॥ १६-१७ ॥

हे मुनिशार्दूल ! भगवान् नृसिंहका विकराल तथा भयदायक शरीर सब प्रकारसे महादैत्योंको सन्त्रस्त करता हुआ अग्निके समान जाज्वल्यमान हो डाला ॥ १८ ॥

नृसिंहने उसी क्षण सभी दैत्योंका संहार कर डाला और तब [दैत्योंके संहारको देखकर] हिरण्यकशिपुने उनसे अत्यन्त भयानक युद्ध किया ॥ १९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! मुहूर्तभरतक उन दोनोंमें विकराल, सबको भयधीत करनेवाला तथा लोमहर्षक युद्ध होता रहा ॥ २० ॥

सायंकाल होनेपर लक्ष्मीपति देवेश नृसिंहने आकाशमें स्थित देवताओंके देखते-देखते हिरण्यकशिपुको देहलीपर खींच लिया और अपनी गोदमें उसे लेकर नखोंसे शीघ्र ही स्वर्गनिवासियोंके समक्ष उसका उदर विदीर्णकर मार डाला ॥ २१-२२ ॥

इस प्रकार नृसिंहरूपधारी विष्णुके द्वाग हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर जगत्में चारों तरफ शान्ति स्थापित हो गयी, परंतु इससे देवताओंको विशेष आनन्द प्राप्त नहीं

हुआ ॥ २३ ॥

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, प्रह्लाद आश्चर्यचकित हो गये, विष्णुके उस अद्भुत रूपको देखकर लक्ष्मीजी भी अत्यन्त विस्मित हो गयी ॥ २४ ॥

यद्यपि हिरण्यकशिपु मार डाला गया, किंतु भगवान् नृसिंहके क्रोधकी ज्वाला शान्त नहीं हुई, इसी कारण देवताओंको उत्तम सुख प्राप्त नहीं हो रहा था ॥ २५ ॥

उस ज्वालासे सम्पूर्ण संसार व्याकुल हो उठा, देवता भी दुखी हुए । 'अब क्या होगा'—ऐसा कहते हुए वे भयके कारण दूर चले गये । नृसिंहके क्रोधसे उत्पन्न ज्वालासे व्याकुल हुए ब्रह्मा आदिने उस ज्वालाकी शान्तिहेतु प्रह्लादको श्रीहरिके पास भेजा । सभीने मिलकर जब प्रार्थना की, तब प्रह्लाद वहाँ गये ॥ २६-२८ ॥

कृपानिधि नृसिंहने उन्हें [अपने] हृदयसे लगा लिया, जिससे उनका हृदय तो शीतल हो गया, परंतु क्रोधिकी ज्वाला शान्त न हुई ॥ २९ ॥

इसपर भी जब नृसिंहके क्रोधिकी ज्वाला शान्त नहीं हुई, तब दुःखको प्राप्त हुए देवता [भगवान्] शंकरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥

वहाँ जाकर ब्रह्मा आदि सभी देवता तथा मुनिगण संसारके सुखके लिये शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ३१ ॥

देवता बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागतवस्तु ! शरणमें आये हुए हम सभी देवताओं तथा लोकोंकी रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

हे सदाशिव ! आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है । पूर्वकालमें जब भी हमलोगोंपर दुःख पड़ा, तब आपने ही हमलोगोंकी रक्षा की है । जब समुद्रमन्थन किया गया और देवताओंके द्वारा रत्नोंकी आपसमें बांट लिया गया, हे शम्भो ! तब आपने विषको ही ग्रहण कर लिया । हे नाथ ! उस समय आपने हमारी रक्षा की और 'नीलकण्ठ' इस नामसे प्रसिद्ध हुए । यदि आप विषयान न करते, तो सभी लोग भस्म हो जाते ॥ ३३-३५ ॥

हे प्रभो ! यह प्रसिद्ध ही है कि जब जिस किसीको दुःख प्राप्त होता है तब आपके नाममात्रके स्मरणसे ही उसका समस्त दुःख दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥

हे सदाशिव ! इस समय नृसिंहके क्रोधकी ज्वालासे पीड़ित हमलोगोंकी रक्षा कीजिये । हे देव ! आप उसे शान्त करनेमें समर्थ हैं—यह पूर्णरूपसे निश्चित है ॥ ३७ ॥

नन्दीश्वर बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भक्तवत्सल भगवान् शिव उन्हें परम अभय प्रदान करके प्रसन्नचित होकर कहने लगे ॥ ३८ ॥

शंकर बोले—हे ब्रह्मादि देवताओ ! आपलोग निर्द छोकर अपने—अपने स्थानपर जायें, आपलोगोंका

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत नृसिंहचरितवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

जो दुःख है, उसे मैं सब प्रकारसे दूर करूँगा—यह मेरा व्रत है ॥ ३९ ॥

जो भी मेरी शरणमें आता है, उसका दुःख नष्ट हो जाता है; क्योंकि शरणागत मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ४० ॥

नन्दीश्वर बोले—तब यह सुनकर वे देवता परम आनन्दित हुए और वे जैसे आये थे, प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका स्मरण करते हुए वैसे ही चले गये ॥ ४१ ॥

रथारहवाँ अध्याय

भगवान् नृसिंह और वीरभद्रका संवाद

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] देवताओंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब कृपानिधि परमेश्वरने नृसिंह नामक महातेजको संहत करनेका निश्चय किया ॥ १ ॥

इसके बाद रुद्रने महाबलवान् प्रलयकारी एवं अपने भैरवरूप वीरभद्रका स्मरण किया और उनसे कहा ॥ २ ॥

तब तत्काल ही अद्भुत रूप करते हुए श्रेष्ठ गणोंसे परिवेष्टित गणग्राणी वीरभद्र वहाँ आ पहुँचे । वीरभद्रके वे गण इधर-उधर उछल रहे थे, उनमेंसे करोड़ों गण अति उग्र नृसिंहरूप धारण किये हुए थे । कुछ आनन्दित हो नाचते हुए वीरभद्रकी परिक्रमा कर रहे थे । कुछ उन्मत्त थे, और कुछ ब्रह्मादि देवताओंसे कन्दुकके समान क्रीड़ा कर रहे थे । कुछ ऐसे भी थे, जो सर्वथा अज्ञात थे । इस प्रकारके कल्पान्तकी अग्निके समान प्रज्वलित त्रिनेत्रसे युक्त, मस्तकपर जटाजूट एवं बालचन्द्रमा तथा अल्प शस्त्रोंको धारण किये हुए जाज्वल्यमान वीरभद्र अपने गणोंसे बन्दित हो रहे थे ॥ ३—५ ॥

उनके आगेके तीक्ष्ण दन्ताग्र बालचन्द्राकार तथा दोनों भाँहें इन्द्रधनुषके खण्डके समान प्रतीत हो रही थीं । वीरभद्रके प्रचण्डतम हुंकारसे दिशाएँ बधिर हो रही थीं । उनका रूप काले बाल और काजलके समान कृष्णवर्ण और भयावह था, उनके मुखपर दाढ़ी एवं मँड़ें थीं । अद्भुत स्वरूपवाले वे अपनी अखण्ड भुजाओंसे वाद्यखण्ड

(वाद्यदण्ड)-की भाँति बार-बार त्रिशूल धुमा रहे थे । इस प्रकार अपनी बीरोचित शक्तिसहित भगवान् वीरभद्र शिवजीके समीप आकर स्वयं बोले—हे देव ! यहाँ आपद्वारा मैं किस उद्देश्यसे स्मरण किया गया हूँ ? हे जगत्के स्वामिन् ! शीघ्र मेरे ऊपर प्रसन्न होकर आज्ञा प्रदान कीजिये ॥ ६—१० ॥

नन्दीश्वर बोले—वीरभद्रके आदरपूर्वक कहे गये इस वचनको सुनकर दुष्टोंको दण्ड देनेवाले शिवजी उनकी ओर देखकर प्रतीतपूर्वक कहने लगे ॥ ११ ॥

शंकर बोले—[हे वीरभद्र!] असमयमें देवताओंको घोर भय उत्पन्न हो गया है । नृसिंहकी असहा कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी है, तुम इस कोपाग्निको शान्त करो ॥ १२ ॥

पहले सान्त्वना देते हुए उन्हें समझाओ कि आप क्यों नहीं शान्त होते हैं । तब भी यदि वे शान्त न हों तो तुम मेरे परम भैरवरूपको दिखाओ ॥ १३ ॥

हे वीरभद्र ! तुम सूक्ष्म तेजसे सूक्ष्मका और स्थूल तेजसे स्थूलका संहरण करके मेरी आज्ञासे अग्निको वशमें करो ॥ १४ ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी इस आज्ञाको स्वीकार गणाध्यक्ष वीरभद्रने परमसान्त रूप धारण कर लिया और जहाँ नृसिंह थे, वहाँ वे अतिशीघ्र जा पहुँचे ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् शिवरूप वीरभद्रने नृसिंहरूपी विष्णुको समझाया और उन महेश्वरने इस प्रकार बचन कहा, जैसे पिता अपने औरस पुत्रसे बात करता है ॥ १६ ॥

वीरभद्र बोले—हे भगवन्! हे माधव! आप संसारके कल्याणके निमित्त अवतीर्ण हुए हैं। परमेष्ठीने आप परमेश्वरको पालनके लिये नियुक्त किया है ॥ १७ ॥

पूर्व समयमें जब प्रलय हुआ था, उस समय भगवन्! आपने मत्स्यका रूप धारणकर प्राणियों [से युक्त नौका]—को अपनी पूँछमें बाँधकर [सागरमें] भ्रमण करते हुए उनकी रक्षा की थी। इसी प्रकार आपने कूर्मस्वरूपसे [मन्दराचलको] धारण किया एवं वराहावतारद्वारा पृथ्वीका उद्धार किया था और [इस समय भी आपने] इस नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिषुका धध किया है। इसी प्रकार आपने बामनावतार ग्रहणकर [दैत्यराज] बलिको तीन पैरमें तीनों लोकों और उसके शरीरको नापकर बाँध लिया। आप ही सभी प्राणियोंके उत्पत्तिस्थान और अविनाशी प्रभु हैं ॥ १८—२० ॥

जब—जब इस संसारपर कोई विपत्ति आती है, तब—तब आप अवतार ग्रहणकर उसे दुःखहित करते हैं। हे हरे! आपसे बढ़कर अथवा आपके समान भी कोई अन्य शिवपरायण नहीं है। आपने ही वेदों तथा धर्मोंको शुभमार्गमें प्रतिष्ठित किया है ॥ २१—२२ ॥

जिसके लिये आपका यह अवतार हुआ है, वह दानव हिरण्यकशिषु मार डाला गया और प्रह्लादकी भी रक्षा हो गयी ॥ २३ ॥

अतः हे भगवन्! हे विश्वात्मन्! [आपका प्रयोजन सिद्ध हो चुका है,] अब आप अपने इस घोर नृसिंहरूपको मेरे समक्ष ही उपसंहित करिजिये ॥ २४ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार वीरभद्रद्वारा शान्त वाणीमें निवेदन किये जानेपर महामदसे भर हुए उन नृसिंहने पहलेसे भी अधिक महाभयानक क्रोध किया और हे मुने! अपने दाँतोंसे भयभीत करते हुए महावीर वीरभद्रसे महाघोर एवं कठोर बचन कहा— ॥ २५—२६ ॥

नृसिंह बोले—[हे वीरभद्र!] तुम जहाँसे आये हो, वहाँ चले जाओ और मुझसे लोकहितकी बात न कहो। मैं अभी इसी समय इस चराचर जगत्को विनष्ट

करूँगा। स्वयं मुझ संहारकर्ताका संहार अपनेसे अथवा दूसरेसे नहीं हो सकता है। सर्वत्र मेरा ही शासन है, मेरे ऊपर शासन करनेवाला कोई भी नहीं है ॥ २७—२८ ॥

मेरी कृपासे सारा संसार निर्भय रहता है, मैं ही सभी शक्तियोंका प्रवर्तक एवं निर्वर्तक हूँ ॥ २९ ॥

हे गणध्यक्ष! [इस जगत्में] जो भी विभूतिमान् कान्तियुक्त तथा शक्तिसम्पन्न वस्तु है, उस-उसको मेरे ही तेजसे विजृम्भित जानो ॥ ३० ॥

समस्त देवगण मुझे ही परमार्थको जानेवाला तथा परमब्रह्म कहते हैं और ब्रह्म एवं इन्द्रादि समस्त देवगण मेरे ही अंश तथा [मुझसे ही] शक्तिसम्पन्न हैं ॥ ३१ ॥

जगत्कर्ता ब्रह्म भी पूर्व समयमें मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हुए थे। मैं ही सबसे अधिक, स्वतन्त्र, कर्ता, हर्ता तथा अखिलेश्वर हूँ ॥ ३२ ॥

यह [नृसिंहरूपकी ज्वाला] मेरा सर्वाधिक तेज है, [मेरे विषयमें] और क्या सुनना चाहते हो? अतः मेरी शरणमें आकर निर्भय होकर तुम चले जाओ ॥ ३३ ॥

हे गणेश्वर! दिखायी पड़नेवाले इस संसारको मेरा ही परम स्वरूप जानो। देवता, असुर एवं मनुष्योंसे युक्त यह सारा विश्व मेरा है ॥ ३४ ॥

मैं लोकोंके विनाशका कारण कालस्वरूप हूँ, अतः मैं लोकोंका संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। हे वीरभद्र! मुझे मृत्युका भी मृत्यु समझो, ये देवगण मेरी ही कृपासे जीवन धारण करते हैं ॥ ३५ ॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णुके अहंकारयुक्त वचनको सुनकर महाप्रक्रमी वीरभद्र आठोंको फड़कड़ाते हुए अवज्ञापूर्वक हँसकर कहने लगे— ॥ ३६ ॥

वीरभद्र बोले—क्या आप संसारके ईश्वर तथा संहारकर्ता पिनाकधारी शिवको नहीं जानते हैं? आपमें केवल मिथ्या वाद-विवाद भरा पड़ा है, जो कि आपके विनाशका कारण है ॥ ३७ ॥

आपके अन्यान्य कितने ही अवतार हो चुके हैं, कितने ही बाकी हैं। हे विष्णो! जिस कारणसे आपका यह अवतार हुआ है, कहीं ऐसा न हो कि उसी अवतारसे आप कथामात्र ही शेष न रह जायें ॥ ३८ ॥

आप उस दोषको बताइये, जिससे आप इस

दशाको प्राप्त हुए हैं। संसारके संहारमें प्रवीण होनेके कारण कहीं ऐसा न हो कि उसकी दक्षिणा आपको ही प्राप्त हो जाय ॥ ३९ ॥

आप प्रकृति हैं तथा रुद्र पुरुष हैं, उन्होंने आपमें अपने वीर्यका आधान किया है, इसीलिये आपके नाभिकमलसे पाँच मुखवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं ॥ ४० ॥

उन्होंने इस त्रिलोकीकी सृष्टिके लिये अपने ललाटमें नीललोहित शिवका ध्यान किया और वे उत्र तपमें स्थित हुए। तब उन्होंके ललाटसे सृष्टिहेतु शिवजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीने उन्हें भूषणरूपमें धारण किया। मैं उन्हों देवाधिदेव भैरवरूपधारीकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ। हे हरे! मैं उन्हों देवदेव सर्वेश्वर रुद्रके द्वारा विनय और बल दोनोंसे आपका नियमन करनेके लिये नियुक्त किया गया हूँ ॥ ४१-४२ ॥

आपने तो उनकी शक्तिकी कलामात्रसे ही युक्त होकर एक राक्षसका वध किया, पर अब असावधान होकर अहंकारके प्रभावसे गर्जन कर रहे हैं। सज्जन व्यक्तियोंके साथ किया गया उपकार सुखों बढ़ानेवाला होता है। किंतु वही उपकार यदि दुष्ट व्यक्तियोंके साथ किया जाय तो वह हानिकारक होता है ॥ ४४-४५ ॥

हे [नृसिंह]! यदि आप शिवजीकी अजन्मा नहीं मानते हैं, तो निश्चय ही आप अज्ञानी, महागर्वी एवं दोषोंसे परिपूर्ण हैं ॥ ४६ ॥

हे [नृसिंह]! आप न स्वष्टा हैं, न भर्ता हैं और न संहारकर्ता ही हैं, आप किसी भी प्रकार स्वतन्त्र नहीं हैं, आप परतन्त्र एवं विमूळ चित्तवाले हैं ॥ ४७ ॥

हे हरे! आप महादेवकी शक्तिसे ही कुलालचक्रकी धौति प्रेरित हैं और सदा उन्होंके अधीन रहकर अनेक अवतार धारण करते हैं ॥ ४८ ॥

[हे हरे!] कूर्मवितारके समय [बारम्बार मन्दराचलके द्वारा घर्षित होनेसे] शूलसे हुए कपालको किसीने धारण नहीं किया। तुम्हरेद्वारा त्यागा गया वह कपाल आज भी शिवजीकी हारलता (मुण्डमाला)-में विद्यमान है ॥ ४९ ॥

उनके अंशमात्रसे उत्पन्न हुए तारकासुरने जो आपका वैरी था, वराहावतारमें तुम्हारे दाँतोंको उखाड़कर

जैसी पीड़ा पहुँचायी, पुनः जिन शिवजीकी कृपासे आपके सारे विष दूर हो गये, क्या उन परमात्मा शिवजीको आप भूल गये! ॥ ५० ॥

विष्वकूसनावतारमें शिवजीने अपने शूलाग्रसे आपको दाध कर दिया था। तेजस्वरूप मैंने दक्षके यज्ञमें आपके पुत्र ब्रह्माका पाँचवाँ सिर काट दिया था, जिसे अबतक कोई जोड़ न सका, हे हरे! क्या आप उसे भूल गये हैं? ॥ ५१-५२ ॥

शिवभक्त दधीचिने सिर खुजलानेमात्रसे मरुदण्डोंसहित आपको संग्राममें जीत लिया था, क्या आप उसे भूल गये? । हे चक्रपाण! आप जिस चक्रके सहरे अपना पुरुषार्थ प्रकट करते हैं, वह कहाँसे और किसके द्वारा प्राप्त हुआ है, क्या आप उसको भूल गये हैं? ॥ ५३-५४ ॥

मैंने तो सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर रखा है और तुम क्षीरसागरमें निद्राके परवश होकर सोते रहते हो, ऐसी स्थितिमें तुम सत्त्विक कैसे हो? ॥ ५५ ॥

आपसे लेकर स्तम्भवर्णन्त शिवजीकी शक्ति फैली हुई है, उसीसे आप सर्वथा शक्तिमान् हैं, अन्यथा आप उनके लिंगाकार तेजमात्रके प्रकट होते ही मोहित हो गये थे। उनके तेजके माहात्म्यको देखनेमें कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है। सूक्ष्म बुद्धिवाले लोग ही उन सर्वव्यापीके परम पदको देख पाते हैं ॥ ५६-५७ ॥

आकाश, पृथ्वीका अन्तराल, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, अन्धकारको लील जानेवाले सूर्य एवं चन्द्रमाको उत्पन्नकर वही परमेश्वर उनमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

हे [नृसिंह!] आप ही काल, महाकाल, कालकाल तथा महेश्वर हैं, आप अपनी उग्रकलाके कारण मृत्युके भी मृत्यु हैं ॥ ५९ ॥

वे [शिवजी ही] स्थिर, अक्षर, वीर, विश्वरक्षक, प्रभु, दुःखोंके नाशकर्ता, भीम, मृग, पक्षी, हिरण्यमय हैं और सम्पूर्ण जगत्के शास्त्र हैं; आप, ब्रह्म तथा अन्य कोई नहीं हैं, केवल शम्भु ही सबके शासक हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६०-६१ ॥

इस प्रकार सब कुछ विचारकर आप अपनी ज्वालाको स्वयं ही शान्त करें, हे नृसिंह! हे अवृथ!

आप अपनेको विनष्ट न करें, अन्यथा इसी समय जैसे सुखे वृक्षपर बिजली गिरती है, वैसे ही महाभैरवरूप उन

नन्दी बोले—इतना कहकर शिवकी क्रोधमूर्ति वे विरभद्र निर्भय होकर नृसिंहका अभिप्राय जानकर मौन हो गये ॥ ६४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शरभावतार-वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

भगवान् शिवका शरभावतार-धारण

सनत्कुमार बोले—हे नन्दीश्वर! हे महाप्राज्ञ! इसके बाद [जो वृत्तान्त आपको] ज्ञात हुआ, मेरे ऊपर कृपा करके उस वृत्तान्तको इस समय प्रोतिपूर्वक कहिये ॥ १ ॥

नन्दीश्वर बोले—वीरभद्रके इस प्रकारके कहनेपर नृसिंह क्रोधसे व्याकुल हो गये और गर्जन करते हुए बड़े वेगसे उन्हें पकड़नेके लिये उद्घट हुए ॥ २ ॥

इसी बीच महाबोर, प्रत्यक्ष, भयके कारण अत्यन्त प्रचण्ड, आकाशव्यापी, दुर्धर्ष, शिवतेजसे उत्पन्न तथा कभी भी न दिखायी पड़नेवाला वीरभद्रका अद्भुत रूप प्रकट हुआ, जो न तो हिरण्यमय था, न सौम्य था, वह तेज न सूर्य और न तो अग्निसे उत्पन्न हुआ था, न बिजलीके समान और न चन्द्रमाके समान था, वह शिवतेज अनुपम था। उस समय सभी तेज उन शंकरके तेजमें विलीन हो गये। वह महातेज आकाशमें भी न समा सका। वह तेज प्रकट कालरूप ही था। अत्यन्त विकृताकार वह तेज रुद्रका साधारण चिह्न था ॥ ३-६ ॥

जय-जय आदि मंगल शब्दोंके साथ उन देवताओंके देखते-देखते ही परमेश्वर स्वयं संहाररूपसे प्रकट हुए ॥ ७ ॥

हजार भुजाओंसे समन्वित, जटाधर, ललाटपर बालचन्द्र धारण किये हुए अत्यन्त उग्र शरीरवाले वे दो पंख एवं चौंचसे युक्त पक्षीके रूपमें दिखायी पड़ रहे थे। उनके दाँत अत्यन्त विशाल तथा तीक्ष्णतम थे। वे वप्रतुल्य नखरूपी आयुधसे युक्त थे, वे नीलकण्ठ, महाबाहु और चार चरणोंसे युक्त तथा अग्निके समान तेजस्वी थे। वे युगान्तकालीन अर्थात् प्रलयकारी मेषके समान गम्भीर गर्जना कर रहे थे और महाकोपसे व्याप्त

नेत्रोंद्वारा कृत्याग्निके समान जान पड़ते थे। उनके दाँत और अधरोच्छ क्रोधके कारण फड़क रहे थे। इस प्रकारका उग्र स्वरूप धारण किये, हुंकार करते हुए विकटरुपधारी शंकर [नृसिंहजीके आगे] प्रकट हो गये ॥ ८-११ ॥

उस रूपको देखते ही नृसिंहका समस्त बल पराक्रम उसी प्रकार लुप्त हो गया, जिस प्रकार सूर्यके तेजसे तिरकृत जुगनु विभ्रान्त हो जाता है ॥ १२ ॥

इसके बाद उन्होंने अपने दोनों पक्षोंको बुमाते हुए उनसे नृसिंहके नाभि और चरणोंको विदीर्ण करते हुए अपनी पूँछसे उनके चरणोंको तथा हाथोंसे उनकी भुजाओंको बाँध लिया। इसके बाद भुजाओंसे हृदय विदीर्ण करते हुए शिवजीने नृसिंहको पकड़ लिया। उसके बाद देवताओं और महर्षियोंके साथ आकाशमें चले गये ॥ १३-१४ ॥

जिस प्रकार गरुड निर्भयतापूर्वक साँपको कभी कुपर कपी नीचे पटकता है, कभी उसे लेकर उड़ जाता है, उसी प्रकार उन्होंने नृसिंहको अपने पंखोंसे मार-मारकर आहत कर दिया। फिर वे अनन्त ईश्वर उन नृसिंहको लेकर वृषभपर सवार हो चल पड़े ॥ १५-१६ ॥

तत्पश्चात् सभी ब्रह्मादि देवों तथा मुनीश्वरोंने जाते हुए शिवको आदरपूर्वक प्रणाम किया और वे लोग 'नमः' शब्दसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥

इस प्रकार से जाये जाते हुए पराधीन तथा दीनमुख नृसिंह हाथ जोड़कर मनोहर अक्षरों [-वाले स्तोत्रों]-से उन परमेश्वरकी स्तुति करने लगे। शिवके एक सौ आठ नामोंद्वारा इन शरभेश्वरकी स्तुतिकर नृसिंहने पुनः

उनसे प्रार्थना की—हे परमेश्वर! जब-जब मेरी यह मूढ़ बुद्धि अहंकारसे दूषित हो जाय, तब-तब आप ही उसे दूर करें ॥ १८-२० ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार प्रीतिपूर्वक शिवसे प्रार्थना करते हुए नृसिंहरूपधारी विष्णु जीवनपर्यंत पराधीनता स्वीकारकर बार-बार प्रणाम करके दीन हो गये। वीरभद्रने क्षणमात्रमें ही नृसिंहके मुखसहित समस्त शरीर एवं उनकी शक्तिको अपनेमें समाहित कर लिया ॥ २१-२२ ॥

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर ब्रह्मादि समस्त देवता शरभूरुप धारण किये हुए सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कल्याणकारी भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥

देवता बोले—हे महेश्वर! ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-चन्द्रमा आदि समस्त देवता, महर्षि एवं दैत्य आदि—सबके सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥

आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, चन्द्र तथा सूर्य आदि देवताओं एवं असुरोंका सृजन, पालन एवं संहार करते हैं, आप ही सबके स्वामी हैं ॥ २५ ॥

आप संसारका हरण करते हैं, इसलिये विद्वान् लोग आपको 'हर' कहते हैं और आपने विष्णुका निग्रह किया है, इसलिये भी आप विद्वानोंके द्वारा हर कहे जाते हैं। हे प्रभो! आप अपने शरीरको आठ भागोंमें बाँटकर इस जगत्का संरक्षण करते हैं, अतः हे भगवन्! अभीष्ट वरोंके द्वारा हम देवताओंकी रक्षा कीजिये ॥ २६-२७ ॥

आप महापुरुष, शम्भु, सर्वेश्वर, सुरनायक, निःस्वात्मा, निर्विकारात्मा, परब्रह्म, सत्युपेक्षी गति, दीनवन्धु, दयासिन्धु, अद्भुत लीला करनेवाले, परमदृढ़, प्राज्ञ, विगद, विभु, सत्य एवं सत्-चित्-आनन्द लक्षणसे युक्त हैं ॥ २८-२९ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार देवताओंके वचनको सुनकर परमेश्वर सदाशिव उन पुरातन देवताओं एवं महर्षियोंसे कहने लगे ॥ ३० ॥

[शिवजी बोले—] जिस प्रकार जलमें जल, दूधमें दूध और धीमें धी मिलकर समरस हो जाता है, ठीक उसी प्रकार भगवान् विष्णु भी शिवजीमें मिलकर समरस हो गये हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३१ ॥

इस समय एकमात्र विष्णु ही महाबलवान् तथा अहंकारी नृसिंहका रूप धारणकर संसारके संहार करनेमें

प्रवृत्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार है। सिद्धिहेतु प्रयत्नशील मेरे भक्तोंके द्वारा वे प्रार्थनाके योग्य हैं, वे स्वयं भी मेरे भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और मेरे भक्तोंको वर देनेवाले हैं ॥ ३२-३३ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर महाबली भगवान् पश्चिम देवताओंके देखते-देखते वर्ही अनर्थान हो गये। गणाध्यक्ष महाबलवान् भगवान् वीरभद्र भी नृसिंहका चर्म निकाल और उसे लेकर कैलासपर्वतपर चले गये ॥ ३४-३५ ॥

उसी समयसे शिवजी नृसिंहके चर्मको धारण करते हैं। उन्होंने नृसिंहके मुखको अपनी मुण्डमालाका सुमेरु बनाया था। तदनन्तर सभी देवता निर्भय होकर इस कथाका वर्णन करते हुए विस्मयसे प्रफुल्लितनेत्र हो जैसे आये थे, वैसे ही चले गये ॥ ३६-३७ ॥

जो [व्यक्ति] वेदरससे परिपूर्ण इस परम पवित्र आख्यानको पढ़ता है तथा सुनता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ ३८ ॥

यह आख्यान धन्य, यशको प्रदान करनेवाला, आयुको बढ़ानेवाला, आरोग्य देनेवाला तथा पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, समस्त विष्णोंको शान्त करनेवाला, सभी व्याधियोंका नाश करनेवाला, दुःखोंके दूर करनेवाला, मनोरथ सिद्ध करनेवाला, कल्याणका आश्रयस्थान, अपमृत्युका हरण करनेवाला, बुद्धिको बढ़ानेवाला तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला है ॥ ३९-४० ॥

यह शरभूरुप पिनाकधारी शिवजीका उत्तम रूप है, इसे शिवके भक्तों तथा गणोंमें प्रकाशित करते रहना चाहिये अर्थात् साधारण जनोंके समक्ष यह प्रकाश्य नहीं है। उन्हीं शिवभक्तोंको इस आख्यानको पढ़ना एवं सुनना चाहिये। यह नौ प्रकारकी भक्ति प्रदान करनेवाला दिव्य एवं अन्तःकरण तथा बुद्धिका वर्धन करनेवाला है ॥ ४१-४२ ॥

शिवजीके सभी उत्सवोंमें, चतुर्दशी तथा अष्टमीको एवं शिवकी प्रतिष्ठाके समय इस आख्यानको पढ़नेसे शिवजीका सानिध्य प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

चोर-बाघ-मनुष्य-सिंहके भयमें, आत्मकृत अर्थात् मनमें अकारण उत्पन्न भय तथा राजभयमें, अन्य

प्रकारके उत्पात, भूकम्प, ढाकू आदिसे भय उपस्थित होनेपर, धूलिवर्षाकालमें, उल्कापात, महावात, अनावृष्टि और अतिवृष्टिमें जो विद्वान् सावधान होकर इसे पढ़ता है, वह दृढ़त्री शिवभक्त हो जाता है। जो निष्काम भावसे इस शिवचरित्रको पढ़ता या सुनता है और

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें श्रावाकतारवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

शिवत्रत करता है, वह रुद्रलोकको प्राप्तकर रुद्रका अनुचर हो जाता है। इस प्रकार रुद्रलोकको प्राप्तकर वह रुद्रके साथ आनन्द करता है और हे मुने! उसके बाद शिवजीकी कृपासे वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है ॥ ४४-४७ ॥

तेरहवाँ अध्याय

भगवान् शंकरके गृहपति-अवतारकी कथा

नन्दीश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब चन्द्रमाको सिरपर धारण करनेवाले शिवके एक अन्य चरित्रिको प्रसन्नतापूर्वक सुनिये, जिस प्रकार उन्होंने प्रेमपूर्वक विश्वानके घरमें जन्म लिया ॥ १ ॥

हे मुने! गृहपति नामवाले वे अग्निलोकके स्वामी हुए, वे अग्निके सदृश, तेजस्वी, सर्वात्मा एवं परम प्रभु थे। पूर्वकालमें नर्मदाके तटपर नर्मपुरमें शिवजीके भक्त विश्वानर नामवाले पुण्यात्मा मुनि हुए ॥ २-३ ॥

वे सदा ब्रह्मचर्याश्रम धर्मका पालन करते हुए नित्य-प्रति ब्रह्मज्ञ किया करते थे। वे शाण्डिल्यगोत्री थे और बड़े पवित्र, ब्रह्मतेजस्वी तथा जितेन्द्रिय थे ॥ ४ ॥

वे सभी शास्त्रोंके अर्थोंके ज्ञाता, सर्वदा सदाचारमें तत्पर, शैव आचारमें अति प्रवीण तथा लौकिक आचारके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे ॥ ५ ॥

उन्होंने भायोंके उत्तम गुणोंपर विचारकर उचित समयमें विधिपूर्वक अपने योग्य कुलीन कन्यासे विवाह किया ॥ ६ ॥

वे प्रतिदिन अग्निशूश्रूषा, पंचयज्ञ तथा घटकर्ममें संलान रहते थे और देवता, पितर एवं अतिथियोंका पूजन करते थे ॥ ७ ॥

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके उपरान्त [एक दिन] उन ब्राह्मणकी शुचिप्रती नामक पतित्रता पत्नीने पतिसे कहा— ॥ ८ ॥

हे नाथ! मैंने आपकी कृपासे आपके साथ उन सभी भोगोंको भोग लिया है, जो स्त्रियोंके योग्य तथा आनन्ददायक हैं ॥ ९ ॥

हे नाथ! अब मेरी एक ही विशेष अभिलाषा है, जो मेरे हृदयमें चिरकालसे स्थित है और वह गृहस्थोंके लिये उचित भी है, उसे देनेकी कृपा करें ॥ १० ॥

विश्वानर बोले—हे सुश्रोणि! हे प्रियहितौषिणि! मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। हे महाभागो! तुम उसे माँगो, मैं शोभा ही प्रदान करूँगा। हे कल्याणि! सम्पूर्ण कल्याण करनेवाले महेश्वरकी कृपासे मुझे इस लोक एवं परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ११-१२ ॥

नन्दीश्वर बोले—पतिके इस वचनको सुनकर प्रसन्न मुखबाली वह पतित्रता स्त्री प्रसन्नतासे विनीत हो दोनों हाथ जोड़कर कहने लगी— ॥ १३ ॥

शुचिप्रती बोली—हे नाथ! यदि मैं वरके योग्य हूँ और यदि आपको मुझे वर प्रदान करना है तो मुझे शिवके समान पुत्र दीजिये, मैं कोई अन्य वर नहीं चाहती हूँ ॥ १४ ॥

नन्दीश्वर बोले—उसके इस वचनको सुनकर वे पवित्रात्मा ब्राह्मण क्षणभरके लिये समाधिस्थ होकर अपने हृदयमें विचार करने लगे। अहो! मेरी इस स्त्रीने अत्यन्त दुर्लभ तथा मनोरथ मार्गसे दूर कैसी वस्तु माँगी है अथवा वे शिवजी ही सब कुछ पूरा करनेवाले हैं ॥ १५-१६ ॥

उन शम्भुने ही इसके मुखमें वाणीरूपसे स्थित होकर ऐसा कहा है। शिवजीकी याद ऐसी इच्छा है, तो उसे अन्यथा करनेमें कौन समर्थ हो सकता है! ॥ १७ ॥

ऐसा विचारकर उदार बुद्धिवाले तथा एकपली-ब्रतमें परायण रहनेवाले विश्वानर मुनिने बादमें उस पलीसे कहा— ॥ १८ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार अपनी पत्नीको [अनेक प्रकारसे] आश्वस्त करके मुनि तप करनेके लिये वहाँ चले गये, जहाँ साक्षात् काशीनाथ विश्वेश्वर स्थित हैं ॥ १९ ॥

उन्होंने शीघ्र ही वाराणसी पहुँचकर मणिकर्णिकाका दर्शन करके अपने सैकड़ों जन्मोंके अर्जित तीनों तापोंसे मुक्ति प्राप्त कर ली ॥ २० ॥

उसके बाद उन्होंने विश्वेश्वर आदि सभी लिंगोंका दर्शन करके काशीस्थ सभी कुण्डों, वायियों एवं सरोवरोंमें स्नान करके, सभी विनायकोंको नमस्कार करके, शिवा गौरीको प्रणाम करके, पापोंका भक्षण करनेवाले कालराज भैरवका भी पूजन किया, फिर प्रयत्नपूर्वक दण्डपाणि विनायक आदि प्रमुख गणोंकी स्तुतिकर, आदिकेशव आदि [मुख्य द्वादश केशवों]-को प्रसन्न करके फिर लोलार्क आदि प्रमुख सूर्योंको बार-बार प्रणाम किया, पुनः सभी तीर्थोंमें समाहितचित्त होकर पिण्डदान करके हजारों प्रकारके भोजनादिसे मुनियों तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्टकर महापूजोपचारसे भक्तिपूर्वक [अनेक] लिंगोंका पूजन करके वे बार-बार विचार करने लगे कि शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करनेवाला कौन-सा लिंग है, जहाँ पुत्रकी कामनासे मेरा तप सफल होगा ॥ २१—२६ ॥

उन बुद्धिमान् विश्वानर मुनिने कुछ क्षण ऐसा विचार करके शीघ्र ही पुत्र देनेवाले वीरेश [नामक] लिंगकी प्रशंसा की। [उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि] यह वीरेश्वर सिद्धि लिंग है, [इसकी पूजाके प्रभावसे] असंख्य साधक सिद्धिको प्राप्त किये हैं, इसीलिये यह त्रैष्ट लिंग सबसे अधिक प्रसिद्ध है। लोग भक्तिभावसे समन्वित होकर वर्षपर्यन्त इस वीरेश्वर महालिंगकी पूजा करके आयु तथा पुत्रादि सभी मनोरथ प्राप्त करते हैं। अतः मैं भी यहीं वीरेश लिंगकी त्रिकाल आराधनाकर शीघ्र वैसा ही पुत्र प्राप्त करूँगा, जैसे कि मेरी स्त्रीने अभिलाषा की है ॥ २७—३० ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा विचारकर बुद्धिमान्, पुण्यात्मा तथा ब्रती ब्राह्मण विश्वानरने चन्द्रकूपके जलमें स्नानकर नियम धारण किया ॥ ३१ ॥

उन्होंने एक मासपर्यन्त दिनमें एकाहार, एक

मासपर्यन्त रात्रिमें एकाहार, एक मासपर्यन्त अयाचित आहार पुनः एक मासतक निराहर रहकर तप किया ॥ ३२ ॥

वे एक महीनेतक दूध पीकर, एक महीनेतक शाक-फल खाकर, एक महीनेतक मुट्ठीभर तिल खाकर और एक महीने पानी पीकर रहे ॥ ३३ ॥

वे एक महीनेतक पंचाव्य पीकर, एक मासतक चान्द्रायणव्रतकर, एक मासतक कुशाग्रका जल पीकर पुनः एक महीने बायु भक्षणकर रहने लगे ॥ ३४ ॥

उत्तम वीरेश्वरलिंगकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हुए इस प्रकार उन्होंने एक वर्षतक अद्भुत तप किया ॥ ३५ ॥

उसके बाद तेरहवें महीनेमें गंगाके जलमें प्रातःकाल स्नानकर ज्यों ही वे ब्राह्मण वीरेश्वरकी ओर आये, उसी समय उन तपोधनने [वीरेश्वर] लिंगके मध्यमें विभूतिसे विभूषित, आठ वर्षकी आकृतिवाले एक बालकको देखा। उस बालककी आँखें कानोंतक फैली हुई थीं, उसके ओठ गहरे लाल थे, मस्तकपर अत्यन्त पिंगलवर्णकी जटा शोभा पा रही थी, वह नन तथा प्रसन्नमुख था और बालोचित वेशभूषा तथा चिताका भस्म धारण किये हुए श्रुतिके सूक्ष्मोंका पाठ करता हुआ लीलापूर्वक हँस रहा था ॥ ३६—३९ ॥

उसे देखकर आनन्दित होकर रोमांचयुक्त विश्वानर मुनिने बार-बार हृदयसे 'नमोऽस्तु' कहकर प्रणाम किया। तदनन्तर विश्वानर मुनि इत्तर्वार्थ होकर अभिलाषा पूर्ण करनेवाले आठ पद्मोंसे बालकरूपधारी परमानन्दस्वरूप शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ४०—४१ ॥

विश्वानर बोले—यह सब कुछ एक अद्वितीय ब्रह्म ही है, वही सत्य है, वही सत्य है, सर्वत्र उस ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह ब्रह्म एकमात्र ही है और दूसरा कोई नहीं है, इसलिये मैं एकमात्र आप महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ ॥ ४२ ॥

हे शम्भो! एक आप ही सबका सूजन करनेवाले तथा हरण करनेवाले हैं, आप रूपविहीन होकर भी अनेक रूपोंमें एक रूपवाले हैं, जैसे आत्मधर्म एक होता हुआ भी अनेक रूपोंवाला है, इसलिये मैं आप महेश्वरको छोड़कर किसी अन्यकी शरण नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ ॥ ४३ ॥

जिस प्रकार रस्सीमें साँप, सीपीमें चाँदी और मृगमरीचिकामें जलप्रवाह [मिथ्या] भासित होता है, उसी प्रकार [आपमें] यह सारा प्रपंच भासित हो रहा है। जिसके जान लेनेपर इस प्रपंचका मिथ्यात्म भलीभौति ज्ञात हो जाता है, मैं उन महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४४॥

हे शम्भो! जिस प्रकार जलमें शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें आङ्गादकत्व, पृथग्में गन्ध एवं दुधमें धृत व्याप्त रहता है, उसी प्रकार सर्वत्र आप ही व्याप्त हैं, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४५॥

हे प्रभो! आप कानोंके बिना सुनते हैं, नाकके बिना सूँघते हैं, बिना पैरके दूरसे आते हैं, बिना आँखें देखते हैं और बिना जिह्वाके रस ग्रहण करते हैं, अतः आपको भलीभौति कौन जान सकता है। इस प्रकार मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४६॥

हे ईश! आपको न साक्षात् वेद, न विष्णु, न सर्वकष्टा ब्रह्मा, न योगीन्द्र और न तो इन्द्रादि देवगण ही जान सकते हैं, केवल भक्त ही आपको जान पाता है, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४७॥

हे ईश! आपका न तो गोत्र है, न जन्म है, न आपका नाम है, न आपका रूप है, न शील है एवं न देश। ऐसा होते हुए भी आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं और आप समस्त मनोरथोंको पूर्ण करते हैं, अतः मैं आपका भजन करता हूँ॥ ४८॥

हे कामशत्रो! सब कुछ आपसे है और आप ही सब कुछ हैं, आप पार्वतीपति हैं, आप दिग्म्बर एवं अत्यन्त शान्त हैं। आप वृद्ध, युवा और बालक हैं। कौन ऐसा पदार्थ है, जो आप नहीं हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ ४९॥

नदीश्वर बोले—इस प्रकार स्तुतिकर हाथ जोड़े हुए वे ब्राह्मण जबतक पृथ्वीपर गिरते, तबतक वह बालक वृद्धोंके भी वृद्ध पुरातन पुरुषके रूपमें अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मणसे कहने लगा—॥ ५०॥

बालक बोला—हे विश्वानर! हे मुनिश्रेष्ठ! हे ब्राह्मण! आपने आज मुझे अत्यन्त सन्तुष्ट कर दिया।

अतः आप प्रसन्नचित्त होकर उत्तम वर माँगिये ॥ ५१॥

तब मुनियोंमें श्रेष्ठ वे विश्वानर मुनि प्रसन्नचित्त हो उठकर बालकरूपी शिवजीसे कहने लगे ॥ ५२॥

विश्वानर बोले—हे महेश्वर! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतः आपसे कौन ऐसी बात है, जो छिपी रह सकती है। हे प्रभो! आप सर्वान्तरात्मा, भगवान्, शर्व तथा सब कुछ प्रदान करनेवाले हैं॥ ५३॥

दीनता प्रकट करनेवाली याचनाके लिये मुझे नियुक्त करके आप मुझसे क्या कहलाना चाहते हैं, हे महेश्वान! ऐसा जानकर आप जैसा चाहते हैं, वैसा करें॥ ५४॥

नदीश्वर बोले—पवित्र व्रत करनेवाले उन विश्वानरके इस पवित्र वचनको सुनकर परम पवित्र उस बालकरूप महादेवने मन्द-मन्द मुसकराकर कहा—॥ ५५॥

हे शुचे! आपने शुचिष्पतीमें हृदयसे जो इच्छा की है, वह थोड़े ही दिनोंमें निःसन्देह पूर्ण हो जायगी॥ ५६॥

हे महामते! मैं शुचिष्पतीके गर्भसे आपके पुत्ररूपमें जन्म लूँगा और शुद्धात्मा तथा सभी देवताओंको प्रिय मैं गृहणपति नामसे प्रसिद्ध होऊँगा॥ ५७॥

आपके द्वारा कहा गया यह पवित्र अभिलाषाष्टक-स्तोत्र एक वर्षपर्यन्त तीनों कालमें शिवकी सन्निधिमें पढ़ते रहनेपर [मनुष्योंको] सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला होगा॥ ५८॥

इस स्तोत्रका पाठ पुत्र-पौत्र-धन प्रदान करनेवाला, सभी प्रकारकी शान्ति करनेवाला तथा सम्पूर्ण आपत्तियोंका विनाश करनेवाला है और यह स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पत्ति देनेवाला है, इसमें संशय नहीं है। यह स्तोत्र अकेला ही सभी स्तोत्रोंके तुल्य है तथा सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला है॥ ५९-६०॥

प्रातःकाल उठकर भली-भौति स्नान करके शिव-लिंगकी पूजाकर वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका पाठ करता हुआ पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है॥ ६१॥

इस अभिलाषाष्टकस्तोत्रको जिस किसीको नहीं बताना चाहिये और इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये,

यह महावन्ध्या स्त्रीको भी सन्तान देनेवाला है ॥ ६२ ॥

जो स्त्री अथवा पुरुष नियमपूर्वक शिवलिंगके समीप एक वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे यह स्तोत्र पुत्र प्रदान करता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतारवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

विश्वानरके पुत्ररूपमें गृहपति नामसे शिवका प्रादुर्भाव

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! घर आकर उस ब्राह्मणने परम हर्षसे युक्त होकर अपनी स्त्रीसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १ ॥

यह सुनकर उस विप्रपत्नी शुचिष्टीको महान् आनन्द प्राप्त हुआ और वह प्रेमयुक्त होकर अपने भाग्यकी सराहना करने लगी ॥ २ ॥

तदनन्तर कुछ समयके बाद उस ब्राह्मणद्वारा यथाविधि गर्भाधानकर्म किये जानेपर उसकी पत्नी गर्भवती हुई ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् उस विद्वान् ब्राह्मणने गृहसूत्रमें कथित विधिके अनुसार पुंस्त्वकी वृद्धिके लिये गर्भस्पन्दनके पहले ही भलीभाँति पुंसवन संस्कार किया ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् आठवाँ महीना आनेपर क्रियावेत्ता उस ब्राह्मणने सुखपूर्वक प्रसवके लिये गर्भके रूपकी वृद्धि करनेवाला सीमन्त-संस्कार कराया ॥ ५ ॥

तदुपरान्त ताराओंके अनुकूल होनेपर वृहस्पतिके केन्द्रवर्ती होनेपर और शुभ ग्रहोंका योग होनेपर शुभ लानमें चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला सूतिकागृहके दीपकको अपने तेजसे शान्त अर्थात् प्रभाहीन-सा करनेवाला तथा सभी अरिष्टोंका विनाश करनेवाला पुत्र उस शुचिष्टीके गर्भसे उत्पन्न हुआ ॥ ६-७ ॥

वह बालक शिवजी ही थे, जो भूर्भुवः स्वः—इन तीनों लोकोंको समग्र सुख देनेके लिये अवतीर्ण हुए। उस समय गन्धको समग्र वहन करनेवाले वायुके वाहन (मेघ) दिशारूपी वधुओंके मुखपर वस्त्रसे बन गये अर्थात् चारों ओर काली घटा उमड़ आयी। वे घनघोर बादल गन्धवाली पुष्पराशिकी वर्षा करने लगे। देवदुन्दुभियाँ

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले बालक-रूपधारी शिवजी अन्तर्धान हो गये और वे विश्वानर ब्राह्मण भी प्रसन्नचित होकर अपने घर चले गये ॥ ६४ ॥

बज उठीं और सारी दिशाएँ निर्मल हो गयीं। प्राणियोंके मनोंके साथ चारों ओर नदियाँ स्वच्छ हो गयीं, अन्धकार पूर्णरूपसे दूर हो गया, रजोगुण विरज अर्थात् विनष्ट हो गया। प्राणी सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो गये। [चारों ओरसे] अमृतकी वर्षा होने लगी। सभी प्राणियोंकी वाणी कल्पणकारी और प्रिय लगानेवाली हो गयी ॥ ८-११ ॥

रम्भा आदि अप्सराएँ, विद्याधरियाँ, किन्नरियाँ, देवपत्नियाँ और गन्धर्व-उरग एवं यक्षोंकी पतियाँ हजारोंकी संख्यामें अपने-अपने हाथोंमें मंगल-द्रव्य धारण किये हुए सुन्दर स्वरोंमें मंगल गीत गाती हुई वहाँ आ गयीं ॥ १२-१३ ॥

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, विभाष्ण, माण्डवीपुत्र लोमश, रोमचरण, भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गर्ग, जातुकूर्य, पराशर, आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, दक्ष, वाल्मीकि, मुदाल, शातातप, लिखित, शिलाद, उच्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले शंख, जमदग्नि, संवर्त, मतंग, भरत, अंशुमान्, व्यास, कात्यायन, कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुक, ऋष्यशृंग, दुर्वासा, शुचि, नारद, तुम्भुरु, उत्तंक, वामदेव, पवन, असित, देवल, सालंकायन, हारीत, विश्वामित्र, भार्गव, अपने पुत्र [मार्कण्डेय] -के साथ मृकण्ड, पर्वत, दारुक, धौम्य, उपमन्यु, वत्स आदि मुनिगण तथा मुनिकन्याएँ उस बालककी [अदृष्ट] शान्तिके लिये विश्वानरके प्रशंसनीय आत्ममपर आ गये ॥ १४-२० ॥

वृहस्पतिसंहित ब्रह्मा तथा भगवान् विष्णु, नन्दी, भृंगी तथा पार्वतीसहित शंकर, महेन्द्र आदि देवता,

पातालवासी नागगण एवं अनेक प्रकारके रत्न लेकर नदियोंसहित समुद्र वहाँ गये और स्थावर [पर्वत आदि] हजारोंकी संख्यामें जंगमरूप धारणकर वहाँ आये। उस महोत्सवमें अचानक असमयमें चाँदनी उत्पन्न हो गयी ॥ २१—२३ ॥

उसके बाद ब्रह्माने विनप्र होकर स्वयं उसका जातकर्म-संस्कार किया, फिर वेदविधिका विचार करके ग्यारहवें दिन उसके रूपको देखकर उसका नाम गृहपति रखा। उन्होंने नामकरणके समय श्रुतिके मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए चारों वेदोंके चार मन्त्रोंसे उसे आशीर्वाद देकर लौकिक रीतिका आश्रय लेकर [रक्षामन्त्रोंसे] उसकी बालोचित रक्षा सम्पन्न की और हंसपर सवार हो सबके पितामह वे ब्रह्माजी अपने धामको चले गये। इसी प्रकार विष्णुके साथ शंकर भी अपने वाहनपर सवार हो अपने लोकको चले गये ॥ २४—२७ ॥

वे आपसमें विचार कर रहे थे कि अहो! कैसा इसका रूप है, इसका विलक्षण तेज कैसा है और इसके सभी अंगलक्षण कैसे हैं, देखो शुचिष्टती कैसी भाग्यवती है कि [इसके गर्भसे] साक्षात् शिवजी प्रकट हो गये अथवा शिवजीके भक्तोंमें इस प्रकारकी घटना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; जिससे उनके द्वारा अर्चित रुद्र स्वयं प्रकट हो गये ॥ २८—२९ ॥

इस प्रकार आपसमें प्रशंसा करते हुए पुलकित रोमोंवाले सभी देवता विश्वानरसे आज्ञा ले जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार चले गये ॥ ३० ॥

पुत्रवान् व्यक्ति पुत्रसे लोकोंको जीतता है—यह सनातनी श्रुति है, इसीलिये समस्त गृहस्थ पुत्रकी कामना करते हैं ॥ ३१ ॥

पुत्रहीनका घर सुना है, पुत्रहीनका धन कमाना व्यर्थ है, अपुत्रका तप खण्डित है, जिसको पुत्र नहीं है, वह कभी पवित्र नहीं होता ॥ ३२ ॥

पुत्रसे बढ़कर कोई परम लाभ नहीं, पुत्रसे बढ़कर कोई परम सुख नहीं और इस लोक तथा परलोकमें पुत्रसे बढ़कर कोई परम मित्र नहीं है ॥ ३३ ॥

चौथे महीनेमें गृहपतिके पिताने उसका गृहनिष्ठमण-

संस्कार किया। फिर छठे महीनेमें उसका विधिपूर्वक अन-प्राशन और वर्ष पूरा होनेपर चूडाकरणसंस्कार किया ॥ ३४ ॥

इसके बाद उस कर्मवेत्ताने श्रवणकक्षत्रमें कर्णवेष करके उसके ब्रह्मतेजज्ञकी अभिवृद्धिके लिये पाँच वर्षकी अवस्थामें ज्ञापवीत-संस्कार किया ॥ ३५ ॥

पुनः बुद्धिमान् पिताने उपार्कर्मकर उसे वेदोंका अध्ययन कराया। इस प्रकार तीन वर्षमें ही उसने विधिपूर्वक अंग, पद तथा क्रमसहित समस्त वेदोंको पढ़ लिया ॥ ३६ ॥

प्रतिभाशाली उस बालकने गुरु पिताके मुखसे समस्त विद्याएँ अपने विनय आदि गुणोंको प्रकाशित करते हुए मात्र साक्षिभावसे ग्रहण कर लिया ॥ ३७ ॥

तदुपरान्त नौवें वर्षमें माता-पिताकी सेवामें निरत गृहपति तथा उसके पिता विश्वानरको देखनेके लिये नारदजी [वहाँ] आये ॥ ३८ ॥

कौतुकी देवर्षि नारदजीने विश्वानरकी पर्णशालामें प्रवेशकर अर्ध्य, आसन आदि क्रमसे ग्रहणकर उनसे कुशल-मंगल पूछा और उसके बाद शिवके चरणोंका ध्यान करके उनके सामने ही उनके समग्र भाग्य तथा पुत्रधर्मका वर्णन विश्वानरसे किया ॥ ३९—४० ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार! तदुपरान्त] मुनि नारदजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह शोभासम्पन्न बालक माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर भक्तिपूर्वक उनको नम्रतासे प्रणामकर बैठ गया ॥ ४१ ॥

नारदजी बोले—हे वैश्वानर! मैं तुम्हरे लक्षणोंकी परीक्षा करूँगा, तुम आओ, मेरी गोदमें बैठ जाओ और अपना दाहिना हाथ मुझे दिखाओ। तब विद्वान् नारदजी बालकके तालु जिहा आदिको देखकर शिवजीकी प्रेरणासे विश्वानरसे कहने लगे ॥ ४२—४३ ॥

नारदजी बोले—हे विश्वानर! हे मुने! मैं आपके पुत्रके सब लक्षणोंको कहता हूँ उसे आदर्पूर्वक सुनिये, आपके पुत्रके सभी अंग उत्तम लक्षणोंसे युक्त हैं, इसलिये यह अत्यन्त भाग्यशाली है। किंतु इसके सर्वगुणसम्पन्न, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे समन्वित और चन्द्रमाके समान निर्मल कलाओंसे सुशोभित होनेपर भी विधाता ही इसकी

रक्षा करें। इसलिये सब तरहके उपायोंसे इस बालककी बारहवें वर्षमें इसे विजली अथवा अग्निसे विघ्न है। ऐसा रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि विधाताके विपरीत होनेपर कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे देवलोकको चले गये ॥ ४४—४७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहामुरायके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतारवर्णन
नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चहवाँ अध्याय

भगवान् शिवके गृहपति नामक अग्नीश्वरलिंगका माहात्म्य

नन्दीश्वर बोले—[हे सनकुमार!] नारदजीकी बात सुनकर स्त्रीसहित विश्वानरने उसे अत्यन्त दारुण वप्रपातके समान समझा ॥ १ ॥

‘हाय मैं मर गया’—ऐसा कहकर वे छाती पीटने लगे और पुत्रके शोकसे सन्ताप होकर मूर्छित हो गये। शुचिष्टती भी अत्यधिक दुःखित होकर ऊँचे स्वरमें हाहाकार करती हुई व्याकुल इन्द्रियोंवाली होकर रोने लगी ॥ २-३ ॥

शुचिष्टतीके विलापको सुनकर विश्वानर भी मूर्छिका त्याग करके उठकर ओरे! यह क्या हुआ, यह क्या हुआ, इस प्रकार ऊँचे स्वरमें रोते हुए बोले—हाय! मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंका स्वामी, मेरा बाहर विचरनेवाला प्राण तथा मेरे आत्मामें निवास करनेवाला मेरा पुत्र गृहपति कहाँ है? तब अपने माता-पिताको अत्यधिक शोकसे व्याकुल देखकर शंकरजीके अंशसे उत्पन्न वह बालक गृहपति मुसकराकर कहने लगा— ॥ ४-५ ॥

गृहपति बोला—हे माता! हे पिता! क्या हुआ है? जिससे कि आपलोग इतने दुखी होकर रो रहे हैं, इसका कारण मुझे बताइये। इस तरह आपलोग भयभीत क्यों हो रहे हैं? ॥ ६ ॥

आपलोगोंकी चरणधूलिसे सुरक्षित मेरे शरीरको काल भी मारनेमें समर्थ नहीं हो सकता, फिर अत्यन्त अत्य विजली मेरा कर ही क्या सकती है? ॥ ७ ॥

हे माता-पिता! आपलोग मेरी प्रतिज्ञा सुनें, यदि मैं आप दोनोंका पुत्र हूँ तो ऐसा कार्य करूँगा, जिससे मृत्यु भी सन्त्रस्त हो जायगी। हे माता-पिता! मैं सत्युरुपोंको सब कुछ देनेवाले सर्वज्ञ मृत्युंजय भगवान्की भलीभाँति

आराधना करके महाकालको भी जीत लूँगा, यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥ ८-९ ॥

नन्दीश्वर बोले—उसकी इस प्रकारकी बातको सुनकर मुरझाये हुए द्विजदम्पती अकालमें हुई अमृतकी सघन वृष्टिके समान दुःखरहित होकर कहने लगे ॥ १० ॥

द्विजदम्पती बोले—[हे पुत्र!] फिर कहो! फिर कहो! तुमने क्या कहा कि मुझे काल भी मारनेमें समर्थ नहीं है? फिर बैरारी विजली कौन है? तुमने हमलोगोंके शोकका निवारण करनेके लिये मृत्युंजयदेवताका समाराधनरूप उपाय उचित ही कहा है ॥ ११-१२ ॥

शिवजीका आत्रय ही सचमुच ऐसा है, उनसे बड़ा कोई नहीं है, वे सभी पापोंको दूर करनेवाले एवं मनोरथमार्गसे भी परे कामनाको पूर्ण करनेवाले हैं ॥ १३ ॥

हे तात! क्या तुमने नहीं सुना है कि पूर्वकालमें जब इतेकतु कालपाशमें बाँध लिया गया था, तब शिवजीने उसकी रक्षा की थी? शिलादपुत्र नन्दीश्वर जो केवल आठ वर्षका बालक था, शिवजीने कालपाशसे छुड़ाकर उसे अपना गण तथा विश्वका रक्षक बना दिया ॥ १४-१५ ॥

क्षीरसागरके मन्थनसे उत्पन्न तथा प्रलयार्थिनेके समान महाभयानक हाताहल विषको पीकर शिवजीने ही तीनों लोकोंकी रक्षा की थी ॥ १६ ॥

जिन्होंने त्रिलोकीकी सम्पत्तियोंका हरण करनेवाले महान् अभिमानी जलन्धर नामक दैत्यको अपने सुन्दर औंगठेकी रेखासे उत्पन्न चक्रके द्वारा मार डाला। जिन्होंने त्रिलोककी सम्पदाको प्राप्तकर मोहित हुए त्रिपुरोंको एक ही बाण चलाकर उससे उत्पन्न हुई ज्वालाओंवाली अग्निसे सुखा डाला और जिन्होंने

त्रिलोकके विजयसे उन्मत्त हुए कामदेवको ब्रह्मा आदिके देखते-ही-देखते दृष्टिनिक्षेपमात्रसे अनंग बना दिया। हे पुत्र! तुम ब्रह्मा आदिके एकमात्र जन्मदाता, मेघपर सवार होनेवाले, अविनाशी तथा विश्वकी रक्षारूप मणि उन शिवजीकी शरणमें जाओ। १७—२०॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! माता-पिताकी आज्ञा पाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करके और उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन देकर वह वहाँसे चल दिया और उस काशीपुरीमें पहुँचा, जो ब्रह्मा, नारायण आदि देवोंके लिये दुर्लभ, महाप्रलयके सन्तापका विनाश करनेवाली, विश्वेश्वरद्वारा पालित, कण्ठ अर्थात् तटप्रदेशमें हारकी तरह पड़ी हुई गंगाजीसे सुशोभित और अद्भुत गुणोंसे सम्पन्न हरपती [भगवती गिरिजा]-से शोभायमान है। २१—२३॥

वहाँ पहुँचकर वे विप्रवर पहले मणिकण्ठिका गये। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके प्रभु विश्वेश्वरका दर्शन करके उन बुद्धिमानने परम आनन्दसे युक्त होकर तीनों लोकोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले शिवजीको हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम किया। वे बार-बार उसे देखकर हर्षित हो रहे थे और मनमें विचार कर रहे थे कि सचमुच यह लिंग परम आनन्दकन्दसे परिपूर्ण है, यह स्पष्ट ही है, इसमें संशय नहीं है। २४—२६॥

अहो! इस चराचर त्रिलोकीमें मुझसे बढ़कर कोई धन्य नहीं है, जो कि मैंने आज ऐश्वर्यमय तथा सर्वव्यापी विश्वेश्वरका दर्शन किया। २७॥

मेरे भाग्योदयके लिये ही महार्षि नारदने जो मुझे आकर पहले ही बता दिया था, जिससे आज मैं [विश्वेश्वरका दर्शन प्राप्तकर] कृतकृत्य हो गया। २८॥

नन्दीश्वर बोले—मुने! इस प्रकार आनन्दमृतरूपी रसोंद्वारा पारण करके गृहपतिने शुभ दिनमें सर्वहितप्रद शिवलिंगकी स्थापना की। २९॥

तत्पश्चात् अजितेन्द्रियोंके लिये अति दुष्कर कठोर नियमोंको ग्रहणकर अनुष्ठानपरयण हुआ पवित्र चित्तवाला वह प्रतिदिन वस्त्रोंसे छाने गये गंगाजलसे पूर्ण एक सौ आठ पवित्र घड़ोंसे शिवजीको स्नान करने लगा और एक हजार आठ नीलकमलोंसे बनी हुई माला समर्पित

करने लगा। ३०—३१ १/२॥

पहले वह पक्षमें [एक बार] फिर महीने-महीनेमें फल-मूल-कन्दको खाकर [छः महीनेतक] रहा। इसके बाद अत्यन्त धीर वह गृहपति पुनः छः मास सूखे पर्ते खाकर और छः महीने वायु पीकर, फिर छः महीने एक बूँद जल पीकर तपस्या करनेमें लगा रहा। ३२—३३॥

हे नारद! इस प्रकार एकमात्र शिवजीको मनमें धारण करके तपमें निरत उस महात्माके दो वर्ष बीत गये। हे शौनक! तब जन्मसे बारहवें वर्षमें देवर्षि नारदद्वारा कही गयी बातको मानो सत्य करनेकी इच्छासे स्वर्व इन्द्रदेव उसके पास आये और बोले—हे विष्र! मैं इन्द्र इस उत्तम तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ तुम्हरे मनमें जो अभिलषित हो, उस वरको माँगो, मैं प्रदान कर रहा हूँ। ३४—३६॥

नन्दीश्वरबोले—इन्द्रके इस बचनको सुनकर महा-धीर मुनिकुमारने मधुर मधुराक्षरमयी वाणीमें कहा—॥ ३७॥

गृहपति बोला—हे मधवन्! हे वृत्रशत्रो! मैं वज्र धारण करनेवाले आपको जानता हूँ। मैं आपसे वर नहीं माँगता, मुझे वर देनेवाले तो शिवजी हैं। ३८॥

इन्द्र बोले—हे बालक! मेरे सिवा कोई दूसरा शिव नहीं है, मैं सभी देवताओंका भी देव हूँ। अतः तुम अपना लड़कपन त्यागकर [मुझसे] वर माँगो और देर मत करो॥ ३९॥

गृहपति बोला—तुम अहल्याके शीलको नष्ट करनेवाले असाधु हो, पाक नामक असुरका वध करनेवाले पर्वतोंके शत्रु हे इन्द्र! तुम चले जाओ, यह स्पष्ट है कि मैं शिवजीके अतिरिक्त और किसी देवतासे वरकी प्रार्थना नहीं करता॥ ४०॥

नन्दीश्वर बोले—उसकी यह बात सुनते ही क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले इन्द्र अपना घोर वज्र उठाकर बालकको भयभीत करने लगे॥ ४१॥

विद्युज्ज्वालाके समान प्रज्वलित वज्रको देखकर नारदकी बातका स्मरण करता हुआ वह बालक भयसे व्याकुल होकर मूर्छित हो गया। उसके पश्चात् अन्धकारका नाश करनेवाले गौणीपति शिवजी प्रकट हो गये और हाथके स्पर्शसे उसे जीवित-सा करते हुए उससे बोले—

उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ४२-४३ ॥

तब [उस अपूर्व स्पर्शको प्राप्त करके] उसने रात्रिमें सोये हुएके समान अपने नेत्रकमलोंको खोलकर उठ करके अपने आगे सैकड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान शिवजीको देखा । उनके मस्तकमें नेत्र शोभित हो रहा था, कण्ठमें विष्वकी कालिमा थी, वे बैलपर सवार थे, उनके बायाँ ओर भागवती पार्वती स्थित थीं, उनके मस्तकपर अर्धचन्द्र सुशोभित हो रहा था, वे जटाजूटसे युक्त थे, त्रिशूल एवं अजगव धनुष धारण किये हुए थे । उनका गौर शरीर कर्पूरके समान उज्ज्वल था और वे गजचर्म धारण किये हुए थे । तब गुरुवाक्य तथा आगमप्रमाणसे उन्हें महादेव जानकर हर्षात्मिकसे उसका कण्ठ रुँध गया और शरीर रोमांचित हो गया । उसकी स्मृति लुप्त हो गयी । फिर भी वह जैसे-तैसे क्षणभरके लिये चित्रलिखित पुतलेके समान स्तम्भित हो अवाक् खड़ा रहा ॥ ४४-४८ ॥

जब वह न तो स्तुति, न नमस्कार और न कुछ कहनेमें ही समर्थ रहा, तब शिवजीने मुसकराकर उससे कहा— ॥ ४९ ॥



इश्वर बोले—हे बालक ! हे गृहपते ! मैंने समझ लिया कि तुम हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रसे डर गये हो, अब डरो मत ! यह तो मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली थी । मेरे भक्तको इन्द्र, वज्र अथवा काल भी नहीं डरा सकते हैं । यह तो मैंने ही इन्द्रका रूप धारणकर तुम्हें डराया था ॥ ५०-५१ ॥

हे भद्र ! अब मैं तुम्हें वर प्रदान करता हूँ कि तुम अग्निका पद ग्रहण करनेवाले हो जाओ । तुम सभी देवताओंके वरदाता बनोगे । तुम सभी प्राणियोंके अन्दर [वैश्वानर नामकी] अग्नि बनकर विचरण करो और दक्षिण एवं पूर्व दिशाके मध्यमें [आग्नेयकोणका] दिग्गीश्वर बनकर राज्य करो ॥ ५२-५३ ॥

तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिंग [आजसे] तुम्हारे ही नामसे [प्रसिद्ध] होगा । यह अग्नीश्वर नामवाला होगा, जो सभी तेजोंका विशिष्ट रूपसे अभिवर्धन करेगा । अग्नीश्वरके भक्तोंको विद्युत एवं अग्निसे भय नहीं होगा । उन्हें अग्निमान्द्यका भय नहीं होगा और अकालमरण भी कभी नहीं होगा ॥ ५४-५५ ॥

सम्पूर्ण समृद्धियोंको देनेवाले इस अग्नीश्वर लिंगका काशीमें पूजन करके मनुष्य दैवयोगसे यदि कहीं भी मृत्युको प्राप्त होगा, तो उसे अग्निलोककी प्राप्ति हो जायगी ॥ ५६ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहक क्षिवजीने गृहपतिके [माता-पिता एवं] बन्धुओंको बुलाकर उनके माता-पिताके देखते-देखते उस बालकको अग्निकोणके दिक्षालपदपर अभिषिक्तकर स्वयं उस लिंगमें प्रवेश किया ॥ ५७ ॥

हे तात ! इस प्रकार मैंने परमात्मा शिवके गृहपति नामक अग्निके रूपमें दुर्जनोंको पीड़ा देनेवाले अवतारका वर्णन किया ॥ ५८ ॥

चित्रहोत्र नामक सुखदायिनी, रम्य तथा प्रकाशमान पुरी है, जो लोग अग्निके भक्त हैं, वे वहाँ निवास करते हैं ॥ ५९ ॥

जितेन्द्रिय एवं दृढ़ सत्त्व भाववाले पुरुष अथवा सत्त्वसम्पन्न त्रियों उस अग्निलोकमें प्रवेश करती हैं, वे सभी अग्निके समान तेजस्वी होते हैं ॥ ६० ॥

अग्निहोत्रमें तत्पर ब्राह्मण, अग्निको स्थापित करनेवाले ब्रह्मचारी तथा पंचाग्नि तापनेवाले तपस्वी लोग भी अग्निके समान तेजस्वी होकर अग्निलोकमें निवास करते हैं ॥ ६१ ॥

जो शीतकालमें शीतको दूर करनेके लिये काष्ठ-समूहका दान करता है अथवा इंटोसे अग्निकुण्डका

निर्माण करता है, वह अग्निके सान्निध्यमें निवास करता है। जो ब्रह्मायुक्त होकर अनाथ व्यक्तिका अग्निसंस्कार करता है अथवा स्वयं अशक्त होनेपर [इसके लिये] दूसरोंके प्रेरित करता है, वह अग्निलोकमें पूजित होता है ॥ ६२-६३ ॥

एकमात्र अग्निदेव ही द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) -का परम कल्याण करनेवाले हैं। अग्नि ही उनके गुरु, देवता, ब्रत, तीर्थ एवं सब कुछ हैं—ऐसा निश्चित है ॥ ६४ ॥

अग्निके संसर्गमात्रसे क्षणभरमें ही सभी अपवित्र वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं, इसलिये इन्हें पावक कहा गया है ॥ ६५ ॥

ये अग्नि प्राणियोंके साक्षात् अन्तरात्मा हैं और निश्चय

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसाहितामें गृहपत्यवतार-वर्णन नामक पद्महवाँ अव्याय पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

ही सब कुछ जला देनेवाले हैं। ये स्त्रियोंकी कुक्षियोंमें मांसके ग्रासोंको तो पचा देते हैं, किंतु उसीमें रहनेवाले मांसपेशी (गर्भ)-को [दयावश] नहीं पचाते ॥ ६६ ॥

ये अग्नि साक्षात् शिवकी तेजोमयी दहनात्मिका मूर्ति हैं। यही [अग्निरूपा मूर्ति] सुष्टि करनेवाली, विनाश करनेवाली एवं पालन करनेवाली है। इनके बिना कुछ नहीं दिखायी पड़ता है ॥ ६७ ॥

ये अग्नि शिवजीके साक्षात् नेत्र हैं। अन्यकारसे पूर्ण इस तमोमय संसारको अग्निके बिना कौन प्रकाशित कर सकता है ॥ ६८ ॥

धूप, दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घो एवं मिष्टानादि पदार्थ अग्निमें हवन करनेपर स्वर्गमें निवास करनेवाले देवताएँ प्राप्त करते हैं ॥ ६९ ॥

सोलहवाँ अध्याय

यक्षेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! अब आप [भावान्] शम्पुके यक्षेश्वरावतारको सुनिये, जो अहंकारसे युक्त जनोंके गर्वको नष्ट करनेवाला तथा सज्जनोंकी भक्तिका संवर्धन करनेवाला है ॥ १ ॥

पूर्वकालमें महाबलवान् देवता एवं दैत्योंने अपने—अपने स्वार्थके लिये आपसमें भलीभाँति सञ्चिकर अमृत प्राप्त करनेके लिये क्षीरसागरका मन्थन किया था ॥ २ ॥

जब देवता एवं दानव अमृतके लिये क्षीरसागरका मन्थन कर रहे थे तो सर्वप्रथम [समुद्रमें विद्यमान] अग्निसे कालाग्निके समान विष निकला ॥ ३ ॥

हे तात! उस विषको देखते ही समस्त देवता और दानव भयसे व्याकुल हो गये और वे भागकर शीघ्र ही शिवजीकी शरणमें गये ॥ ४ ॥

विष्णुसहित सभी देवता समस्त देवताओंके शिखामणिस्वरूप उन शिवजीको देखकर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। उससे प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् सदाशिवने

देवता एवं दानवोंको पीड़ित करनेवाले उस महाधोर विषका धान कर लिया ॥ ५-६ ॥

पीये गये उस महाभयानक विषको उन्होंने अपने कण्ठमें ही धारण कर लिया, उससे वे प्रभु अत्यन्त सुशोभित हुए और नीलकण्ठ नामवाले हो गये ॥ ७ ॥

उसके पश्चात् शिवजीके अनुग्रहसे विषके दाहसे मुक्त हुए देवताओं एवं असुरोंने पुनः समुद्रका मन्थन किया ॥ ८ ॥

हे मुने! इसके बाद देवता तथा दानवोंके [प्रयत्नोंसे मर्यादित] समुद्रसे अनेक रल निकले और अमृत जैसा—यह उत्तम पदार्थ भी उसीसे निकला, किंतु विष्णुकी कृपासे देवताओं तथा असुरोंमेंसे केवल देवता ही उसे पी गये, असुर नहीं। तब यह महान् रल उनके बीच ढूँढ़का कारण बन गया ॥ ९-१० ॥

हे मुने! देवों और दानवोंमें [भीषण] ढूँढ़युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब राहुसे पीड़ित हुए चन्द्रमा उसके भयसे सन्तप्त होकर भाग खड़े हुए और भयसे व्याकुल होकर

शिवजीकी शरणमें उनके भवन गये एवं प्रणाम करके 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'-इस प्रकार कहते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११-१२ ॥

तब सत्पुरुषोंको अभय प्रदान करनेवाले भक्तवत्सल तथा सर्वव्यापक शिवजीने शरणमें आये हुए चन्द्रमाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया ॥ १३ ॥

तदनन्तर [चन्द्रमाका पीछा करता हुआ] राह भी बहाँ आया और उसने सर्वेश्वर शिवजीको भलीभांति प्रणामकर आदरपूर्वक प्रिय वाणीमें उनकी स्तुति की ॥ १४ ॥

शिवजीने उसका अभिप्राय जानकर पूर्वमें विष्णुके द्वारा काटे गये उसके केतुसङ्क सिरोंको [अपनी मुण्डमालामें पिरोकर] गलेमें धारण कर लिया ॥ १५ ॥

इसके बाद उस युद्धमें सभी असुर देवताओंसे पराजित हो गये। अमृतका पान करके सभी महाबली देवगणोंने विजय प्राप्त की ॥ १६ ॥

[विजय प्राप्त कर लेनेपर] शिवजीकी मायासे मोहित हुए विष्णु आदि देवताओंको अत्यन्त अहंकार हो गया और वे अपने-अपने बलोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ १७ ॥

हे मुने! इसके बाद गर्वको चूर करनेवाले सर्वधीश वे भगवान् शंकर यक्षका रूप धारणकर जहाँ देवगण स्थित थे, वहाँ शीघ्र गये ॥ १८ ॥

गर्वका नाश करनेवाले यक्षपतिरूपी महेशने विष्णु आदि देवगणोंको देखकर अत्यन्त गर्वयुक्त मनसे उनसे कहा— ॥ १९ ॥

यक्षेश्वर बोले—हे देवताओ! आप सभी यहाँ एकत्र होकर किसलिये खड़े हैं? मैं इसका कारण पूछ रहा हूँ, आपलोग बतायें ॥ २० ॥

देवता बोले—हे देव! यहाँ [देव-दानवोंमें] भयंकर विकट संग्राम छिड़ा हुआ था, जिसमें समस्त असुर विनष्ट हो गये और जो बचे थे, वे भागकर चले गये ॥ २१ ॥

हम सब बड़े पराक्रमी, दैत्योंको मारनेवाले तथा बड़े बलशाली हैं। हमारे समक्ष तुच्छ बलवाले वे क्षुद्र दैत्य भला किस प्रकार टिक सकते हैं? ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर बोले—देवताओंकी गर्वभरी यह बात सुनकर गर्वका नाश करनेवाले यक्षरूपी महादेवने यह

वचन कहा— ॥ २३ ॥

यक्षेश्वर बोले—हे देवगणो! आप सभी लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये, मैं [आप] सबके गर्वका नाश करनेवाला यथार्थ वचन कह रहा हूँ, असत्य नहीं। आपलोग इस प्रकारका अहंकार मत कीजिये, सबका रचयिता और संहारकर्ता स्वामी तो कोई दूसरा ही है। आपलोग उन महादेवको भूल गये और निर्बल होकर भी अपने बलका वृथा घमण्ड करते हैं ॥ २४-२५ ॥

हे देवगण! अपने महान् बलको जानते हुए आपलोगोंको यदि घमण्ड है, तो आपलोग मेरे द्वारा रखे गये इस तिनको अपने उन शस्त्रोंसे काटें ॥ २६ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर सत्पुरुषोंको गति देनेवाले यक्षरूपी महादेवजीने उन देवताओंके आगे एक तिनका फेंक दिया, जिसके द्वारा उन्होंने सभी देवताओंका मद दूर कर दिया ॥ २७ ॥

[इस तिनको काटनेके लिये] अपनेको वीर माननेवाले विष्णु आदि सभी देवताओंने अपने पुरुषार्थका प्रयोग करके उसके ऊपर अपने-अपने अस्त्रको चलाया। किंतु मूँढोंके गर्वका नाश करनेवाले [भगवान्] शिवके प्रभावसे उन देवताओंके वे अस्त्र शीघ्र ही बेकार हो गये ॥ २८-२९ ॥

तब देवताओंके आश्चर्यको दूर करनेवाली आकाश-वाणी हुई कि हे देवताओ! ये यक्ष [-रूपमें] सबके अहंकारका अपहरण करनेवाले सदाशिव ही हैं ॥ ३० ॥

ये परमेश्वर ही सबके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं। इहींके बलसे सभी जीव बलवान् हैं, अन्यथा नहीं ॥ ३१ ॥

हे देवताओ! इनकी मायाके प्रभावसे मोहित होकर तथा अहंकारवश आपलोग अपने ज्ञानमूर्ति स्वामी भगवान् शिवको अभीतक पहचान नहीं सकें! ॥ ३२ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकारकी आकाशवाणीको सुनकर देवताओंका सारा गर्व दूर हो गया और वे अपने ईश्वरको पहचान गये। उन्होंने यक्षेश्वरको प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की ॥ ३३ ॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! सबके अभिमानको दूर करनेवाले हे यक्षेश्वर! महालीला करनेवाले हे प्रभो! आपकी माया अत्यन्त अद्भुत है ॥ ३४ ॥

हे प्रभो! यक्षरूप धारण करनेवाले आपकी मायासे मोहित हुए हमलोग इस समय अपनेको [आपसे] पृथक् समझकर आपके सामने ही गर्वपूर्वक बोल रहे हैं ॥ ३५ ॥

हे प्रभो! हे शंकर! अब आपकी ही कृपासे हमें इस समय ज्ञान हो गया कि आप ही कर्ता, हर्ता एवं भर्ता हैं, दूसरा नहीं। आप ही सभी जीवोंकी समस्त शक्तियोंके प्रवर्तक एवं निवर्तक हैं, आप ही सर्वेश, परमात्मा, अव्यय एवं अद्वितीय हैं ॥ ३६-३७ ॥

आपने यक्षेश्वरका रूप धारणकर जो हमलोगोंके मदको दूर कर दिया है, उसे हमलोग आप कृपालुके द्वारा किया गया परम अनुग्रह मानते हैं ॥ ३८ ॥

उसके पश्चात् वे यक्षेश्वर सम्पूर्ण देवताओंपर कृपा

// इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यक्षेश्वरावतार-वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ // १६ //

करते हुए उन्हें अनेक वचनोंसे समझाकर वहाँ अन्तर्धन हो गये ॥ ३९ ॥

[हे मुनीश्वर!] इस प्रकार शिवजीके यक्षेश्वर नामक अवतारका वर्णन कर दिया गया, जो सबको आनन्द देनेवाला तथा सुख प्रदान करनेवाला है। यह यक्षरूप प्रसन्न होनेपर सज्जनोंको अभय प्रदान करनेवाला है ॥ ४० ॥

यह आख्यान अत्यन्त निर्मल तथा सबके अधिमानको नष्ट करनेवाला है। यह सत्युरुद्धोंको सर्वदा शान्तिदायक एवं मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। जो बुद्धिमान् मनुष्य भक्तिसे युक्त हो इसको सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है

और इसके बाद परमगतिको प्राप्त करता है ॥ ४१-४२ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवान् शिवके महाकाल आदि प्रमुख दस अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब आप उपासनाकाण्डद्वारा सेवित महेश्वरके सर्वप्रथम होनेवाले महाकाल आदि दस प्रमुख अवतारोंको भक्तिपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥

उनमें प्रथम महाकाल नामक अवतार है, जो सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। [इस अवतारमें] उनकी शक्ति महाकाली है, जो भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करती है ॥ २ ॥

दूसरा अवतार तार नामसे विख्यात है, जिनकी शक्ति तारा है। ये दोनों ही अपने भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाले एवं भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं ॥ ३ ॥

तीसरा अवतार बाल भुवनेश्वरके नामसे पुकारा जाता है। उनकी शक्ति बाला भुवनेश्वरी कही जाती है, ये सत्युरुद्धोंको सुख प्रदान करती हैं। चौथा अवतार योडश नामक विद्येशके रूपमें हुआ है। योडशी श्रीविद्या उनकी महाशक्ति हैं। यह अवतार भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाला तथा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है ॥ ४-५ ॥

पाँचवाँ अवतार भैरव नामसे प्रसिद्ध है, जो

भक्तोंकी कामनाओंको निरन्तर पूर्ण करनेवाला है। इनकी महाशक्ति गिरिजा भैरवी नामसे प्रसिद्ध हैं, जो सज्जनों एवं उपासकोंकी कामनाएँ पूर्ण करती हैं ॥ ६ ॥

शिवका छठा अवतार छिन्नमस्तक नामक कहा गया है और उनकी महाशक्ति छिन्नमस्तका गिरिजा हैं, जो अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाली है ॥ ७ ॥

शिवके सातवें अवतारका नाम धूमवान् है, जो सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। उनकी शक्ति धूमावती हैं, जो सज्जन उपासकोंको फल देनेवाली है ॥ ८ ॥

शिवजीका आठवाँ अवतार बगलामुख है, जो सुख देनेवाला है। उनकी शक्ति बगलामुखी कही गयी हैं, जो परम आनन्दस्वरूपिणी हैं ॥ ९ ॥

शिवजीका नीवाँ अवतार मातंग नामसे विख्यात है और उनकी शक्ति मातंगी है, जो [अपने भक्तोंकी] समस्त कामनाओंका फल प्रदान करती हैं ॥ १० ॥

शिवजीका कल्याणकारी दसवाँ अवतार कमल नामवाला है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। उनकी शक्ति पार्वतीका नाम कमला है, जो भक्तोंका पालन

करती हैं ॥ ११ ॥

शिवजीके ये दस अवतार हैं, जो सज्जनों एवं भक्तोंको सर्वदा सुख देनेवाले तथा उन्हें भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं ॥ १२ ॥

महात्मा शिवके ये दसों अवतार निर्विकार रूपसे सेवा करनेवालोंको निरन्तर सभी प्रकारके सुख देते रहते हैं। हे मुने! मैंने शंकरजीके इन दसों अवतारोंके माहात्म्यका वर्णन किया है, इस माहात्म्यको सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है तथा यह तन्त्रशास्त्रोंमें निगूढ़ है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

हे मुने! इन [अवतारोंकी] आदि शक्तियोंकी महिमा भी अद्भुत है। इसे सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाली तथा तन्त्रशास्त्र आदिमें गोपित जानना चाहिये।

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवदशावतार-वर्णन नामक सत्रहबाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

ये शक्तियाँ दुष्टोंको दण्ड देनेवाली तथा ब्रह्मतेजका विवर्धन करनेवाली हैं और शत्रुनिग्रह आदि कार्यके लिये सर्वेष्ठ कही गयी हैं ॥ १५-१६ ॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने शक्तियोंसहित शिवजीके महाकलादि प्रमुख शुभ दस अवतारोंका वर्णन किया ॥ १७ ॥

जो भक्तिमें तत्पर होकर सभी शैव पवाँमें शिवके इस निर्मल इतिहासको पढ़ता है, वह शिवका अत्यन्त प्रिय हो जाता है; ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे युक्त तथा क्षत्रिय विजयी हो जाता है, वैश्य धनाधिपति हो जाता है एवं शूद्र सुख प्राप्त करता है ॥ १८-१९ ॥

अपने धर्ममें स्थित होकर इस चरित्रको सुननेवाले शिवभक्त सुखी हो जाते हैं और वे विशेषरूपसे शिवके भक्त हो जाते हैं ॥ २० ॥

अठारहबाँ अध्याय

शिवजीके एकादश रुद्रावतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—[हे सन्तुमार!] अब शिवजीके उत्तम ग्यारह अवतारोंको सुनिये, जिन्हें सुनकर मनुष्यको असत्य आदिसे उत्पन्न होनेवाला पाप पीड़ित नहीं करता है ॥ १ ॥

पूर्वकालकी बात है, दैत्योंसे पराजित होकर इन्ह आदि देवता भयसे अपनी अमरावतीपुरी छोड़कर भाग गये थे। दैत्योंसे पीड़ित वे देवता कश्यपके समीप गये और अत्यन्त विनश्रुताके साथ हाथ जोड़कर व्याकुलचित्त हो उन्हें प्रणाम किया ॥ २-३ ॥

भलीभौति उनकी स्तुति करके सभी देवताओंने आदरपूर्वक प्रार्थनाकर अपने परायजन्य दुःखको निवेदन किया। हे तात! उसके बाद शिवमें आसक्त मनवाले उनके पिता कश्यप देवताओंका दुःख सुनकर कुछ दुर्खी तो हुए, पर अधिक नहीं; [क्योंकि उनकी बुद्धि शिवमें निरत थी] ॥ ४-५ ॥

हे मुने! शान्त बुद्धिवाले उन मुनिने देवताओंको आश्वस्त करके तथा धैर्य धारण करके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक

विश्वेश्वरपुरी काशीकी ओर प्रस्थान किया ॥ ६ ॥

वहाँ गंगाके जलमें स्नान करके ब्रह्मासे नित्यक्रियाकर उन्होंने पर्वतीसहित सर्वेश्वर प्रभु विश्वेश्वरका पूजन किया और देवगणोंके कल्याणकी कामनासे शिवकी प्रसन्नताहेतु ब्रह्मायुक्त हो लिंगकी स्थापनाकर कठोर तप करने लगे ॥ ७-८ ॥

हे मुने! इस प्रकार शिवके चरणकमलोंमें आसक्त मनवाले उन धैर्यवान् महर्षिको तप करते हुए बहुत समय बीत गया ॥ ९ ॥

तब सज्जनोंके एकमात्र शरण दीनबन्धु भगवान् शिव अपने चरणकमलोंमें आसक्त मनवाले उन ऋषिको वर देनेके लिये प्रकट हुए ॥ १० ॥

भक्तवत्सल शिवजीने अति प्रसन्न होकर अपने भक्त मुनिश्रैष्ट कश्यपसे 'वर भागिये'—ऐसा कहा ॥ ११ ॥

उन महेश्वरको देखकर देवगणके पिता कश्यपने हर्षित हो उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति की ॥ १२ ॥

कश्यपजी बोले—हे देवदेव! हे महेशान! हे शरणागतवत्सल! आप सर्वेश्वर, परमात्मा, ध्यानगम्य, अद्वितीय तथा अविनाशी हैं ॥ १३ ॥

हे महेश्वर! आप बलवानोंका निग्रह करनेवाले, सज्जनोंको शरण देनेवाले, दीनबन्धु, दयासागर एवं भक्तोंकी रक्षा करनेमें दक्ष बुद्धिवाले हैं ॥ १४ ॥

ये सभी देवता आपके हैं और विशेषरूपसे आपके भक्त हैं। हे प्रभो! इस समय ये दैत्योंसे पराजित हो गये हैं, अतः आप इन दुःखियोंकी रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥

विष्णु भी असमर्थ हो जानेपर आपको ही बारम्बार कष्ट देते हैं। इसलिये देवता भी [मानो असहायसे होकर] अपना दुःख प्रकट करते हुए मेरी शरणमें आये हुए हैं ॥ १६ ॥

हे देवदेवेश! हे देवगणके दुःखका निवारण करनेवाले! मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। [अतएव देवताओंके] अभीष्टको पूर्ण करनेके लिये काशीपुरीमें आकर आपके लिये तपस्या कर रहा हूँ ॥ १७ ॥

हे महेश्वर! मैं सब प्रकारसे आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ। हे स्वामिन्। मेरी कामनाको पूर्ण कीजिये और देवताओंके दुःखको दूर कीजिये ॥ १८ ॥

हे देवेश! मैं अपने पुत्रोंके दुःखोंसे विशेषरूपसे दुखी हूँ। हे ईश! मुझे सुखी कीजिये; आप ही देवताओंके सहायक हैं। हे नाथ! देवता तथा यक्ष महाबली दैत्योंसे पराभवको प्राप्त हुए हैं, अतः हे शम्भो! आप मेरे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होकर देवताओंको आनन्द प्रदान कीजिये ॥ १९-२० ॥

हे महेश्वर! हे प्रभो! जिस प्रकार इन देवताओंको दैत्योंके द्वारा की जानेवाली बाधा पीड़ित न करे, उस प्रकार आप सदा सभी देवताओंके सहायक बनें ॥ २१ ॥

नन्दीश्वर बोले—कश्यपके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सर्वेश्वर हर भगवान् शंकरजी 'तथास्तु' कहकर उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २२ ॥

कश्यपजी भी अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र अपने स्थानपर चले गये और उन्होंने आदरपूर्वक देवताओंसे

// इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतकशंकितमें एकादशावतार-

वर्णन नायक अवारहावां अव्याय पूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २३ ॥

उसके बाद संहर्ता शंकरजीने अपना वचन सत्य करनेके निमित्त ग्यारह रूप धारणकर कश्यपसे उनकी सुरभि नामक पत्नीके गर्भसे अवतार ग्रहण किया ॥ २४ ॥

उस समय महान् उत्सव हुआ और सब कुछ शिवमय हो गया। कश्यपमुनिसहित सभी देवता भी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥

कपाली, पिंगल, भीम, विरुपाक्ष, विलोहित, शास्त्र, अजपाद, अहिर्बुध्य, शम्भु, चण्ड तथा भव—ये ग्यारहों रुद्र सुरभिके पुत्र कहे गये हैं। ये सुखके आवासस्थान [रुद्रगण] देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये उत्पन्न हुए थे। वे कश्यपपुत्र रुद्रगण चौर तथा महान् बल एवं पराक्रमवाले थे। इन्होंने संग्राममें देवताओंके सहायक बनकर दैत्योंका संहार कर डाला ॥ २६-२८ ॥

उन रुद्रोंकी कृपासे इन्द्र आदि सभी देवता दैत्योंको जीतकर निर्भय हो गये और स्वस्थचित्त होकर अपना-अपना राजकार्य संभालने लगे ॥ २९ ॥

आज भी शिवस्वरूप वे सभी महारुद्र देवताओंकी रक्षाके लिये सदा स्वर्गमें विराजमान हैं ॥ ३० ॥

भक्तवत्सल एवं नाना प्रकारकी लीला करनेमें निपुण वे सब ईशानपुरीमें निवास करते हैं तथा वहाँ सदा रमण करते हैं ॥ ३१ ॥

उनके अनुचर करोड़ों रुद्र कहे गये हैं, जो तीनों लोकोंमें विभक्त होकर चारों ओर सर्वत्र स्थित हैं ॥ ३२ ॥

हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे शंकरजीके अवतारेंका वर्णन किया; ये एकादश रुद्र सबको सुख प्रदान करनेवाले हैं ॥ ३३ ॥

यह आख्यान निर्मल, सभी पापोंको दूर करनेवाला, धन तथा यश प्रदान करनेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है ॥ ३४ ॥

हे तात! जो सावधान होकर इसको सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सब प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ ३५ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

शिवजीके दुर्वासावतारकी कथा

नन्दीश्वर बोले—हे महामुने! अब आप शम्भुके एक और चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनिये, जिसमें शंकरजी धर्म [की स्थापना]—के लिये दुर्वासा होकर प्रकट हुए थे ॥ १ ॥

ब्रह्माके परम तपस्वी एवं ब्रह्मवेता अत्रि नामक पुत्र हुए; वे बड़े बुद्धिमान्, ब्रह्माजीकी आज्ञाका पालन करनेवाले एवं अनसूयाके पति थे ॥ २ ॥

वे किसी समय ब्रह्माजीके निर्देशानुसार पुत्रकी इच्छासे पत्नीसहित तप करनेके लिये त्र्यक्षकुल नामक पर्वतपर गये ॥ ३ ॥

उन मुनिने निर्विन्द्या नदीके तटपर अपने प्राणोंको रोककर निर्द्वन्द्व हो सौ वर्षपर्यन्त विधिपूर्वक महाघोर तप किया ॥ ४ ॥

उन्होंने अपने मनमें निश्चय किया कि जो एकमात्र अविकारी अनिर्वचनीय महाप्रभु ईश्वर हैं, वे मुझे त्रेषु पुत्र प्रदान करेंगे ॥ ५ ॥

इस प्रकार उत्कृष्ट तपमें प्रवृत्त हुए उन महर्षिका बहुत समय व्यतीत हो गया। तब उनके शरीरसे अत्यन्त पवित्र और बहुत बड़ी अग्निज्वाला प्रकट हुई ॥ ६ ॥

उस ज्वालासे सम्पूर्ण लोक प्रायः जलने लगा और इन्द्रादि सभी देवता, त्रेषु मुनिगण तथा समस्त सुर्यर्षिणा भी पीड़ित हो उठे ॥ ७ ॥

हे मुने! इसके बाद इन्द्र आदि सभी देवता एवं मुनिगण उस ज्वालासे अतीव पीड़ित होकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक गये ॥ ८ ॥

हे तात! देवताओंने नमस्कार एवं स्तुतिकर ब्रह्मदेवके समक्ष अपना दुःख प्रकट किया। तब ब्रह्माजी उन देवताओंको लेकर शीघ्रतासे विष्णुलोकको गये ॥ ९ ॥

हे मुने! वहाँ देवताओंके साथ जाकर लक्ष्मीपतिको नमस्कार करके तथा उनकी स्तुतिकर अनन्त भगवान् विष्णुसे ब्रह्माजीने दुःख निवेदन किया ॥ १० ॥

तदनन्तर भगवान् विष्णु भी ब्रह्मा एवं देवताओंको लेकर शीघ्र स्फुलोक गये और वहाँ पहुँचकर परमेश्वर

शिवजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति की ॥ ११ ॥

बहुत स्तुति करनेके बाद भगवान् विष्णुने शिवजीसे अपना सारा दुःख निवेदन किया कि अत्रिके तपसे एक ज्वाला उत्पन्न हुई है ॥ १२ ॥

हे मुने! तदुपरान्त उस स्थानपर एकत्रित हुए ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वरने मिलकर संसारके हितसाधनके लिये आपसमें मन्त्रणा की ॥ १३ ॥

इसके बाद ब्रह्मा आदि वरदश्रेष्ठ वे तीनों देवता उन मुनिको वर देनेके लिये शीघ्र ही उनके आश्रमपर पहुँचे ॥ १४ ॥

अपने-अपने [हंसादि वाहनोंके] विहङ्गोंसे चिह्नित उन देवगणोंको देखकर मुनिश्रेष्ठ अत्रिने उन्हें प्रणाम किया और प्रिय वाणीसे आदरपूर्वक उनकी स्तुति की ॥ १५ ॥

तत्पञ्चात् हाथ जोड़े हुए वे विनीतात्मा ब्रह्मपुत्र अत्रि उन ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवसे विस्मित होकर कहने लगे ॥ १६ ॥

अत्रि बोले—हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! हे शिव! आप सब तीनों लोकोंके पूज्य, प्रभु, ईश्वर और उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करनेवाले माने गये हैं ॥ १७ ॥

मैंने तो सप्तलीक [तपोनिरत होकर] पुत्रकी कलमनासे केवल एकमात्र जो इस सारे जगत्के ईश्वर हैं, उन्हींका ध्यान किया था। किंतु वरदाताओंमें श्रेष्ठ आप तीनों देवता यहाँ कैसे उपस्थित हुए हैं; मेरे इस संशयको दूरकर मुझे अभीष्ट वर दीजिये ॥ १८-१९ ॥

उनकी यह बात सुनकर उन तीनों देवताओंने कहा—हे मुनिराज! जैसा आपने संकल्प किया था, वैसा ही हुआ है, हम ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों ही समानरूपसे इस जगत्के ईश्वर हैं, इसलिये वर देनेके लिये उपस्थित हुए हैं, अतः हमलोगोंके अंशसे आपके तीन पुत्र उत्पन्न होंगे। वे सभी जगतमें प्रसिद्ध होकर माता एवं पिताकी कीर्तिको बढ़ानेवाले होंगे। ऐसा

कहकर वे तीनों देवता प्रसन्न हो अपने-अपने धामको चले गये ॥ २०-२२ ॥

हे मुने ! ब्रह्मानन्दके प्रदाता अत्रि मुनि भी वर प्राप्तकर हर्षित हो अनसूयाके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानपर चले आये ॥ २३ ॥

तब अनेक लीलाओंको करनेवाले वे ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव प्रसन्न हो पुत्ररूपसे अनसूयाके गर्भसे उत्पन्न हुए । समय पूर्ण होनेपर मुनीश्वरके द्वारा अनसूयासे ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, किंतु देवताओंके द्वारा समुद्रमें डाल देनेके कारण वे पुनः समुद्रसे उत्पन्न हुए ॥ २४-२५ ॥

हे मुने ! विष्णुके अंशसे अत्रिके द्वारा उन अनसूयासे दत्तात्रेय उत्पन्न हुए, जिन्होंने सर्वोत्तम संन्यासपद्धतिका संवर्धन किया ॥ २६ ॥

हे मुनिसत्तम ! अत्रिके द्वारा उन अनसूयासे शिवके अंशसे श्रेष्ठ धर्मका प्रचार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उत्पन्न हुए । रुद्रने दुर्वासाके रूपमें प्रकट होकर ब्रह्मतेजको बढ़ाया और दयापूर्वक बहुतोंके धर्मकी परीक्षा भी ली ॥ २७-२८ ॥

हे मुनीश्वर ! सूर्यवंशमें उत्पन्न जो अम्बरीष नामक राजा थे, उनकी परीक्षा दुर्वासाने ली थी; उस आख्यानको आप सुनिये ॥ २९ ॥

वे नृपश्रेष्ठ अम्बरीष सात द्वीपोंवाली पृथ्वीके स्वामी थे । एकादशीके व्रतमें स्थित होकर वे दृढ़ नियमका पालन करते थे । उन राजाका यह दृढ़ संकल्प था कि मैं एकादशीव्रतकर द्वादशीको पारण करौंगा ॥ ३०-३१ ॥

शंकरजीके अंशसे उत्पन्न हुए मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उनके उस नियमको जानकर अपने अनेक शिष्योंको साथ ले उनके समीप गये ॥ ३२ ॥

उस दिन स्वल्प द्वादशी जानकर राजाने [पारण करनेके लिये] ज्यों ही भोजन करनेका विचार किया, उसी समय शिष्योंसहित दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे, तब राजाने उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया ॥ ३३ ॥

इसके बाद मुनि दुर्वासा शिष्योंके साथ स्नान करनेके लिये चले गये और राजाकी परीक्षा लेनेके लिये उन्होंने वहाँ बहुत विलम्ब कर दिया ॥ ३४ ॥

तब धर्ममें विष्णु जानकर राजा शास्त्रकी आज्ञासे

जलका प्राशन करके दुर्वासाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

इसी बीच महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे और राजाको जलप्राशन किया जानकर उनकी परीक्षा लेनेके लिये [महर्षिने भयानक] आकृति धारण कर ली और अत्यन्त कुद्ध हो गये । शिवके अंशसे उत्पन्न हुए वे दुर्वासा धर्मकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे राजासे कठोर वचन कहने लगे ॥ ३६-३७ ॥

दुर्वासा बोले—हे अधम नृप ! तुमने मुझे निमन्त्रण देकर बिना भोजन कराये ही जल पी लिया । मैं तुम्हें उसका फल दिखाता हूँ; क्योंकि मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ ॥ ३८ ॥

इतना कहकर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले वे ज्यों ही राजाको भस्म करनेके लिये उद्यत हुए, इतनेमें ही राजाके भीतर रहनेवाला ईश्वरका चक्र उनकी रक्षके लिये शीघ्रतासे प्रकट हो गया ॥ ३९ ॥

वह सुदर्शन चक्र शिवमायासे विमोहित शिवस्वरूप मुनि दुर्वासाको न जानकर उन्हें जलानेके लिये भयंकर रूपमें जल उठा । इसी समय अशरीरी आकाशवाणीने विष्णुप्रिय ब्राह्मणभक्त महात्मा अम्बरीषसे कहा— ॥ ४०-४१ ॥

आकाशवाणी बोली—हे राजन् ! शिवजीने ही यह सुदर्शन चक्र विष्णुको प्रदान किया है; दुर्वासाको जलानेके लिये प्रज्वलित चक्रको इस समय शीघ्र शान्त कीजिये ॥ ४२ ॥

ये दुर्वासा साक्षात् शिव हैं; इन्होंने ही विष्णुको यह चक्र प्रदान किया है । हे नृपश्रेष्ठ ! इन्हें सामान्य मुनि भत्त समझिये । ये मुनीश्वर आपके धर्मकी परीक्षाके लिये आये हैं, अतः शीघ्र ही इनकी शरणमें जाइये, नहीं तो प्रलय हो जायगा ॥ ४३-४४ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर ! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी, तब वे अम्बरीष भी शिवके अंशस्वरूप उन मुनिकी स्तुति आदरसे करने लगे ॥ ४५ ॥

अम्बरीषजी बोले—यदि मैंने दान किया है, इष्टापूर्ति किया है, अपने धर्मका भलीभांति अनुष्ठान किया है और हमारा कुल ब्रह्मण्य है, तो विष्णुका यह अस्त्र शान्त हो जाय ॥ ४६ ॥

यदि मेरे द्वारा सेवित भक्तवत्सल भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं तो यह सुदर्शनचक्र विशेष रूपसे शान्त हो जाय ॥ ४७ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार रुदांशभूत दुर्वासाके आगे अम्बरीषके स्तुति करनेपर [आकशशबाणीसे] प्रेरित बुद्धिवाला वह शैव सुदर्शन चक्र उन्हें शिवांश जानकर पूर्ण रूपसे शान्त हो गया ॥ ४८ ॥

इसके बाद उन राजा अम्बरीषने अपनी परीक्षाके निमित्त आये हुए उन मुनिको शिवावतार जानकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ४९ ॥

तदनन्तर शिवजीके अंशसे उत्पन्न वे मुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और भोजन करके अभीष्ट वर प्रदानकर अपने स्थानको छले गये। हे मुने! मैंने अम्बरीषकी परीक्षामें दुर्वासाका चरित्र कह दिया। हे मुनीश्वर! अब आप उनका दूसरा चरित्र सुनिये ॥ ५०-५१ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने दशरथपुत्र रामकी नियमसे परीक्षा ली। काल जब मुनिका रूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट करनेके लिये पहुँचा, तब उसने रामसे एक अनुबन्ध किया [और कहा—मैं आपसे कुछ बात करूँगा। किंतु यदि उस समय कोई तीसरा पहुँचा तो वह आपका वध्य होगा। रामचन्द्रजीने तथास्तु कहकर लक्ष्मणको पहरेपर नियुक्त कर दिया और कालसे एकान्तमें बातचीत करने लगे। इसी बीच वहाँ दुर्वासा पहुँचे।] उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—मैं आवश्यक कार्यसे रामचन्द्रसे मिलना चाहता हूँ। लक्ष्मणजीने इधर रामकी प्रतिज्ञा, उधर दुर्वासाका शाप—इस प्रकार दोनों ओरसे असमंजसमें पड़कर विचार किया कि ब्रह्मशापसे दग्ध होना अच्छा नहीं, अतः उन्होंने दुर्वासाके आनेका समाचार श्रीरामको दे दिया। हे मुने! इस प्रकार दुर्वासाके द्वारा हठपूर्वक भेजे जानेपर श्रीरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तत्क्षण लक्ष्मणको त्याग दिया ॥ ५२-५३ ॥

महर्षियोंने यह कथा बहुधा कही है, जिसके कारण यह लोकमें प्रसिद्ध है। अतः इसे विस्तारसे नहीं कहा; वर्णोंकि बुद्धिमान् लोग तो इस कथाको जानते ही हैं ॥ ५४ ॥

महर्षि दुर्वासा उनके इस अत्यन्त दृढ़ नियमको देखकर सन्तुष्ट हुए और प्रसन्नचित हो उन्हें वर प्रदान

किया ॥ ५५ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने श्रीकृष्णके नियमकी भी परीक्षा ली थी; मैं उस कथाको कह रहा हूँ, आप उसे सुनिये। ब्रह्मजीकी प्रार्थनासे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये एवं साधुओंकी रक्षा करनेके लिये भगवान् विष्णु वसुदेवके पुत्ररूपमें अवतरित हुए ॥ ५६-५७ ॥

श्रीकृष्ण नामवाले विष्णुने ब्रह्मदेही खलों, दुष्टों एवं महाप्रियोंका संहर करके समस्त साधुओं एवं ब्राह्मणोंकी रक्षा की ॥ ५८ ॥

वे वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके प्रति अत्यधिक भक्त रहते थे और प्रतिदिन बहुत-से ब्राह्मणोंको सरस भोजन करते थे ॥ ५९ ॥

‘श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके विशेषरूपसे भक्त हैं’ जब वे इस प्रसिद्धिको प्राप्त हुए, तब हे मुने! उन्हें देखनेकी इच्छासे वे (दुर्वासा) मुनि कृष्णके पास पहुँचे ॥ ६० ॥

उन्होंने श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणीको रथमें जोत दिया और उस रथपर स्वयं सवार होकर [उन्हें] हाँकने लगे। श्रीकृष्ण [एवं रुक्मिणी]-ने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस रथका वहन किया ॥ ६१ ॥

[ब्राह्मणके विषयमें] उन दोनोंकी इतनी बड़ी दृढ़ता देखकर रथसे उत्तरकर मुनिने प्रसन्न हो उन्हें बज्रके समान अंगवाला होनेका वर दिया ॥ ६२ ॥

हे मुने! एक समय गंगाजीमें स्नान करते हुए मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा नान हो गये थे; उस समय वे कौतुकी मुनि लज्जाका अनुभव करने लगे ॥ ६३ ॥

उस समय वहाँ स्नान कर रही द्रौपदीने यह जानकर अपना आँचल फाड़कर तथा उसे आदरपूर्वक प्रदान करके उनकी लज्जाको ढैंक दिया था ॥ ६४ ॥

इस प्रकार प्रवाहके द्वारा अपने समीप आये उस वस्त्रको लेकर वे मुनि अपने गुह्य अंगको उससे ढैंककर उस [द्रौपदी]-पर प्रसन्न हुए और उन्होंने द्रौपदीको उसके आँचलके बढ़नेका वर दिया। समय आनेपर उसी वरदानके प्रभावसे द्रौपदीने पाण्डवोंको सुखी बनाया ॥ ६५-६६ ॥

हंस एवं डिम्ब नामक महाखल कोई दो राजा थे। उन्होंने दुर्वासाका अनादर किया। तब इन्हीं दुर्वासाने श्रीकृष्णको सन्देश देकर उनका नाश करवाया ॥ ६७ ॥

उन्होंने पृथ्वीपर विशेषरूपसे ब्रह्मतेज और शास्त्रकी रीतिके अनुसार संन्यासपद्धतिकी स्थापना की ॥ ६८ ॥

उन्होंने अत्यन्त सुन्दर उपदेश देकर बहुतोंका उद्धार किया और विशेष रूपसे ज्ञान देकर बहुतोंको मुक्ति कर दिया ॥ ६९ ॥

इस प्रकार उन दुर्वासाने अनेक विचित्र चरित्र

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें दुर्वासाचरित-वर्णन नामक उनीशवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

किये। [दुर्वासाका] यह चरित्र श्रवण करनेवालेको धन, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है ॥ ७० ॥

जो दुर्वासाके इस चरित्रको प्रीतिपूर्वक सुनता है अथवा जो प्रसन्नतापूर्वक दूसरोंको सुनता है, वह इस लोकमें एवं परलोकमें सुखी रहता है ॥ ७१ ॥

बीसवाँ अध्याय

शिवजीका हनुमान्‌के रूपमें अवतार तथा उनके चरित्रका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! अब इसके पश्चात् शिवजीने जिस प्रकार हनुमान्‌जीके रूपमें अवतार लेकर मनोहर लीलाएँ कीं, उस हनुमचरित्रको प्रेमपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥

उन परमेश्वरने प्रेमपूर्वक [हनुमदूर्घट] श्रीरामका परम हित किया, हे विप्र! सर्वसुखकारी उस सम्पूर्ण चरित्रका श्रवण कीजिये ॥ २ ॥

एक बार अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले तथा सर्वगुणसम्पन्न उन भगवान् शिवने विष्णुके मोहिनी रूपको देखा ॥ ३ ॥

[उस मोहिनी रूपको देखते ही] कामबाणसे आहतकी भाँति शम्भुने अपनेको विश्वस्य कर दिया और उन ईश्वरने श्रीरामके कार्यके लिये अपने तेजका उत्सर्ग कर दिया ॥ ४ ॥

शिवजीके मनकी प्रेरणासे प्रेरित हुए सप्तर्षियोंने उनके तेजको रामकार्यके लिये आदरपूर्वक पत्तेपर स्थापित कर दिया ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् उन महर्षियोंने शम्भुके उस तेजको श्रीरामके कार्यके लिये गौतमकी कन्या अंजनीमें कानके माध्यमसे स्थापित कर दिया ॥ ६ ॥

समय आनेपर वह शम्भुतेज महान् बल तथा पराक्रमवाला और वानर शरीरवाला होकर हनुमान्‌के नामसे प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

वे महावलवान् कपीश्वर हनुमान् जब शिशु ही थे,

उसी समय प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्यबिम्बको छोटा फल जानकर निगल गये थे ॥ ८ ॥

तब देवताओंकी प्रार्थनासे उन्होंने सूर्यको उगल दिया। उन्हें महाबली शिवावतार जानकर देवताओं तथा ऋषियोंके द्वारा प्रदत्त वरोंको उन्होंने प्राप्त किया ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न हनुमान्‌जी अपनी माताके निकट गये और आदरपूर्वक उनसे वह वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १० ॥

इसके बाद माताकी आज्ञासे नित्यप्रति सूर्यके पास



जाकर धैर्यशाली हनुमान्‌जीने बिना यत्के ही उनसे सारी विद्याएँ पढ़ लीं ॥ ११ ॥

उसके बाद माताकी आज्ञा प्राप्तकर रुद्रके अंशभूत कपिश्रेष्ठ हनुमानजी सूर्यकी आज्ञासे [प्रेरित हो] सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुए सुग्रीवके पास गये। वे सुग्रीव अपने ज्येष्ठ भ्राता वालि, जिसने उनकी स्त्रीका बलात् हरण कर लिया था, तिरस्कृत हो रुद्रध्यमूक पर्वतपर हनुमानजीके साथ निवास करने लगे ॥ १२-१३ ॥

तब वे सुग्रीवके मन्त्री हो गये। शिवजीके अंशसे उत्पन्न परम बुद्धिमान् कपिश्रेष्ठ हनुमानजीने सब प्रकारसे सुग्रीवका हित किया। उन्होंने भाई [लक्ष्मण]-के साथ वहाँ आये हुए अपहृत पल्लीवाले दुखी रामके साथ उनकी सुखदायी मित्रता करवायी ॥ १४-१५ ॥

रामचन्द्रजीने भाईकी स्त्रीके साथ रमण करनेवाले, महापापी एवं अपनेको बीर माननेवाले कपिराज वालिका वध कर दिया ॥ १६ ॥

हे तात! तदनन्तर वे महाबुद्धिमान् वानरेश्वर हनुमान् रामचन्द्रजीकी आज्ञासे बहुतसे वानरोंके साथ सीताकी खोजमें लग गये ॥ १७ ॥

सीताको लंकामें विद्यमान जानकर वे कपीश्वर दूसरोंके द्वारा न लाँघे जा सकनेवाले उस समुद्रको बड़ी शीघ्रतासे लाँधकर वहाँ गये ॥ १८ ॥

वहाँ उन्होंने पराक्रमयुक्त अद्भुत कार्य किया और जानकीको प्रीतिपूर्वक अपने प्रभुका उत्तम [मुद्रिकारूप] चिह्न प्रदान किया। जानकीके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला रामवृत्त सुनाकर उन बीर वानरनायकने शीघ्र ही उनके शोकको दूर कर दिया ॥ १९-२० ॥

उन्होंने रावणकी अशोकवाटिका उजाइकर बहुत-से राक्षसोंका वध कर दिया; फिर सीतासे स्मरणचिह्न लेकर रामचन्द्रके पास लौटने लगे ॥ २१ ॥

उस समय महालीला करनेवाले उन्होंने अत्यन्त निर्भय होकर रावणके पुत्र तथा अनेक राक्षसोंको मारकर वहाँ लंकामें महान् उपद्रव किया ॥ २२ ॥

हे मुने! जब महाबलशाली रावणने तैलसे सने हुए वस्त्रोंको उनकी पूँछमें दृढ़तापूर्वक लपेटकर उसमें आग लगा दी, तब महादेवके अंशसे उत्पन्न हनुमानजीने इसी बहानेसे कूद-कूदकर समस्त लंकाको जला दिया ॥ २३-२४ ॥

तदनन्तर वे कपिश्रेष्ठ बीर हनुमान् [केवल] विभीषणके घरको छोड़कर सारी लंकाको जला करके समुद्रमें कूद पड़े ॥ २५ ॥

वहाँ अपनी पूँछ बुझाकर शिवके अंशसे उत्पन्न वे समुद्रके दूसरे किनारेपर आये और प्रसन्न होकर श्रीरामजीके पास गये ॥ २६ ॥

सुन्दर वेगवाले कपिश्रेष्ठ हनुमानजीने शीघ्रतापूर्वक श्रीरामके निकट जाकर उन्हें सीताजीकी चूँड़भाणि प्रदान की ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे वानरोंके साथ उन बलवान् तथा बीर हनुमानजीने अनेक विशाल पर्वतोंको लाकर समुद्रपर पुल बाँधा ॥ २८ ॥

तब पार जानेकी कामनावाले श्रीरामचन्द्रजीने विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे शिवलिंगको यथाविधि प्रतिष्ठितकर तदुपरान्त उसका पूजन किया ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने पूज्यतम शिवजीसे विजयका वरदान प्राप्त करके समुद्र पारकर वानरोंके साथ लंकाको घेरकर राक्षसोंसे युद्ध किया ॥ ३० ॥

उन बीर हनुमानने राक्षसोंका वध किया, श्रीरामचन्द्रजीकी सेनाकी रक्षा की तथा शक्तिसे घायल लक्षणको संजीवनी बूटीके द्वारा पुनः जीवित कर दिया ॥ ३१ ॥

इस प्रकार महादेवके पुत्र प्रभु उन हनुमानजीने लक्षणसहित श्रीरामजीको सब प्रकारसे सुखी बनाया और सम्पूर्ण सेनाकी रक्षा की ॥ ३२ ॥

महान् बल धारण करनेवाले उन कपिने बिना श्रमके परिवारसहित एवणका विनाश किया और देवताओंको सुखी बनाया ॥ ३३ ॥

उन्होंने महिरावण नामक राक्षसको मारकर लक्षणसहित रामकी रक्षा करके उसके स्थानसे उन्हें अपने स्थानपर ला दिया ॥ ३४ ॥

इस प्रकार उन कपिपुंगवने सब प्रकारसे श्रीरामका कार्य शीघ्र ही सम्पन्न किया, असुरोंका वध किया एवं नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं ॥ ३५ ॥

सीतारामको सुख देनेवाले वानरराजने स्वयं श्रेष्ठ भक्त होकर भूलोकमें रामभक्तिकी स्थापना की ॥ ३६ ॥

वे लक्षणके प्राणोंके रक्षक, सभी देवताओंका गर्व
चूर करनेवाले, रुद्रके अवतार, भगवत्स्वरूप और भक्तोंका
उद्धार करनेवाले थे ॥ ३७ ॥

वे हनुमानजी महाबीर, सदा रामका कार्य सिद्ध
करनेवाले, लोकमें रामदूतके रूपमें खिच्छात, दैत्योंका
संहार करनेवाले तथा भक्तवत्सल थे ॥ ३८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें हनुमदबतारचरित्र-
वर्णन नामक वीरसाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २० ॥

हे तात ! इस प्रकार मैंने हनुमानजीका श्रेष्ठ चरित्र
कहा, जो धन, यश, आयु तथा सम्पूर्ण कामनाओंका
फल देनेवाला है ॥ ३९ ॥

जो सावधान होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है
अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर
अन्तमें परम मोक्षको प्राप्त करता है ॥ ४० ॥

इककीसवाँ अध्याय

शिवजीके महेशावतार-वर्णनक्रममें अम्बिकाके शापसे धैर्यका

वेतालरूपमें पृथ्वीपर अवतरित होना

नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! हे ब्रह्मपुत्र ! अब शिवजीके
एक और श्रेष्ठ अवतारको प्रतिपूर्वक सुनिये, जो सुननेवालोंकी
सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥ १ ॥

हे मुनिशार्दूल ! एक बार परमेश्वर शिव एवं
गिरिजा अपनो इच्छासे विहार करनेके लिये तप्तर हुए।
धैर्यको द्वारपालके रूपमें स्थापितकर वे भीतर आ गये
और अनेक सदियोंसे प्रेमपूर्वक सेवित हो मनुष्यके
सपान लीला करने लगे ॥ २-३ ॥

हे मुने ! इस प्रकार वहाँ बहुत कालतक विहारकर
अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले तथा स्वतन्त्र वे दोनों
ही परमेश्वर परम प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

तदनन्तर परम स्वतन्त्र वे शिवा लीलावशात् उन्मत्त
वेषमें शिवजीकी आज्ञासे द्वारपर आयी ॥ ५ ॥

तब उन देवीको [साधारण] नारीकी दृष्टिसे
देखकर उनके [उस उन्मत्त] रूपसे भ्रमित हुए धैर्यने
उन्हें बाहर जानेसे रोका ॥ ६ ॥

हे मुने ! जब धैर्यने [देवीको एक सामान्य] नारीकी दृष्टिसे देखा, तब वे देवी शिवा क्रोधित हो गयी
और उन अम्बिकाने उन्हें शाप दे दिया ॥ ७ ॥

शिवा बोलीं—हे पुरुषाध्यम ! हे धैर्य ! तुम मुझे
[सामान्य] स्त्रीकी दृष्टिसे देख रहे हो, इसलिये तुम

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें महेशावतारवर्णननामक
इककीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २१ ॥

पृथ्वीपर मनुष्यरूप धारण करो ॥ ८ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! इस प्रकार जब पार्वतीने
धैर्यको शाप दे दिया, तब महान् हाहाकार मच गया।
[पार्वतीकी इस] लीलासे धैर्य अत्यन्त दुखी हुए ॥ ९ ॥

हे मुनीश्वर ! इसके बाद अनेकविध अनुनय-
विनयमें प्रवीण श्रीशिवजीने शीघ्रतासे वहाँ आकर धैर्यको
आशवस्त किया। हे मुने ! तब उस शापसे एवं शिवजीकी
इच्छासे वे धैर्य पृथ्वीपर मनुष्ययोनिमें वेताल नामसे
उत्पन्न हुए ॥ १०-११ ॥

उनके स्नेहसे लौकिक गतिका आश्रय ग्रहणकर
उत्तम लीलाओंवाले वे प्रभु शिवजी भी पार्वतीके साथ
पृथ्वीपर अवतरित हुए ॥ १२ ॥

हे मुने ! शिवजी महेश नामसे तथा पार्वतीजी शारदा
नामसे प्रसिद्ध हुई और नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेमें
प्रवीण वे दोनों प्रेमपूर्वक उत्तम लीला करते रहे ॥ १३ ॥

हे तात ! इस प्रकार मैंने शिवजीके उत्तम चरित्रका
वर्णन आपसे किया, जो धन, यश, आयु तथा सभी
कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य
सावधानचित्त होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा
सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर
अन्तमें मुक्तिको प्राप्त कर लेता है ॥ १४-१५ ॥

बाईसवाँ अध्याय

शिवके वृषेश्वरावतार-वर्णनके प्रसंगमें समुद्रमन्थनकी कथा

नन्दीश्वर बोले—हे ब्रह्मसुत ! हे प्राज्ञ ! हे मुनीश्वर ! अब आप भगवान् विष्णुके अहंकारको नष्ट करनेवाले तथा श्रेष्ठ लीलासे परिपूर्ण शिवजीके वृषेश्वर नामक उत्तम अवतारको सुनें ॥ १ ॥

पूर्व समयमें जरा एवं मृत्युसे भयभीत हुए देवताओं एवं असुरोंने आपसमें सन्धिकर समुद्रसे रत्न ग्रहण करनेका विचार किया ॥ २ ॥

हे मुनिनन्दन ! तदनन्तर सभी देवता और असुर समुद्रमें श्रेष्ठ क्षीरसागरको मथनेके लिये उड़ात हुए ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! मधुर मुसकानवाले सभी देवता तथा असुर अपनी कार्यसिद्धिके लिये विचार करने लगे कि किस उपायसे उस क्षीरसागरका मन्थन किया जाय ॥ ४ ॥

तब मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त आकाशवाणी शिवजीकी आज्ञासे देवताओं तथा असुरोंको आश्वस्त करती हुई कहने लगी— ॥ ५ ॥

आकाशवाणी बोली—हे देवगणो ! हे असुरो ! आपलोग क्षीरसागरका मन्थन कीजिये, [इस कार्यके लिये] आपलोगोंको बल और बुद्धिकी प्राप्ति होगी, इसमें सद्देह नहीं है ॥ ६ ॥

आपलोग मन्दराचलपर्वतको मथानी एवं वासुकि नागको रस्सी बनाइये और सभी लोग आपसमें मिलकर आदरपूर्वक मन्थन कीजिये ॥ ७ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनिसत्तम ! तब [इस प्रकारकी] आकाशवाणी सुनकर सभी देवता तथा असुर ऐसा करनेके लिये प्रयत्न करने लगे ॥ ८ ॥

वे सब आपसमें मिलकर सोनेके समान कान्तिवाले, ऋजुकाय तथा नाना प्रकारकी शोभासे सम्पन्न पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचलके समीप गये ॥ ९ ॥

उस गिरीश्वरको प्रसन्न करके तथा उसकी आज्ञा प्राप्तकर उसे क्षीरसागरमें ले जानेकी इच्छावाले देवताओं तथा असुरोंने बलपूर्वक उसे उखाड़ लिया ॥ १० ॥

हे मुने ! अपनी भुजाओंसे [मन्दराचलको] उखाड़कर वे सब क्षीरसागरके पास जाने लगे, किंतु क्षीण बलवाले

वे उसे ले जानेमें असमर्थ हो गये ॥ ११ ॥

अत्यन्त भारी वह मन्दराचल अक्समात् उनकी भुजाओंसे कूटकर शीघ्र ही देवताओं और दैत्योंके ऊपर गिर पड़ा ॥ १२ ॥

तब भग्न उद्यमवाले देवता तथा असुर आहत हो गये, फिर [कुछ समय बाद] चेतना प्राप्तकर जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥

इसके बाद जगदीश्वरकी इच्छासे उद्यत हुए उन सबने उस पर्वतको पुनः उठाकर क्षीरसागरके उत्तरी तटपर ले जाकर जलमें डाल दिया ॥ १४ ॥

तदनन्तर रत्न प्राप्त करनेकी इच्छावाले देवता तथा असुर वासुकि नागकी रस्सी बनाकर क्षीरसागरका मन्थन करने लगे ॥ १५ ॥

क्षीरसागरका मन्थन किये जानेपर स्वर्गलोककी महेश्वरी भूगुपत्री हरिप्रिया महालक्ष्मी समुद्रसे प्रकट हुई । उसके बाद धन्वन्तरि, चन्द्रमा, पारिजात कल्पवृक्ष, उच्चःश्रावा घोड़ा, ऐरावत हाथी, सुरा, विष्णुका शार्णुर्धुषु, शंख, कामधेनु, गोवृन्द, कौस्तुभमणि तथा अमृत उत्पन्न हुए । पुनः मथे जानेपर प्रलयकालीन अग्निके समान कान्तिवाला और देवताओं तथा असुरोंको भय उत्पन्न करनेवाला कालकूट नामक महाविष उत्पन्न हुआ ॥ १६—१९ ॥

अमृत उत्पन्न होनेके समय उसकी जो बैंदूं बाहर छलक पड़ी, उनसे अद्युत दर्शनवाली बहुत-सी स्त्रियाँ प्रकट हुई । वे शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, विजली, सूर्य तथा अग्निके समान प्रभावाली और हार, बाजूबन्द, कटक तथा दिव्य रत्नोंसे अलंकृत थीं । वे अपने सौन्दर्यरूपी अमृतजलसे दसों दिशाओंको सौंच रही थीं और अपने भ्रूविलासके कारण विस्तीर्ण नेत्रोंवाली वे संसारको उन्मत्त कर रही थीं । इस प्रकार उन अमृतकी बैंदूंसे स्वेच्छया करोड़ों स्त्रियाँ निकलीं । तदनन्तर जरा और मृत्युको दूर करनेवाला अमृत उत्पन्न हुआ ॥ २०—२३ ॥

लक्ष्मी, शंख, कौस्तुभमणि एवं खड्गको श्रीविष्णुने ग्रहण किया। सूर्यने बड़े आदरके साथ दिव्य उच्चैः श्रवा नामका घोड़ा ले लिया। देवताओंके स्वामी शचीपति इन्द्रने अत्यन्त आदरपूर्वक वृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजात एवं हथियोंके राजा ऐरावतको ग्रहण किया ॥ २४-२५ ॥

भक्तवत्सल तथा कल्याणकारी शिवजीने देवताओंकी रक्षाके लिये कण्ठमें [महाभयंकर] कालकूट विषको तथा चन्द्रमाको [मस्तकपर] स्वेच्छासे धारण किया ॥ २६ ॥

ईश्वरकी मायासे मोहित हुए दैत्योंने आनन्द प्रदान करनेवाली मदिरा ग्रहण की। फिर हे व्यास! सभी मनुष्योंने धन्वन्तरि वैद्यको ग्रहण किया ॥ २७ ॥

सभी मुनियोंने कामधेनुको ग्रहण किया और मोहित करनेवाली वे स्त्रियाँ सामान्य रूपसे स्थित रहीं ॥ २८ ॥

विजयकी अभिलाषावाले तथा व्याकुल चित्तवाले देवताओं एवं राक्षसोंमें अमृतके लिये परस्पर महान् युद्ध हुआ ॥ २९ ॥

हे व्यास! प्रलयकालीन अग्नि तथा सूर्यके समान महान् तेजस्वी बलि आदि दैत्योंने बलपूर्वक देवगणोंको जीतकर उनसे अमृत छीन लिया ॥ ३० ॥

हे तात! तदनन्तर शिवकी मायासे दैत्योंके द्वारा बलपूर्वक पीड़ित किये गये इन्द्रादि सभी देवता व्याकुल होकर शिवजीकी शरणमें आये। हे मुने! तब शिवजीकी आज्ञासे विष्णुने मायासे स्त्रीरूप धारणकर बड़े यत्से दैत्योंसे उस अमृतको छीन लिया ॥ ३१-३२ ॥

तत्पश्चात् मायावियोंमें श्रेष्ठ मोहिनी स्त्रीरूपधारी विष्णुने समस्त दैत्योंको मोहितकर वह अमृत देवगणोंको पिला दिया ॥ ३३ ॥

तब उस [मोहिनी रूपवाली] स्त्रीके पास जाकर उन श्रेष्ठ दैत्योंने कहा—इस सुधाको हम सभी दैत्योंको भी पिलाओ, जिससे किसी प्रकारका पंक्तिभेद न हो ॥ ३४ ॥

ऐसा कहकर शिवमायासे मोहित हुए उन सभी दैत्यों एवं दानवोंने कपटरूपधारी उन विष्णुको वह अमृत दे दिया ॥ ३५ ॥

इसी बीच वे वरिष्ठ दैत्य अमृतसे उत्पन्न स्त्रियोंको देखकर उन्हें सुखपूर्वक यथास्थान ले गये ॥ ३६ ॥

उन स्त्रियोंके नगर स्वर्गसे भी सौ गुने मनोहर, मयदानवकी मायासे विनिर्मित तथा सुदृढ़ यन्त्रोंसे सुरक्षित थे। उन सभीको सुरक्षित करके उनका आलिंगन किये बिना ही वे दैत्य प्रतिज्ञा करके युद्धहेतु निकल पड़े। यदि देवगण हमें जीत लेंगे तो हम इन स्त्रियोंका स्पर्श भी नहीं करेंगे—ऐसा कहकर युद्धकी इच्छावाले वे समस्त महाबीर दैत्य आकाशको पूरित—सा करते हुए तथा मेधोंको तृप्त [—सा] करते हुए पृथक्-पृथक् सिंहनाद करने लगे और शंख बजाने लगे ॥ ३७-४० ॥

देवगणोंका असुरोंके साथ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध देवासुर नामक भयानक संग्राम हुआ ॥ ४१ ॥

[उस संग्राममें] विष्णुके द्वारा सब प्रकारसे रक्षित सभी देवताओंकी विजय हुई। बहुत—से दैत्य देवताओं और विष्णुके द्वारा मार डाले गये और शेष दैत्य भाग गये। कुछ दैत्योंको देवताओं तथा महात्मा विष्णुने मोहित कर दिया। जो मरनेसे बचे, वे पाताल एवं [पृथक्-वैके] विवरोंमें प्रवेश कर गये ॥ ४२-४३ ॥

महाबली विष्णुने हाथमें चक्र लेकर अत्युर्याम पातालमें जाकर भयभीत होकर स्थित हुए उन दैत्योंका पीछा किया ॥ ४४ ॥

इसी बीच विष्णुने वहाँपर अमृतसे उत्पन्न हुई पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली तथा दिव्य सौन्दर्यसे गर्वित स्त्रियोंको देखा और वे मोहित होकर वहाँपर उन श्रेष्ठ स्त्रियोंके साथ विहार करने लगे तथा उन्होंने वहाँ शान्ति प्राप्त की ॥ ४५-४६ ॥

विष्णुने उन स्त्रियोंसे श्रेष्ठ पराक्रमवाले तथा युद्ध करनेमें निपुण अनेक पुत्र उत्पन्न किये, जिनके बलसे सारी पृथ्वी काँप उठती थी। तत्पश्चात् महाबलवान् एवं पराक्रमी वे विष्णुपुत्र सम्पूर्ण पृथ्वीको कम्पित करते हुए स्वर्गलोक तथा भूलोकमें दुःखद महान् उपद्रव करने लगे ॥ ४७-४८ ॥

सारे संसारमें उनका [इस प्रकारका] उपद्रव देखकर मुनियों एवं देवताओंने ब्रह्माको प्रणामकर उनसे निवेदन किया ॥ ४९ ॥

यह सुनकर ब्रह्मजी उन्हें साथ लेकर कैलास पर्वतपर गये। वहाँ प्रभु शिवजीको देखकर विनम्र भावसे

अंजलि बाँधे हुए उन्होंने बारंबार प्रणाम किया तथा हे देव! हे महादेव! हे सर्वस्वामिन्। आपकी जय हो— ऐसा कहते हुए अनेक स्तुतियोंके द्वारा उनकी स्तुति की ॥ ५०-५१ ॥

ब्रह्मा बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे प्रभो! पातालमें स्थित, विकारयुक्त तथा उपद्रवी विष्णुपुत्रोंसे [सन्त्रस्त] सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा कीजिये ॥ ५२ ॥

हे विभो! विकारसे ग्रस्त होकर विष्णुजी अमृतसे

// इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें विष्णुद्वव्वतारवर्णन नामक बईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २२ //

तईसवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा भगवान् शिवके वृषभेश्वरावतारका स्तवन

नन्दीश्वर बोले—तब वृषभका रूप धारणकर गर्जन तथा भीषण ध्वनि करते हुए पिनाकधारी शिवजीने उस [पातालके] विवरमें प्रवेश किया ॥ १ ॥

उनके निनादसे पुर और नगर सभी गिरने लगे एवं सभी नगरवासियोंको कँपकँपी होने लगी ॥ २ ॥

उसके बाद वृषभरूप धारण करनेवाले शिवजी महेश्वरकी मायासे मोहित महान् बल तथा पराक्रमवाले और संग्रामके लिये धनुष उठाये हुए विष्णुपुत्रोंके सम्मुख पहुँचे ॥ ३ ॥

हे मुनिसत्तम! तब वे बीर विष्णुपुत्र कुपित हो उठे और जोर-जोरसे गर्जन करके शिवजीके सामने दौड़े ॥ ४ ॥

वृषभरूपधारी महादेव भी [अपने सामने] आये हुए विष्णुपुत्रोंपर कुपित हो उठे और खुरों तथा शृंगोंसे उन्हें विदीर्ण करने लगे ॥ ५ ॥

शिवजीके द्वारा क्षत-विक्षत किये गये शरीरवाले वे सभी मूढ़ विष्णुपुत्र शीघ्र ही प्राणरहित हो विनष्ट हो गये ॥ ६ ॥

उन पुत्रोंके मारे जानेपर बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णु [पाताल-विवरसे] शीघ्र बाहर निकलकर जोरसे गर्जना करके शिवजीके निकट जा पहुँचे ॥ ७ ॥

पुत्रोंको मारकर जाते हुए वृषभरूपधारी शिवजीको

उत्पन्न स्त्रियोंमें आसक्तिचित्त होकर इस समय पातालमें स्थित हैं और उनके साथ स्थित हैं ॥ ५३ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार लोकसंरक्षणके लिये तथा पातालसे विष्णुको लानेके निमित्त ऋषियोंसहित देवताओं तथा ब्रह्माने शिवजीकी बहुत स्तुति की ॥ ५४ ॥

तदनन्तर कृपासन्धु भगवान् महेश्वर शिवने उस उपद्रवका वृत्तान्त जानकर वृषभका रूप धारण कर लिया ॥ ५५ ॥

// इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें विष्णुद्वव्वतारवर्णन नामक बईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २२ //

देखकर विष्णुने बाणों तथा दिव्यास्त्रोंसे उनपर प्रहार किया ॥ ८ ॥

तब महाबलवान् कैलासनिवासी वृषभरूपधारी शिवने कुद्ध होकर विष्णुके उन अस्त्रोंको निगल लिया ॥ ९ ॥

हे मुने! इसके बाद वृषभरूपधारी उन महेश्वरने अत्यन्त क्रोधकर तीनों लोकोंको कँपाते हुए महाघोर गर्जना की ॥ १० ॥

क्रोधमें उन्मत्त हुए और अज्ञानवश [शिवजीको] अपना ईश्वर न माननेवाले विष्णुको बड़े बेगसे कूद-कूदकर अपने साँगों तथा खुरोंसे उन्होंने विदीर्ण कर दिया ॥ ११ ॥

तब मायासे विमोहित हुए विष्णु शिवजीके प्रहारको सहनमें असमर्थ होकर शीघ्र ही शिथिल मनवाले तथा व्यथित शरीरवाले हो गये ॥ १२ ॥

विष्णुका सारा गर्व चूर हो गया, वे चेतनाशून्य होकर मूर्छित हो गये, तब उन्होंने वृषभरूपधारी शिवजीको जाना ॥ १३ ॥

इसके बाद वृषभरूपसे आये हुए शिवजीको पहचानकर विष्णुजी हाथ जोड़कर सिर झुकाकर गम्भीर वाणीमें कहने लगे— ॥ १४ ॥

विष्णुजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे महेश्वर! आपकी मायासे

मोहित होनेके कारण मेरी बुद्धि विकृत हो गयी थी । हे प्रभो ! हे स्वामिन् ! मैंने अपने स्वामी आप शिवसे जो युद्ध किया, आप मुझपर कृपा करके उस अपराधको क्षमा कीजिये ॥ १५-१६ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! उन विष्णुकी दीनतापूर्ण यह बात सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने विष्णुसे कहा— ॥ १७ ॥

हे विष्णो ! हे महाबुद्धे ! आपने मुझे क्यों नहीं पहचाना ? आपका सारा ज्ञान किस प्रकार विस्मृत हो गया, जिसके कारण आज आपने मेरे साथ युद्ध किया ? ॥ १८ ॥

आपने अपनेको मेरे अधीन पराक्रमवाला क्यों नहीं समझा ? अब आप पुनः ऐसा न कीजिये और इस कृत्यसे विरत हो जाइये ॥ १९ ॥

आप इन स्त्रियोंमें आसक्त होकर विहार कर रहे हैं; भला कामी पुरुषको ज्ञान किस प्रकार रह सकता है ? हे देवेश ! यह आपके लिये उचित नहीं है, क्योंकि आपका स्मरण तो विश्वका तारण करनेवाला है ॥ २० ॥

शिवजीके इस विज्ञानप्रद वचनको सुनकर मन-हो-मन लजित होते हुए विष्णु आदरपूर्वक शिवजीसे यह वचन कहने लगे— ॥ २१ ॥

विष्णुजी बोले—हे प्रभो ! यहाँ मेरा सुदर्शन चक्र है, इसे लेकर आपकी आज्ञाका आदरपूर्वक पालन करनेवाला मैं [अब] अपने लोकको जाक़ूंगा ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर बोले—तब वृषभरूपधारी धर्मरक्षक महेश्वर शिवने उस वचनको सुनकर विष्णुसे पुनः कहा— ॥ २३ ॥

हे हरे ! इस समय आप देर न कीजिये और मेरी आज्ञासे शीघ्र ही यहाँसे अपने लोक चले जाइये; चक्रको यहाँ रहने दीजिये ॥ २४ ॥

हे विष्णो ! मैं आपके कल्याणकारी वचनोंसे प्रसन्न होकर ज्योतिर्मय सान्तानिक लोकमें स्थित, इससे भिन्न एक दूसरा चक्र प्रदान करता हूँ, जो अत्यन्त भयंकर है ॥ २५ ॥

[नन्दीश्वर बोले—] ऐसा कहकर शिवजीने दिव्य

कालान्तिके समान देवीप्यमान, अत्यन्त प्रज्वलित एवं दुष्टोंका नाश करनेवाला चक्र प्रकट किया और दस हजार सूर्योंकी-सी कान्तिवाले उस महाभयानक चक्रको सभी देवताओं एवं मुनियोंके रक्षक महात्मा विष्णुको प्रदान किया ॥ २६-२७ ॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विष्णुने अत्यन्त दीपिमान् उस दूसरे सुदर्शनचक्रको प्राप्तकर वहाँ [स्थित] देवगणोंसे कहा—आप सभी श्रेष्ठ देवतागण आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये और वैसा ही शीघ्र कीजिये; उसीसे आपलोगोंका कल्याण होगा ॥ २८-२९ ॥

पाताललोकमें स्थित उन दिव्य स्त्रियोंका वरण स्वेच्छासे आप लोग करें ॥ ३० ॥

विष्णुके उस वचनको सुनकर सभी शूर देवता उन विष्णुके साथ पातालमें प्रविष्ट होनेकी इच्छा करने लगे ॥ ३१ ॥

तब भगवान् शिवने देवताओंके इस विचारको जानकर ओढ़पूर्वक अष्टविध देवयोनियोंको घोर शाप दे दिया ॥ ३२ ॥

हर बोले—मेरे अंशसे उत्पन्न हुए शान्त मुनि [कपिलजी] एवं दानवोंको छोड़कर जो इस स्थानमें प्रवेश करेगा, उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी ॥ ३३ ॥

मनुष्योंके हितको बढ़ानेवाले शिवजीके इस घोर वाक्यको सुनकर तथा उनके द्वारा निषेध करनेपर देवतागण अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ३४ ॥

हे व्यास ! इस प्रकार भगवान् शिवने अपनी मायके प्रभावसे उनमें आसक्त हुए भगवान् विष्णुको अनुशासित किया और तब विष्णु देवलोकको चले गये तथा संसार सुखी हो गया ॥ ३५ ॥

इस प्रकार देवताओंका कार्य करके वृषभरूपधारी भक्तवत्सल भगवान् शिव अपने स्थान कैलासपर्वतपर चले गये ॥ ३६ ॥

[हे सनतकुमार !] मैंने शिवजीके वृषभरूपवतारक वर्णन कर दिया, जो विष्णुके अज्ञानका हरण करनेवाला, कल्याणकारक तथा तीनों लोकोंको सुख प्रदान करनेवाला है। यह आख्यान परम पवित्र, श्रेष्ठ, शत्रुबाधाको दूर

करनेवाला और सज्जनोंको स्वर्ग, यश, आगु, भोग तथा मोक्ष देनेवाला है। जो भक्तिके साथ सावधान होकर इसे सुनता है अथवा सुनाता है और जो इसे पढ़ता है

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें बृहेश्वरसंज्ञक शिवावतारवर्णन नामक तईसवाँ अच्छाय पूर्ण दुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके पिप्पलादावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! अब आप महेश्वरके पिप्पलाद नामक भक्तिवर्धक अन्य अवतारको अत्यन्त प्रसन्नतासे सुनिये ॥ १ ॥

महाप्रातापी, भृगुवंशमें उत्पन्न, महान् शिवभक्त तथा मुनिश्रेष्ठ जिन च्यवनपुत्र विप्र दधीचिके विषयमें मैं पहले कह चुका हूँ और जिन्होंने क्षुवके साथ युद्धमें विष्णुको पराजित किया तथा महेश्वरकी कृपा प्राप्तकर देवताओंसहित विष्णुको शाप दिया था; उनकी सुवर्चा नामक महाभाग्यवती, महापत्रिवता एवं साध्वी पत्नी थीं, जिन्होंने देवताओंको शाप दिया था। उन मुनिसे उन्हीं सुवर्चके गर्भसे अनेक लीलाएँ करनेमें प्रवीण तेजस्वी महादेव पिप्पलाद—इस नामसे उत्पन्न हुए ॥ २—५ ॥

सूतजी बोले—नन्दीश्वरके इस अद्भुत वचनको सुनकर हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर मुनिश्रेष्ठ सनक्तुमार कहने लगे ॥ ६ ॥

सनक्तुमार बोले—हे महाप्राज्ञ! हे नन्दीश्वर! हे तात! आप साक्षात् शिवस्वरूप हैं, आप धन्य हैं तथा आप ही सदगुरु हैं, जो कि आपने यह अद्भुत कथा सुनायी है ॥ ७ ॥

हे शिलादपुत्र! हे तात! क्षुवके साथ संग्राममें विष्णुको जिस प्रकार शिवभक्त दधीचिने पराजित किया था तथा उन्हें शाप दिया था, उस कथाको मैंने पहले ब्रह्माजीसे सुना था ॥ ८ ॥

अब मैं [पहले] सुवर्चके द्वारा देवताओंको दिये गये शाप [के वृत्तान्तको] तथा बादमें कल्याणके निवासभूत पिप्पलादचरित्रिको सुनना चाहता हूँ ॥ ९ ॥

सूतजी बोले—तत्पश्चात् ब्रह्मपुत्र सनक्तुमारका

तथा बुद्धिमान् मनुष्योंको पढ़ाता है, वह [इस लोकमें] समस्त सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ३७—३९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें बृहेश्वरसंज्ञक शिवावतारवर्णन

नामक तईसवाँ अच्छाय पूर्ण दुआ ॥ २३ ॥

यह शुभ वचन सुनकर शिवजीके चरणकमलका ध्यानकर शिलादपुत्र प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे ॥ १० ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! किसी समय इन्द्रादि सभी देवताओंको वृत्रासुरकी सहायतासे दैत्योंने पराजित कर दिया ॥ ११ ॥

तब उन सभी देवताओंने सहसा दधीचि मुनिके आश्रममें अपने श्रेष्ठ अस्त्रोंको फेंक दिया और तत्काल पराजय स्वीकार कर ली। इसके बाद शीघ्र ही इन्द्र आदि सभी पीड़ित देवता एवं ऋषिगण ब्रह्मलोक गये तथा अपना वह दुःख निवेदित किया ॥ १२—१३ ॥

देवताओंके वचनको सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने उनसे त्वष्टाका साग मन्त्रव्य यथार्थ रूपसे कह दिया ॥ १४ ॥

[ब्रह्माजी बोले—] हे देवताओ! त्वष्टाने अपनी तपस्याके प्रभावसे आपलोगोंका वध करनेके लिये इसे उत्पन्न किया है; सम्पूर्ण दैत्योंका स्वामी यह वृत्र महान् तेजस्वी है ॥ १५ ॥

अतः आप लोग वैसा प्रयत्न कीजिये, जिस प्रकार इसका वध हो सके। हे प्राज्ञ! मैं धर्मकी रक्षाके लिये वह उपाय आपको बता रहा हूँ; आप उसे सुनें ॥ १६ ॥

जो जितेन्द्रिय तथा तपस्वी दधीचि नामक महामुनि हैं, उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी आराधनाकर वज्रके समान हड्डियोंवाला होनेका बरदान पाया था ॥ १७ ॥

आपलोग [उनके पास जाकर] अस्थियोंके लिये याचना कीजिये, वे अवश्य दे देंगे; इसमें संशय नहीं है। इसके बाद उन अस्थियोंसे दण्डवत्त्रका निर्माणकर निःसन्देह वृत्रासुरका वध कीजिये ॥ १८ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] ब्रह्माका यह वचन

सुनकर देवगुरु बृहस्पति तथा देवताओंको साथ लेकर इन्द्र शीघ्र ही दधीचि ऋषिके उत्तम आश्रमपर आये ॥१॥

वहाँ सुवर्चासहित मुनिको बैठे देखकर गुरु एवं देवताओंसहित इन्द्रने हाथ जोड़कर विनम्र हो आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया ॥२॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उन मुनिने उनका अभिप्राय जानकर पल्ली सुवर्चाको आश्रमके भीतर भेज दिया ॥३॥

तत्पश्चात् देवताओंसहित देवराज इन्द्रने, जो स्वार्थसाधनमें बड़े दक्ष थे, अपने प्रयोजनमें तत्पर हो करके मुनीश्वरसे यह वाक्य कहा— ॥२॥

शक्त बोले—[हे मुने!] हम देवताओं तथा ऋषियोंको यह त्वष्टा बड़ा दुःख दे रहा है। इसलिये हमलोग महाशिवभक्त, शरणागतवत्सल तथा महादानी आपकी शरणमें आये हुए हैं ॥३॥

विप्र! आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान कीजिये; क्योंकि हमलोग आपकी हड्डियोंसे वज्रका निर्माणकर देवद्रोही वृत्रासुरका वध करना चाहते हैं ॥४॥

इन्द्रके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परोपकारपरायण उन मुनिने अपने स्वामी शिवका ध्यान करके [अपना] शरीर छोड़ दिया ॥५॥

वे मुनि कर्मबन्धनसे छुटकारा पाकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक चले गये। उस समय वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी और सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये ॥६॥

तदनन्तर इन्द्रने शीघ्र ही सुरभि गौको बुलाकर उसके द्वारा उन्हें चटवाया और उनकी अस्थियोंसे अस्त्र-निर्माण करनेके निमित्त विश्वकर्माको आज्ञा प्रदान की ॥७॥

उनकी आज्ञा प्राप्त करके विश्वकर्माने शिवजीके तेजसे अत्यन्त दृढ़ वज्रमयी उन अस्थियोंसे सम्पूर्ण अस्त्रोंका निर्माण कर दिया ॥८॥

उन्होंने उनकी रीढ़की हड्डियोंसे वज्र तथा ब्रह्म-शिर नामक बाणका निर्माण किया और अन्य अस्थियोंसे अपने तथा दूसरोंके लिये अनेक अस्त्रोंका निर्माण किया ॥९॥

हे मुने! तदनन्तर शिवजीके तेजसे बुद्धिको प्राप्त

इन्द्र उस वज्रको उठाकर बड़े वेगसे वृत्रासुरपर क्रोध करके इस प्रकार दौड़े, मानो रुद्र यमकी ओर दौड़ रहे हों ॥३॥

इसके बाद उन इन्द्रने भलीभाँति सन्नद्ध होकर शीघ्रतासे उस वज्रके द्वारा उत्साहपूर्वक पर्वतशिखरके समान वृत्रासुरका सिर काट दिया ॥३॥

हे तात! उस समय देवताओंको महान् प्रसन्नता हुई। देवता लोग इन्द्रकी सुन्ति करने लगे और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥३॥

हे तात! मैंने प्रसंगवश आपसे इस चरित्रका वर्णन किया। अब आप मुझसे शिवजीके पिप्पलाद-अवतारको आदरपूर्वक सुनिये ॥३॥

महात्मा मुनि दधीचिकी पतिव्रता पल्ली सुवर्चा पतिकी आज्ञासे अपने आश्रमके भीतर चली गयी थीं। हे मुनिश्रेष्ठ! पतिकी आज्ञासे [घरमें] जाकर सम्पूर्ण गृहकार्य करके जब वे तपस्विनी पुनः लौटीं, तो अपने पतिको वहाँ न देखकर और उन देवताओंको तथा उनके अत्यन्त अशोभनीय कर्मको देखती हुई वे सुवर्चा विस्मित हो गयीं ॥३४—३६॥

देवताओंके उस सम्पूर्ण कृत्यको जानकर उस साध्वीने उस समय महान् कोप किया। इसके बाद ऋषिवरकी पल्ली सुवर्चाने अत्यधिक रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया ॥३७॥

सुवर्चा बोलीं—हे देवगणो! तुमलोग अत्यन्त दुष्ट, अपना कार्य साधनेमें दक्ष, अज्ञानी और लोभी हो, इसलिये इन्द्रसहित सभी देवता आजसे पशु हो जायें—ऐसा उन्होंने कहा ॥३८॥

इस प्रकार उन तपस्विनी मुनिपल्ली सुवर्चाने इन्द्रसहित उन सभी देवताओंको शाप दे दिया ॥३९॥

उसके बाद उन मनस्विनी पतिव्रताने अपने पतिके लोकमें जानेकी इच्छा की और अत्यन्त पवित्र काष्ठोंकी चिता बनायी ॥४०॥

उसी समय उन्हें आश्वस्त करती हुई शिवप्रेरित तथा सुखदायिनी आकाशवाणीने मुनिपल्ली उन सुवर्चासे कहा— ॥४१॥

आकाशवाणी बोली—हे प्राज्ञ! तुम दुःसाहस मत करो, मेरे उत्तम वचनको सुनो। तुम्हरे उदरमें [गर्भरूपसे] मुनिका तेज विद्यमान है; तुम उसे प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न करो। हे देवि! उसके बाद तुम अपना अधीष्ट कार्य कर सकती हो; क्योंकि सगर्भाको सती नहीं होना चाहिये—ऐसी वेदकी आज्ञा है॥ ४२-४३ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी। तब उसे सुनकर वे मुनिकी पत्नी क्षणभरके लिये विस्मित हो गयी॥ ४४ ॥

तदनन्तर पतिलोक जानेकी इच्छा करती हुई महासाध्वी सुवर्चनि वैठकर पत्थरसे अपने पेटको फाड़ दिया॥ ४५ ॥

उनके उदरसे परम दिव्य शरीरवाला तथा कान्तिमान् वह मुनिपुत्र दशों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ निकला। हे तात! दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत हुआ वह पुत्र अपनी लीला करनेमें समर्थ साक्षात् रुद्रका अवतार था॥ ४६-४७ ॥

मुनिपत्नी सुवर्चा अपने उस दिव्य रूपवान् पुत्रको देखकर और मनमें उसे साक्षात् रुद्रका अवतार समझकर बहुत प्रसन्न हुई। हे मुनीश्वर! उन महासाध्वीने शीघ्र ही प्रणामकर उसकी स्तुति की और उसके स्वरूपको अपने हृदयमें स्थापित कर लिया॥ ४८-४९ ॥

तत्पश्चात् पतिलोक जानेकी इच्छावाली विमलेक्षणा माता सुवर्चा हँसकर अपने उस पुत्रसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहने लगी—॥ ५० ॥

सुवर्चा बोली—हे तात! हे परमेशान! हे महाभाग! तुम बहुत समयतक इस पीपलवृक्षके समीप रहो और सबको सुखी बनाओ; अब मुझे पतिलोक जानेके लिये अति प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान करो, वहाँ रहती हुई मैं [अपने] पतिके साथ तुझ रुद्रस्वरूपका ध्यान करती रहूँगी॥ ५१-५२ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार साध्वी सुवर्चनि अपने पुत्रसे ऐसा कहकर परम समाधिद्वारा पतिका ही अनुगमन किया॥ ५३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीया शतरुद्रसंहितामें पिप्पलादावतारवर्णन नामक
चौंकीसत्त्वां अद्याय पूर्ण हुआ॥ २४ ॥

हे मुने! इस प्रकार वे दधीचिपत्नी [सुवर्चा] शिवलोकमें जाकर अपने पतिके साथ निवास करने लगीं और आनन्दपूर्वक शिवजीकी सेवा करने लगीं॥ ५४ ॥

इसी अवसरपर इन्द्रसंहित देवगण मुनियोंके साथ आमन्त्रित हुएके समान प्रसन्न होकर बड़ी शीघ्रतासे वहाँ आये॥ ५५ ॥

दधीचिके द्वारा सुवर्चकी गर्भसे [पुत्ररूपमें] पृथ्वीपर शिवजीको अवतरित हुआ जानकर हर्षित हो ब्रह्मा तथा विष्णु भी अपने गणोंके साथ अति प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पहुँचे और मुनिपुत्ररूपमें अवतरित हुए उन शिवजीको देखकर सबने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की॥ ५६-५७ ॥

हे मुनिसत्तम! उस समय देवताओंने बड़ा उत्सव किया, आकाशमें भैरवों बजने लगीं, नर्तकीयों प्रसन्नतासे नृत्य करने लगीं, गन्धर्वपुत्र गान करने लगे, किन्नर बाजा बजाने लगे और देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ५८-५९ ॥

विष्णु आदि सभी देवताओंने पीपलवृक्षके द्वारा संरक्षित दधीचिके उस शोभासम्पन्न पुत्रका विधिवत् [जातकर्मादि] संस्कार करके पुनः उसकी स्तुति की॥ ६० ॥

ब्रह्मदेवने प्रसन्नचित्त होकर उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा और देवताओंके साथ विष्णुने 'हे देवेश! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहा॥ ६१ ॥

इस प्रकार कहकर तथा उनसे आज्ञा लेकर ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण महोत्सव मनाकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ६२ ॥

उसके बाद रुद्रावतार महाप्रभु पिप्पलाद पीपल वृक्षके नीचे संसारहितकी इच्छासे बहुत कालतक तप करते रहे॥ ६३ ॥

इस प्रकार लोकचर्याका अनुसरण करनेवाले उन पिप्पलादका भलीभांति तपस्या करते हुए बहुत-सा समय व्यतीत हो गया॥ ६४ ॥

पच्चीसवाँ अध्याय

राजा अनरण्यकी पुत्री पद्माके साथ पिप्पलादका विवाह एवं उनके वैवाहिक जीवनका वर्णन

नन्दीश्वरजी बोले—इसके बाद धर्मकी स्थापनाकी इच्छासे लोकमें रहकर उन महेश्वरने महान् लीला की; हे सन्मुने! उसे आप सुनें ॥ १ ॥

एक बार पुष्पभद्रा नदीमें स्नान करनेके लिये आते हुए उन मुनीश्वर [पिप्पलाद]—ने शिवाके अंशसे उत्पन्न हुई पद्मा नामक अति मनोहर युवतीको देखा ॥ २ ॥

लोकतत्त्वमें प्रवीण एवं समस्त भुवनोंमें संचरण करनेवाले वे उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे उसके पिता राजा अनरण्यके पास गये ॥ ३ ॥

उन्हें देखकर भयभीत हुए राजाने प्रणाम करके मधुपर्क आदि प्रदानकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की ॥ ४ ॥

उन मुनिने स्नेहपूर्वक [मधुपर्क आदि] सबकुछ ग्रहण करके उस कन्याकी याचना की । [यह सुनकर] राजा मौन हो गये और कुछ बोल न सके ॥ ५ ॥

मुनिने राजासे कहा कि मुझे भक्तिपूर्वक अपनी कन्या प्रदान कीजिये, अन्यथा आपसहित सब कुछ भस्म कर दूँगा ॥ ६ ॥

हे महामुने! उस समय समस्त राजपुरुष दर्थीचिपुत्र पिप्पलादके तेजसे आच्छन्न हो गये ॥ ७ ॥

तब अत्यन्त डेर हुए राजाने बांबार विलाप करके कन्या पद्माको अलंकृतकर वृद्ध मुनिको समर्पित कर दिया ॥ ८ ॥

पार्वतीके अंशसे समुद्रत उस राजपुत्री पद्माके साथ विवाहकर वे मुनि पिप्पलाद उसे लेकर प्रसन्न होकर अपने आश्रममें चले गये ॥ ९ ॥

वहाँ जाकर वृद्धावस्थाके कारण अत्यधिक जर्जर हुए तथा लम्पट स्वभाव न रखनेवाले वे तपस्वी मुनिवर उस नारीके साथ निवास करने लगे ॥ १० ॥

जिस प्रकार लक्ष्मीजी नारायणकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार अनरण्यकी वह कन्या मन, वचन तथा कर्मसे

भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी ॥ ११ ॥

तब शिवके अंशरूप मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद अपनी लीलासे युवा होकर उस युवतीके साथ रमण करने लगे ॥ १२ ॥

उन मुनिके परम तपस्वी दस महात्मा पुत्र उत्पन्न हुए । वे सब अपने पिताके समान [महातेजस्वी] तथा पद्माके सुखको बढ़ानेवाले थे ॥ १३ ॥

इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार मुनिक पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं ॥ १४ ॥

लोकमें सभीके द्वारा अनिवारणीय शनि-पीड़ाको देखकर उन दयालु पिप्पलादने प्राणियोंको प्रीतिपूर्वक वर प्रदान किया था कि जन्मसे लेकर सोलह वर्षतककी आयुवाले मनुष्यों तथा शिवभक्तोंको शनिकी पीड़ा नहीं होगी; यह मेरा वचन सत्य होगा । मेरे इस वचनका निरादरकर यदि शनिने उन मनुष्योंको पीड़ा पहुँचायी तो वह उसी समय भस्म हो जायगा; इसमें सद्देह नहीं ॥ १५-१७ ॥

हे तात! इसीलिये ग्रहोंमें श्रेष्ठ शनैश्चर विकारयुक्त होनेपर भी उनके भयसे उन [वैसे मनुष्यों]-को कभी पीड़ित नहीं करता ॥ १८ ॥

हे सन्मुने! इस प्रकार लीलापूर्वक मनुष्यरूप धारण करनेवाले पिप्पलादका उत्तम चरित्र मैंने आपसे कहा, जो सभी प्रकारकी कामनाओंको प्रदान करनेवाला है । गाधि, कौशिक एवं महामुनि पिप्पलाद—ये तीनों [महानुभाव] स्मरण किये जानेपर शनैश्चरजनित पीड़ाको नष्ट करते हैं ॥ १९-२० ॥

भूलोकमें जो मनुष्य पद्माके चरित्रसे युक्त पिप्पलादके चरित्रको भक्तिपूर्वक पढ़ता या सुनता है और जो शनिकी पीड़ाके नाशके लिये इस उत्तम चरित्रको पढ़ता या सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ २१-२२ ॥

महाज्ञानी, महाशिवभक्त एवं सज्जनोंके लिये प्रिय
वे मुनिवर दर्थीचि धन्य हैं, जिनके पुत्र आत्मवेत्ता
पिप्पलादके रूपमें साक्षात् शिवजी अवतरित हुए ॥ २३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें पिप्पलादावतार चरितवर्णन
नामक पञ्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २५ ॥

हे तात! यह आख्यान निष्पाप, स्वर्गको देनेवाला,
क्रूर ग्रहोंके दोषको नष्ट करनेवाला, सम्पूर्ण कामनाओंको
पूर्ण करनेवाला तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है ॥ २४ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

शिवके वैश्यनाथ नामक अवतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे तात! हे मुने! अब मैं
परमात्मा शिवजीके परम आनन्ददायक वैश्यनाथ नामक
अवतारका वर्णन कर रहा हूँ; आप सुनिये ॥ १ ॥

पूर्व समयमें नन्दिग्राममें कोई महानन्दा नामसे
प्रसिद्ध शिवभक्त महासुन्दरी वेश्या रहती थी ॥ २ ॥

वह ऐश्वर्यसम्पन्न, धनाढ्य, परम कान्तियुक्त,
अनेक प्रकारके रूलोंसे युक्त, शृंगाररससे परिपूर्ण, सब
प्रकारकी संगीत विद्याओंमें कुशल तथा मनको अत्यन्त
मोहित करनेवाली थी। उसके गानसे रानियाँ तथा राजा
हर्षित हो जाते थे ॥ ३-४ ॥

वह वेश्या प्रसन्नतापूर्वक पार्वतीसंहित शंकरकी
सदा पूजा करती थी और शिवनामका जप करती थी
तथा भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करती थी ॥ ५ ॥

शिवजीका प्रतिदिन पूजनकर वह बड़ी भक्तिके
साथ जगदीश्वरकी सेवा करती तथा शिवके उत्तम
यशका गान करती हुई नृत्य करती थी ॥ ६ ॥

वह एक बन्दर तथा मुरोंको रुद्राक्षोंसे विभूषित
करके ताली बजा-बजाकर गायन करती हुई उन्हें नचाती
थी ॥ ७ ॥

उन दोनोंको नाचते हुए देखकर शिवजीकी भक्तिमें
तत्पर वह वेश्या अपनी सखियोंके सहित प्रेमपूर्वक उच्च
स्वरमें हँसती थी ॥ ८ ॥

रुद्राक्षका बाजूबन्द एवं कर्णाभूषण पहनी हुई उस
महानन्दाके सामने उसके सिखानेसे बानर बालककी
तरह नाचता था ॥ ९ ॥

शिखामें रुद्राक्ष धारण किया हुआ नृत्यकलामें

विशारद वह मुर्गा देखनेवालोंको आनन्दित करता हुआ,
उस बानरके साथ सदा नृत्य किया करता था ॥ १० ॥

इस प्रकार शिवभक्तिपरायणा वह वेश्या अत्यन्त
आदरपूर्वक कौतुक करती हुई सदा आनन्दसे रहती
थी ॥ ११ ॥

हे मुनिसत्तम! इस प्रकार शिवभक्ति करती हुई उस
वेश्याका सुखपूर्वक बहुत समय व्यतीत हो गया ॥ १२ ॥

एक बार स्वयं ही शुभस्वरूप शिवजी ब्रत धारण
किये हुए वैश्य बनकर उसके भावकी परीक्षा करनेके
लिये उसके घर आये ॥ १३ ॥

वे कृती (वैश्यरूप शिव) त्रिपुण्ड्रसे शोभायमान
मस्तकवाले, रुद्राक्षके आभरणवाले, शिवनाम जपनेमें
आसक्त, जटायुक तथा शैव वेश धारण किये हुए
थे ॥ १४ ॥

शरीरमें भस्म लगाये तथा हाथमें उत्तम रूलोंसे युक्त
श्रेष्ठ कंकण पहने वे परम कौतुकीकी तरह शोभित हो
रहे थे ॥ १५ ॥

उन आये हुए वैश्यकी भलीभाँति पूजा करके उस
सुन्दरी वेश्याने बड़े आनन्दके साथ उनको आदरसंहित
अपने स्थानमें बैठाया ॥ १६ ॥

उनकी कलाईमें अति मनोहर सुन्दर कंकणको
देखकर उसमें उसकी लालसा उत्पन्न हो गयी और वह
वेश्या चकित होकर उनसे कहने लगी ॥ १७ ॥

महानन्दा बोली—आपके हाथमें स्थित यह
महारत्नजटिट कंकण शीघ्र ही मेरे मनको आकर्षित कर
रहा है; यह तो दिव्य स्त्रियोंके योग्य आभूषण है ॥ १८ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार नवीन रत्नोंसे युक्त हाथके भूषणके प्रति उसे लालसायुक्त देखकर उदार वुद्धिवाले वैश्यने मुसकराकर कहा— ॥१॥

वैश्यनाथ बोले—यदि इस रत्नोपम दिव्य कंकणमें तुम्हारा मन लुभा गया है, तो तुम हीं प्रीतिसे इसको धारण करो; किंतु इसका क्या मूल्य दोगी ? ॥२॥

वैश्या बोली—हम व्यभिचारी वैश्याएँ हैं, परित्राताएँ नहीं हैं। व्यभिचार ही हमारे कुलका धर्म है; इसमें संशय नहीं ॥३॥

निश्चय ही इस हस्ताभूषणने मेरे चित्तको आकृष्ट कर दिया है, इसलिये मैं तीन दिनोंतक दिन-रात आपकी पत्नी बनकर रहूँगी ॥४॥

वैश्य बोले—हे वीरवल्लभ ! 'बहुत अच्छा'; यदि तुम्हारा वचन सत्य है, तो मैं [यह] रत्नकंकण देता हूँ और तुम तीन रातके लिये मेरी पत्नी बन जाओ ॥५॥

हे प्रिये ! इस व्यवहारमें सूर्य तथा चन्द्रमा साक्षी हैं; यह सत्य है—ऐसा तीन बार कहकर तुम मेरे हृदयका स्पर्श करो ॥६॥

वैश्या बोली—हे प्रभो ! तीन दिनतक दिन-रात आपकी पत्नी होकर मैं सहधर्मका पालन करूँगी, यह सत्य है—सत्य है, इसमें सद्देह नहीं है ॥७॥

नन्दीश्वर बोले—उस महानन्दाने तीन बार ऐसा कहकर सूर्य और चन्द्रमाको साक्षी मानकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उनके हृदयका स्पर्श किया। तब वे वैश्य उसे रत्नजटित कंकण देकर [पुनः] उसके हाथमें रत्नमय शिवलिंग देकर यह कहने लगे— ॥८-९॥

वैश्यनाथ बोले—हे कान्ते ! यह रत्नजटित शिवलिंग मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है; तुम इसकी रक्षा करना और यत्पूर्वक इसे छिपाकर रखना ॥१०॥

नन्दीश्वर बोले—उस वैश्यने 'ऐसा ही होगा'— इस प्रकार कहकर रत्नजटित लिंग लेकर और उसे नाट्यशालाके मध्यमें रखकर घरमें प्रवेश किया ॥११॥

तब वह वैश्या उन विटधर्मा (विलासी) वैश्यके साथ रात्रिमें कोमल गद्योंसे शोभायमान पलांगपर सुखपूर्वक सो गयी ॥१२॥

हे मुने ! तब मध्य रात्रिके समय उन वैश्यपतिकी

इच्छासे नृत्यमण्डपके मध्य अकस्मात् एक ध्वनि होने लगी। हे तात ! उसी समय तेज पवनकी सहायतासे अग्निने अत्यन्त प्रज्वलित होकर उस नाट्यशालाको चारों ओरसे आवृत कर दिया ॥३१-३२॥

मण्डपके प्रज्वलित होनेपर उस वैश्याने सहस्र व्याकुलतासे उठकर बन्दरको बन्धनमुक्त कर दिया ॥३३॥

बन्धनसे मुक्त हुआ वह बन्दर उस मुर्गोंके साथ बहुत-से अग्निकण्ठोंको हटा करके भवसे दूर भाग गया। खम्भेके साथ जलकर खण्ड-खण्ड हो गये उस लिंगको देखकर वह वैश्य तथा वैश्या दोनों महादुखी हो गये ॥३४-३५॥

उस समय वैश्यपतिने प्राणोंके समान शिवलिंगको जला हुआ देखकर उस वैश्याके चित्तमें स्थित भावको जाननेके लिये मरनेका विचार किया ॥३६॥

अनेक लीलाएँ करनेवाले तथा कौतुकवश मनुष्य शरीर धारण किये हुए महेश्वररूप वैश्यपतिने महादुखी होकर उस दुःखित वैश्यासे कहा कि अब मैं अग्निमें प्रविष्ट हो जाऊँगा ॥३७॥

वैश्यपति बोले—मेरे प्राणोंसे भी प्रिय शिवलिंगके जलकर खण्डित हो जानेपर मैं जीनेकी इच्छा नहीं करता—यह सत्य-सत्य कहता हूँ; इसमें संशय नहीं है। हे भद्रे ! तुम अपने श्रेष्ठ सेवकोंसे बहुत शीघ्र चिता बनवाओ; मैं शिवमें मन लगाकर अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥३८-३९॥

हे भद्रे ! यदि ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु आदि भी आकर मुझे रोकेंगे, तो भी इस समय मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा और प्राणोंको त्याग दूँगा ॥४०॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] उनका ऐसा दृढ़ संकल्प जानकर वह अत्यन्त दुःखित हुई और उसने अपने सेवकोंसे अपने भवनके बाहर चिता बनवायी ॥४१॥

तब सुन्दर कौतुक करनेवाले तथा वैश्यके संगतिभावकी परीक्षा करनेवाले वे वैश्यरूपधारी धीर शिव जलती हुई अग्निकी परिक्रमा करके मनुष्योंके देखते-देखते अग्निमें प्रवेश कर गये ॥४२॥

हे मुनिसत्तम ! वह युवती वैश्या महानन्दा उस गतिको देखकर अत्यन्त विस्मित हो उठी और खिन्न हो

गयी। इसके बाद वह दुखी वेश्या निर्मल धर्मका स्मरण करके सभी बन्धुजनोंको देखकर करुणासे युक्त वचन कहने लगी— ॥ ४३-४४ ॥

महानन्दा बोली—मैंने इस वैश्यसे रत्नकंकण लेकर सत्य वचन कहा था कि मैं तीन दिनतक इस वैश्यकी धर्मसम्पत्ति पत्नी रहूँगी ॥ ४५ ॥

मेरे द्वारा किये गये कर्मसे यह शिवव्रतधारी वैश्य मृत्युको प्राप्त हुआ है, अतः मैं भी इसके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगी ॥ ४६ ॥

सत्य बोलनेवाले आचार्योंने ' [नारी] स्वधर्मका आचरण करनेवाली हो'—ऐसा कहा है, अतः प्रसन्न होकर मेरे द्वारा ऐसा किये जानेपर मुझमें स्थित सत्य नष्ट नहीं होगा। सत्यका आश्रय ही परम धर्म है, सत्यसे परम गति होती है, सत्यसे ही स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं, अतः सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है ॥ ४७-४८ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार दृढ़ संकल्पवाली उस नारीने अपने बन्धुओंद्वारा रोके जानेपर भी सत्यके लोपके भयसे प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय किया और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अपनी सम्पत्ति देकर सदाशिवका ध्यानकर उस अग्निकी तीन बार परिक्रमा करके वह उसमें प्रवेश करनेको उद्यत हुई ॥ ४९-५० ॥

अपने चरणोंमें सर्पित मनवाली उस वेश्याको जलती अग्निमें गिरती देखकर प्रकट हुए उन विश्वात्मा शिवजीने रोक दिया ॥ ५१ ॥

सब देवताओंके भी देव, तीन नेत्रोंवाले, चन्द्रमाकी कलासे शोभित, करोड़ों चन्द्रमा-सूर्य-अग्निके समान प्रकाशवाले उन शिवको देखकर वह स्तब्ध तथा डरी हुईके समान उसी प्रकार खड़ी रह गयी ॥ ५२ ॥

तब व्याकुल, संत्रस्त, कौपती हुई, जड़ीभूत तथा आँसू गिरती हुई उस वेश्याको आश्वस्त करके उसके हाथोंको पकड़कर शिवजी यह वचन कहने लगे— ॥ ५३ ॥

शिवजी बोले—तुम्हारे सत्य, धर्म, धैर्य तथा

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें वैश्यनाथ नामवाले

शिवावतारका वर्णन नामक छव्वीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २६ ॥

मुझमें तुम्हारी निश्चल भक्तिकी परोक्षा करनेके निमित्त मैं वैश्य बनकर तुम्हारे पास आया था ॥ ५४ ॥

मैंने अपनी मायासे अग्निको प्रदीप्तकर तुम्हारे नाट्यमण्डपको जलाया है और रत्नलिंगको दग्ध करके मैं अग्निमें प्रविष्ट हुआ हूँ ॥ ५५ ॥

तुम सत्यका अनुस्मरण करके मेरे साथ अग्निमें प्रविष्ट होने लगी, अतः मैं तुम्हें देवताओंके लिये भी दुर्लभ भोगोंको प्रदान करूँगा। हे सुश्रोणि! तुम जो-जो चाहती हो, उसे मैं तुम्हें देता हूँ; मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारे लिये [मुझे] कुछ भी अदेय नहीं है ॥ ५६-५७ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] इस प्रकार भक्तवत्सल गौरीपति शिवजीके कहनेपर वह महानन्दा वेश्या शंकरजीसे कहने लगी— ॥ ५८ ॥

वेश्या बोली—भूमि, स्वर्ग तथा पातालके भोगोंमें मेरी इच्छा नहीं है; मैं आपके चरणकमलोंके स्पर्शके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं चाहती हूँ ॥ ५९ ॥

जो मेरे भूत्य तथा दासियाँ हैं और जो अन्य बान्धव हैं, वे सब आपके दर्शनके लिये लालायित हैं और आपमें ही चित्की वृत्तियाँ लगाये हुए हैं। मेरे सहित इन सभीको अपने परम पदकी प्राप्ति कराके पुनर्जन्मके घोर भयसे छुड़ाइये, आपको नमस्कार है ॥ ६०-६१ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] इसके उपरान्त शिवजीने उसके वचनका आदरकर उसके सहित उन सबको अपने परम पदकी प्राप्ति करायी ॥ ६२ ॥

मैंने वैश्यनाथके परम अवतारका वर्णन आपसे कर दिया, जो महानन्दाको सुख देनेवाला तथा भक्तोंको सदा आनन्द देनेवाला है ॥ ६३ ॥

शिवके अवताररूप वैश्यनाथका यह दिव्य चरित्र परम पवित्र, सत्यसुखोंको शीघ्र सब कुछ देनेवाला, महानन्दाको परम सुख देनेवाला तथा अद्वृत है ॥ ६४ ॥

जो भक्तिसहित सावधान होकर इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह अपने धर्मसे परित नहीं होता, और परलोकमें [उत्तम] गति प्राप्त करता है ॥ ६५ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके द्विजेश्वरवतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे तात! अब मैं सज्जनोंके लिये कल्याणकारी तथा उन्हें सुख देनेवाले परमात्मा शिवके द्विजेश्वरवतारका वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये ॥ १ ॥

हे तात! मैंने पहले जिन नृपत्रेष्ठ भद्रायुका वर्णन किया था और जिनपर शिवजीने ऋषभरूप धारणकर अनुग्रह किया था, उन्हींके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये वे पुनः द्विजेश्वरस्वरूपसे प्रकट हुए थे, उसी वृचान्तको मैं कह रहा हूँ ॥ २-३ ॥

हे तात! उन प्रभविष्णु राजा भद्रायुने ऋषभके प्रभावसे संग्राममें समस्त शत्रुओंको जीतकर राज्यसिंहासन प्राप्त किया। हे ब्रह्मन्! राजा चन्द्रांगदकी सीमितनी नामक पत्नीसे उत्पन्न सुन्दरी पुत्री तथा परम साध्वी कीर्तिमालिनी उनकी पत्नी हुई ॥ ४-५ ॥

हे मुने! किसी समय उन भद्रायुने वसन्तकालमें अपनी पत्नीके साथ वनविहार करनेके लिये घने वनमें प्रवेश किया। इसके बाद वे राजा उस सुरम्य वनमें शरणागतोंका पालन करनेवाली अपनी प्रियाके साथ विहार करने लगे ॥ ६-७ ॥

तब उनके धर्मकी दृढ़ताकी परीक्षाके लिये पार्वतीसहित भगवान् शिवने वहाँपर एक लीला की ॥ ८ ॥

शिवजी और पार्वतीजी द्विजदम्पती बनकर तथा अपनी लीलासे एक मायामय व्याघ्रको बनाकर उस वनमें प्रकट हुए ॥ ९ ॥

वे दोनों द्विजदम्पती जहाँ राजा विहार कर रहे थे, वहाँसे थोड़ी दूरपर व्याघ्रद्वारा पीछा किये जानेपर भयसे व्याकुल होकर दौड़ते, रोते-चिल्लाते हुए राजाके सामीप पहुँचे। शरणागतवत्सल एवं क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ उन राजा भद्रायुने व्याघ्रसे आक्रान्त होकर 'हे तात!' चिल्लाते हुए उन दोनोंको देखा ॥ १०-११ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अपनी मायासे द्विजदम्पती बने हुए उन दोनोंने भयसे व्याकुल होकर महाराज भद्रायुसे इस प्रकार कहा— ॥ १२ ॥

द्विजदम्पती बोले—हे महाराज! हे धर्मवित्तम्!

हम दोनोंकी रक्षा कीजिये। हे महाप्रभो! हम दोनोंको खानेके लिये यह व्याघ्र आ रहा है। हे धर्मज! यह हिंसक, कालसदृश तथा सभी प्राणियोंके लिये भयंकर व्याघ्र आकर जबतक हम दोनोंको खा न ले, उसके पहले ही आप इस व्याघ्रसे हमलोगोंको बचा लीजिये ॥ १३-१४ ॥

नन्दीश्वर बोले—उन महावीर राजाने उन दोनोंका करुण क्रन्दन सुनकर ज्ञों ही अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक धनुष धारण किया, इन्हें अति मायावी उस व्याघ्रने बड़ी शीघ्रताके साथ पहुँचकर उस द्विजश्रेष्ठकी स्त्रीको पकड़ लिया, और 'हे नाथ! हा कान्त! हा शम्पो! हे जगदगुरो!'—इस प्रकार कहकर रोती हुई उस स्त्रीको भयंकर व्याघ्रने ग्रास बना लिया ॥ १५—१७ ॥

तबतक राजाने अपने तीक्ष्ण भालोंसे व्याघ्रप्रहर प्रहर किया, किंतु उसे उन भालोंसे किसी प्रकारकी व्यथा नहीं हुई, जैसे वृष्टिधाराओंसे पर्वतराजपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ॥ १८ ॥

राजाके द्वारा यथेच्छ आघात किये जानेपर भी व्यथाहित वह महाबलवान् व्याघ्र बलपूर्वक उस स्त्रीको लेकर बड़ी शीघ्रताके साथ वहाँसे भाग गया ॥ १९ ॥

इस प्रकार बाधके द्वारा अपहृत अपनी स्त्रीको देखकर ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित हो गया और लौकिकी गतिका आश्रय लेकर बारंबार रोने लगा ॥ २० ॥

फिर देरतक रोनेके बाद अभिमान नष्ट करनेवाले तथा मायासे विप्ररूप धारण करनेवाले उन परमेश्वरने राजा भद्रायुसे कहा— ॥ २१ ॥

द्विजेश्वर बोले—हे राजन्! [इस समय] तुम्हारे महान् अस्व कहाँ हैं, रक्षा करनेवाला तुम्हारा महाधनुष कहाँ है और बारह हजार हाथियोंका तुम्हारा बल कहाँ है? ॥ २२ ॥

तुम्हारे शंख तथा खदगसे क्या लाभ? तुम्हारी समन्वयक अस्वविद्यासे क्या लाभ? तुम्हारे सत्त्वसे क्या लाभ और तुम्हारे महान् अस्वके उत्कृष्ट और अतिशय

प्रभावसे क्या लाभ ? अन्य जो कुछ भी तुममें है, वह सब निष्फल हो गया; क्योंकि तुम वनमें रहनेवाले जन्तुओंके आक्रमणको भी रोकनेमें सक्षम न हो सके ॥ २३-२४ ॥

[प्रजाजनोंको] क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। उस कुलधर्मके नष्ट हो जानेपर तुम्हारे जीवित रहनेसे क्या लाभ है ? ॥ २५ ॥

धर्मज्ञ राजा अपने प्राणों तथा धनसे अपने शरणमें आये हुए दीन-दुःखियोंकी रक्षा करते हैं, यदि वे ऐसा नहीं करते तो मृतकके समान हैं ॥ २६ ॥

पीड़ितोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ राजाओंके लिये जीवित रहनेकी अपेक्षा मर जाना ही श्रेयस्कर है, दानसे हीन धनी लोगोंके लिये गृहस्थ होनेकी अपेक्षा भिखारी होना कहीं अधिक त्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

अनाथ, दीन एवं आर्तजनोंकी रक्षा करनेमें जो अक्षम हैं, उनके लिये विष खाना या अग्निमें प्रवेश कर जाना कहीं अच्छा है—ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं ॥ २८ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उस ब्राह्मणका विलाप तथा उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजा भद्रायु शोकसन्तप्त हो अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगे ॥ २९ ॥

अहो ! आज भाग्यके उलट-फेरसे मेरा पराक्रम नष्ट हो गया, आज मेरी कीर्ति नष्ट हो गयी और मुझे भयंकर पापका भागी होना पड़ा ॥ ३० ॥

मुझ अभाग तथा दुर्बुद्धिका कुलोचित धर्म नष्ट हो गया । निश्चय ही [इस प्रकारके पापके कारण] मेरी सम्पत्तियों, राज्य और आयुका भी नाश हो जायगा ॥ ३१ ॥

अपनी पत्नीके प्रय जानेसे शोकसन्तप्त इस ब्राह्मणको मैं आज अतिप्रिय प्राणोंको देकर शोकप्रहित करूँगा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार नृपत्रेष्ठ भद्रायुने अपने मनमें निश्चयकर उस ब्राह्मणके चरणोंमें गिरकर उसे सान्त्वना देते हुए कहा— ॥ ३३ ॥

भद्रायु बोले—हे ब्रह्मन् ! हे महाप्राज्ञ ! मुझ नष्ट तेजवाले क्षत्रियाधमपर कृपा करके अपने शोकका त्याग कीजिये, मैं आज आपका अभीष्ट पूरा करूँगा । यह

राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर सब कुछ आपके अधीन है, इसके अतिरिक्त आप और क्या चाहते हैं ? ॥ ३४-३५ ॥

ब्राह्मण बोले—[हे राजन्!] अन्येको दर्पणसे क्या लाभ, भिक्षासे जीवन-निर्वाह करनेवालेको घरकी क्या आवश्यकता, मूर्खको पुस्तकसे क्या लाभ और स्त्रीविहीन पुरुषको धनसे क्या प्रयोजन ! इस समय मेरी स्त्री मर चुकी है और मैंने कभी कामसुखका उपभोग नहीं किया, अतः मैं आपकी इस पटानीको चाहता हूँ इसे मुझे दे दीजिये ॥ ३६-३७ ॥

भद्रायु बोले—[हे ब्राह्मण!] पूरी पृथ्वीके धनका और राज्य, हाथी, बोडे तथा अपने शरीरका भी दाता तो हुआ जा सकता है, किंतु अपनी स्त्रीका दान करनेवाला तो कहीं नहीं होता ॥ ३८ ॥

दूसरेकी स्त्रीके साथ समागम करनेसे जो पाप अर्जित किया जाता है, उसे सैकड़ों प्रायशिचत्तोंसे भी दूर नहीं किया जा सकता है ॥ ३९ ॥

ब्राह्मण बोले—मुझे घोर ब्रह्महत्या तथा मद्य पीनेका महापाप ही क्यों न लगे, मैं उसे तपस्यासे नष्ट कर दूँगा, फिर परस्त्रीगमन कितना बड़ा पाप है ॥ ४० ॥

अतः आप मुझे अपनी यह स्त्री प्रदान कीजिये, मैं दूसरा कुछ नहीं चाहता, अन्यथा भयभीतोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ होनेके कारण आपको निश्चित रूपसे नरककी प्राप्ति होगी ॥ ४१ ॥

नन्दीश्वर बोले—ब्राह्मणकी इस बातसे भयभीत राजा विचार करने लगे कि भयभीतकी रक्षा न कर सकना महान् पाप है, उसकी अपेक्षा स्त्री दे देना ही श्रेयस्कर है ॥ ४२ ॥

अतः त्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी स्त्री प्रदानकर पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा, ऐसा करनेसे मेरी कीर्ति भी बढ़ेगी ॥ ४३ ॥

मनमें ऐसा विचारकर राजाने अग्नि प्रज्वलित करके उस ब्राह्मणको बुलाकर जल लेकर [संकल्पके साथ] अपनी पत्नीका दान कर दिया ॥ ४४ ॥

इसके बाद स्वयं स्नान करके पवित्र हो देवेश्वरोंको प्रणामकर उस अग्निकी तीन बार प्रदक्षिणा करके

समाहितचित् हो, उन्होंने शिवजीका ध्यान किया ॥ ४५ ॥

तदनन्तर द्विजेश्वरने साक्षात् शिवरूपमें प्रकट होकर अपने चरणोंमें मन लगाकर [प्रज्वलित] अग्निमें गिरनेको दृष्टि हुए उन राजाको रोक दिया ॥ ४६ ॥

पाँच मुखोंवाले, तीन नेत्रोंवाले, पिनाकी, मस्तकपर चन्द्रकला धारण करनेवाले, लम्बी एवं पीली-पीली जटाओंसे युक्त, मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्योंकी भाँति तेजवाले, वृष्णलके समान शुभ्र वर्णवाले, गजचर्म धारण किये हुए, गंगाकी तरंगोंसे सिंचित शिरः प्रदेशवाले, कण्ठमें नागोन्द्रहाररूप आध्यूषण धारण करनेवाले, मुकुट-करधनी-बाजूबन्द तथा कंकण धारण करनेसे उज्ज्वल प्रतीत होनेवाले, त्रिशूल-खड्ग-खट्टवांग-कुठार-चर्म-मृग-अभय मुद्रा तथा फिनाक नामक धनुषसे युक्त आठ हाथोंवाले, वैलपर बैठे हुए और कण्ठमें विषकी कालिमासे सुशोभित उन शिवजीको राजाने अपने सामने प्रकट हुआ देखा ॥ ४७—४९ ॥

तब आकाशमण्डलसे शीघ्र ही दिव्य पुष्पवृष्टि होने लगी, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और अप्सराएँ नाचने तथा गाने लगीं ॥ ५० ॥

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवता, नारदादि महर्षि तथा अन्य मुनिगण भी स्तुति करते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥ ५१ ॥

उस समय भक्तिसे विनम्र हो हाथ जोड़े हुए राजाके देखते-देखते ही भक्तिको बढ़ानेवाला महान् उत्सव होने लगा ॥ ५२ ॥

भगवान् सदाशिवके दर्शनमात्रसे राजाका अन्तःकरण प्रसन्नतासे खिल उठा, अशृपातसे सागा शरीर आई हो गया, शरीर रोमांचित् हो गया। तब वे हाथ जोड़े गद्गद वाणीसे शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५३ ॥

इसके बाद राजाके द्वारा स्तुति किये जानेपर पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए दयानिधि भगवान् महेश्वरने उनसे कहा—हे राजन्! मैं आपकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ और आपके धर्मपालनसे तो और भी प्रसन्न हुआ हूँ। अब आप अपनी पत्नीसहित वर माँगिये, मैं उसे दूँगा, इसमें संशय नहीं है। मैं आपके भक्तिभावकी परीक्षाके लिये ही ब्राह्मणवेष धारण करके आया था और व्याघ्रने जिसे पकड़ लिया था, वे साक्षात्

देवी पार्वती थीं। तुम्हरे बाणोंसे आहत न होनेवाला जो व्याघ्र था, वह मायासे बनाया गया था और मैंने आपके धैर्यकी परीक्षाके लिये ही आपकी स्त्रीको माँगा था ॥ ५४—५७ ॥

नन्दीश्वर बोले—प्रभुका यह वचन सुनकर उन्हें पुनः प्रणामकर तथा उनकी स्तुति करके विनम्र होकर वे राजा भद्रायु स्वामी [शिव]-से कहने लगे ॥ ५८ ॥

भद्रायु बोले—हे नाथ! मेरा एक ही वर है जो कि आप परमेश्वरने सांसारिक तापसे सन्ताप सुझको प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। हे नाथ! हे प्रभो! फिर भी यदि आप अपनी कृपासे वर देना ही चाहते हैं, तो मैं वरदाताओंमें ब्रेष्ट आपसे यही परम वर माँगता हूँ कि हे महेश्वर! हे नाथ! माताके साथ मेरे पिता वज्रबाहु तथा स्त्रीके सहित मैं आपके चरणोंका सदा सेवक बना रहूँ और हे महेश्वर! जो पदाकर नामक यह वैश्य है तथा सनय नामक उसका पुत्र है—इन सबको सदा अपना पाश्वर्वती बनायें ॥ ५९—६२ ॥

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर उस राजाकी कीर्तिमालिनी नामक पत्नी भी आनन्दित होकर अपनी भक्तिसे शिवजीको प्रसन्नकर उत्तम वरदान माँगने लगी ॥ ६३ ॥

रानी बोली—हे महादेव! मेरे पिता चन्द्रांगद और मेरी माता सीमन्तिनी—इन दोनोंके लिये प्रसन्नतापूर्वक आपके समीप निवासकी याचना करती हूँ ॥ ६४ ॥

नन्दीश्वर बोले—भक्तवत्सल पार्वतीपति प्रसन्न होकर उन दोनोंसे ‘ऐसा ही हो’—इस प्रकार कहकर उन्हें इच्छित वर देकर क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये ॥ ६५ ॥

भद्रायुने भी प्रतिपूर्वक शिवजीकी कृपा प्राप्तकर [अपनी पत्नी] कीर्तिमालिनीके साथ अनेक विषयोंका भोग किया ॥ ६६ ॥

इस प्रकार अव्याहत पराक्रमवाले राजा दस हजार वर्षपूर्ण राज्य करके पुत्रको राज्यका भार देकर शिवजीकी सन्धिभिं चले गये और राज्याधिक चन्द्रांगद तथा उनकी रानी सीमन्तिनी भक्तिसे शिवजीका पूजनकर शिवपदको ग्राप हुए ॥ ६७—६८ ॥

हे प्रभो [सनल्कुमार!] इस प्रकार मैंने आपसे

शिवजीके श्रेष्ठ द्विजेश्वरावतारका वर्णन किया, जिससे राजा भद्रायुको परम सुख प्राप्त हुआ ॥ ६९ ॥

पवित्र कीर्तिवाले द्विजेशंक शिवावतारके इस परम पवित्र तथा अत्यन्त अद्भुत चरित्रको पढ़ने तथा

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्यगत तृतीय शतरुद्रसंहितामें द्विजेशाख्यशिवावतारवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

अद्वाईसवाँ अध्याय

नल एवं दमयन्तीके पूर्वजन्मकी कथा तथा शिवावतार यतीश्वरका हंसस्त्रप धारण करना

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! हे मुने! अब मैं यहाँ आपका निवास किस प्रकार सम्भव है? ॥ ९ ॥
परमात्मा शिवके परम आनन्दप्रद यतिनाथ नामक अवतारका वर्णन करूँगा, आप सुनें ॥ १ ॥

हे मुनीश्वर! [पूर्वकालमें] अर्बुदाचल नामक पर्वतके समीप भिल्लवंशमें उत्पन्न आहुक नामक एक भील रहता था ॥ २ ॥

उसकी पत्नीका नाम आहुका था, जो अत्यन्त पतिव्रता थी। वे दोनों प्रतिदिन भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा करते थे। वे दोनों महाशिवभक्त थे ॥ ३ ॥

हे मुने! किसी समय सदा शिवभक्तिमें तत्पर रहनेवाला वह भील अपने तथा स्त्रीके लिये आहारकी व्यवस्थाहेतु बहुत दूर चला गया ॥ ४ ॥

इसी बीच शिवजी संन्यासीका रूप धारणकर उसकी परीक्षा लेनेके लिये सायंकाल उस भीलके घर आये ॥ ५ ॥

उसी समय वह गृहपति [आहुक] भी वहाँ आ गया और उस महाबुद्धिमन् भीलने प्रेमपूर्वक उन यतीश्वरकी पूजा की ॥ ६ ॥

उसके भावकी परीक्षा करनेके लिये महालीला करनेवाले संन्यासीरूपधारी उन शिवजीने डरते हुए प्रेमपूर्वक दीनवचन कहा— ॥ ७ ॥

यतिनाथ बोले—हे भिल! तुम मुझे आज रहनेके लिये स्थान दो और प्राप्तःकाल होते ही मैं सर्वथा चला जाऊँगा, तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो ॥ ८ ॥

भिल बोला—हे स्वामिन्! आपने सत्य कहा, किंतु मेरी बात सुनिये, मेरा स्थान तो बहुत थोड़ा है, फिर

सुननेवाला शिवपदको प्राप्त होता है ॥ ७० ॥

जो एकाग्रचित होकर इसे प्रतिदिन सुनता अथवा सुनता है, वह अपने धर्मसे विचलित नहीं होता है और परलोकमें उत्तम गति प्राप्त करता है ॥ ७१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्यगत तृतीय शतरुद्रसंहितामें द्विजेशाख्यशिवावतारवर्णन

नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! उसके द्वारा इस

प्रकार कहे जानेपर वह संन्यासी जानेका विचार करने लगा, तबतक भीलनीने विचारकर अपने स्वामीसे कहा— ॥ १० ॥

भीलनी बोली—हे स्वामिन्! गृहस्थधर्मका विचार करके आप संन्यासीको स्थान दे दीजिये, अतिथिको निराश मत कीजिये। अन्यथा आपके धर्मका क्षय होगा ॥ ११ ॥

आप घरके भीतर संन्यासीके साथ निवास करें और मैं सभी बड़े अस्त्र-शस्त्रोंको बाहर रखकर वहाँ रहूँगी ॥ १२ ॥

नन्दीश्वर बोले—अपनी पत्नी उस भीलनीके धर्मयुक्त कल्याणकारी वचनको सुनकर वह भील अपने मनमें विचार करने लगा ॥ १३ ॥

स्त्रीको घरके बाहर रखकर मेरा घरमें निवास करना उचित प्रतीत नहीं होता है, फिर इस यतिका दूसरी जगह गमन भी अपने अधर्मका कारण होगा ॥ १४ ॥

गृहस्थधर्मका आचरण करनेवालोंके लिये वे दोनों बातें सर्वथा उचित नहीं हैं। अतः जो होनहार है, वह हो, मैं घरके बाहर ही रहूँगा ॥ १५ ॥

इस प्रकार आग्रहकर उन दोनोंको घरके भीतर रखकर अपने अस्त्रोंको लेकर वह भील प्रसन्नतासे घरसे बाहर स्थित हो गया ॥ १६ ॥

रात्रिमें उस भीलको कूर एवं हिंसक पशु सताने लगे, उसने भी अपनी रक्षाके लिये उस समय यथाशक्ति

महान् प्रयत्न किया ॥ १७ ॥

इस प्रकार [अपनी शक्ति के अनुसार] यत्न करते रहने पर भी प्रारब्धप्रेरित हिंसक पशुओंने बलपूर्वक उस बलवान् भीलको खा लिया ॥ १८ ॥

प्रातःकाल उठकर संन्यासी हिंस जन्मुओंसे भक्षित उस बनेचर भीलको देखकर बड़ा दुखी हुआ ॥ १९ ॥

संन्यासीको दुखी देखकर वह भीलनी भी बहुत दुःखित हुई, किंतु धैर्यसे अपने दुःखको दबाकर यह वचन कहने लगी— ॥ २० ॥

भीलनी बोली—हे यते! आप शोक क्यों कर रहे हैं? इनका कल्याण हो गया, ये धन्य हो गये, कृतकृत्य हो गये। जो इस प्रकार इनकी मृत्यु हुई ॥ २१ ॥

हे यते! अब मैं भी इन्हेंके साथ अग्निमें भस्म होकर सती हो जाऊँगी, आप प्रेमपूर्वक चिता तैयार कराइये; क्योंकि यही स्त्रियोंका सनातनधर्म है ॥ २२ ॥

उसकी यह बात सुनकर और इसीमें उसका कल्याण समझकर उस संन्यासीने तत्क्षण ही चिता तैयार कर दी और वह अपने धर्मके अनुसार उसीमें प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुई ॥ २३ ॥



इसी अवसरपर साक्षात् शिवजी सामने प्रकट हो गये। धन्य हो, धन्य हो—इस प्रकारसे प्रेमपूर्वक प्रशंसा करते हुए शिवजी उस भीलनी से कहने लगे— ॥ २४ ॥

हर बोले—हे अनधे! मैं तुम्हारे आचरणसे प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो, मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं

है। मैं इस समय विशेष रूपसे तुम्हारे वशमें हूँ ॥ २५ ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीके उस परमानन्ददायक वचनको सुनकर वह विशेष रूपसे सुखी हुई और उसके कुछ भी स्मरण नहीं रहा ॥ २६ ॥

उसकी इस अवस्थाको देखकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए। प्रभु शिवने उससे पुनः कहा कि वर माँगो ॥ २७ ॥

शिवजी बोले—यह मेरे रूपवाला यति आगे जन्ममें हंस होगा और तुम दोनोंका पुनः संयोग करायेगा ॥ २८ ॥

यह भील निषधनगरके राजा वीरसेनका नल नामक महाप्रतापी पुत्र होगा, इसमें संशय नहीं है और हे अनधे! तुम विदर्भनारमें भीमराजकी कन्या होकर परम गुणवती दमयन्ती नामसे विच्छात होओगी ॥ २९—३० ॥

तुम दोनों ही बहुत कालपर्यन्त यथेष्ट राज्यसुखका भोग करके योगीश्वरोंके लिये दुर्लभ मुक्तिको निश्चित रूपसे प्राप्त करोगे ॥ ३१ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर शिवजी उसी समय लिंगरूपमें प्रकट हो गये। [उनके द्वारा परीक्षा करनेपर] भील धर्मसे विचलित नहीं हुआ, इसलिये वह लिंग अचलेश—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ३२ ॥

हे तात! वह आहुक भील निषधनगरमें वीरसेनका पुत्र नल नामवाला महान् राजा हुआ। उसकी पती आहुका भीलनी विदर्भनगरके राजा भीमसेनकी पुत्री दमयन्ती नामसे प्रसिद्ध हुई। वे शिवावतार यतीश्वर भी हंसरूपमें अवतरित हुए, जिन्होंने दमयन्तीका विवाह नलके साथ करवाया ॥ ३३—३५ ॥

पूर्व समयमें उनके द्वारा किये गये [अतिथिके] सत्काररूप महापुण्यके कारण प्रभु शिवजीने हंसरूप धारणकर [इस जीवनमें] दोनोंको महान् सुख प्रदान किया ॥ ३६ ॥

अनेक प्रकारका वार्तालाप करनेमें निपुण हंसावतार शिवजीने दमयन्ती तथा नलको महान् सुख प्रदान किया ॥ ३७ ॥

पवित्र कीर्तिवाले यतीश्वर नामक तथा हंस नामक शिवावतारका यह चरित्र अत्यन्त पवित्र, परम अद्भुत तथा निश्चय ही मुक्तिदायक है ॥ ३८ ॥

जो यतीश तथा ब्रह्महंस नामक अवतारके शुभ चरित्रको सुनता है अथवा सुनाता है, वह परम गति प्राप्त करता है। यह आख्यान निष्पाप, सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाला, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला,

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यतिनाथब्रह्मसंहायशिवावतारचरितवर्णन नामक अद्वाईसर्वां अध्याय पूर्ण दुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके कृष्णादर्शन नामक अवतारकी कथा

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब आप नभगको ज्ञान प्रदान करनेवाले कृष्णादर्शन नामक उत्तम शिवावतारका प्रवण कीजिये ॥ १ ॥

श्राद्धदेवके इक्ष्वाकु आदि जो प्रमुख पुत्र हुए, उनमें नभग नौवें पुत्र थे, उन्हींके पुत्र नाभाग कहे गये हैं ॥ २ ॥

उनके पुत्र अम्बरीष थे। वे विष्णुजीके भक्त हुए, जिनकी ब्राह्मणभक्तिसे दुर्वासाजी उनपर प्रसन्न हुए थे ॥ ३ ॥ हे मुने! अम्बरीषके पितामह जो नभग कहे गये हैं, आप उनका चरित्र सुनिये। जिनको सदाशिवजीने ज्ञान दिया था ॥ ४ ॥

मनुके अति बुद्धिमान् तथा जितेन्द्रिय पुत्र नभग जब पढ़नेके लिये गुरुकुलमें निवास करने लगे, उसी समय मनुके इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंने उनको भाग दिये बिना ही अपने-अपने भागोंको क्रमसे विभाजित कर लिया ॥ ५-६ ॥

वे महाबुद्धिमान् और भाग्यवान् पुत्र अपने पिताकी आज्ञासे अपने-अपने भागको लेकर सुखपूर्वक उत्तम राज्यका भोग करने लगे ॥ ७ ॥

उसके बाद ब्रह्मचारी नभग क्रमसे सांगोपांग सभी वेदोंका अध्ययन करके गुरुकुलसे वहाँ लौटे। तब हे मुने! इक्ष्वाकु आदि अपने सभी भाइयोंको राज्य विभक्त किये हुए देखकर अपना भाग प्राप्त करनेकी इच्छासे नभगने उनसे स्नेहपूर्वक कहा— ॥ ८-९ ॥

नभग बोले—हे भाइयो! आपलोगोंने मेरा हिस्सा बिना दिये ही पिताकी सम्पत्ति जैसे-तैसे आपसमें बाँट ली, अब मैं अपने दायरभागके लिये आपलोगोंके पास आया हूँ ॥ १० ॥

भक्तिको बढ़ानेवाला एवं उत्तम है ॥ ३९-४० ॥

यतीश्वर तथा हंसरूप शिवका यह चरित्र सुनकर मनुष्य इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यतिनाथब्रह्मसंहायशिवावतारचरितवर्णन

नामक अद्वाईसर्वां अध्याय पूर्ण दुआ॥ २८॥

[उनके भाइयोंने कहा—] दायका विभाग करते समय हमलोग तुम्हें भूल गये, अब हमलोगोंने तुम्हारे हिस्सेमें पिताजीको नियत किया है, अतः तुम उन्होंको ग्रहण करो, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥

भाइयोंकी वह बात सुनकर नभग अत्यन्त विस्मित हो गये और अपने पिताके पास आकर कहने लगे ॥ १२ ॥

नभग बोले—हे तात! जब मैं ब्रह्मचारी होकर गुरुकुलमें पढ़नेके लिये चला गया था, तभी उन सभी भाइयोंने मुझे छोड़कर सारा राज्य बाँट लिया ॥ १३ ॥

वहाँसे लौटकर जब मैं अपने हिस्सेके लिये उनसे आदरपूर्वक पूछने लगा। तो उन्होंने आपको ही मेरे भागके रूपमें दिया, इसलिये मैं [आपके पास] आया हूँ ॥ १४ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उनका वचन सुनकर विस्मित हुए पिता श्राद्धदेवने सत्यधर्ममें निरत अपने पुत्रको धीरज बैंधाते हुए कहा— ॥ १५ ॥

मनु बोले—हे तात! तुम भाइयोंकी बातमें विश्वास मत करो। उनका यह वचन तुम्हें धोखा देनेके लिये है। मैं तुम्हारे भोगका साधनभूत परम दाय नहीं हूँ ॥ १६ ॥

किंतु उन धोखेबाजोंने तुम्हारे लिये मुझे दायभागके रूपमें दिया है, अतः मैं तुम्हारे जीवन-निर्वाहका ठीक-ठीक उपाय बताता हूँ, तुम श्रवण करो ॥ १७ ॥

इस समय आंगिरसगोत्रीय विद्वान् ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, उस यज्ञमें वे अपने छठे दिनके कर्ममें भूल कर जाते हैं ॥ १८ ॥

अतः हे नभग! हे महाकवे! तुम वहाँ जाओ और

जाकर विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्तोंको उन्हें बतलाओ,
जिससे वह यज्ञ शुद्ध हो सके ॥ १९ ॥

उस यज्ञकर्मके समाप्त हो जानेपर जब वे ब्राह्मण स्वर्ग जाने लगेंगे तो वे प्रसन्न होकर यज्ञसे बचा हुआ धन तुम्हें दे देंगे ॥ २० ॥

नन्दीश्वर बोले—पिताकी यह बात सुनकर सत्य बोलनेवाले नभग बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ गये, जहाँ वह उत्तम यज्ञ हो रहा था और हे मुने ! उस दिनके यज्ञकर्ममें उन परम बुद्धिमान् नभगने विश्वेदेवके दोनों सूक्तोंको स्पष्ट रूपसे कहा ॥ २१-२२ ॥

यज्ञकर्मके समाप्त हो जानेपर वे अंगिरस विष्र यज्ञसे बचा हुआ सात्रा धन उन्हें देकर स्वर्ग चले गये ॥ २३ ॥

उस श्रेष्ठ यज्ञके शेष धनको ज्यों ही नभगने लेना चाह, उसी समय यह जानकर उत्तम लीला करनेवाले शिवजी शीघ्र ही प्रकट हो गये। वे कृष्णदर्शन शिवजी सर्वांगसुन्दर तथा श्रीमान् थे। यज्ञशेष धन किसका भाग होता है—इस बातकी परीक्षा करनेके लिये तथा नभगको भाग और उत्तम ज्ञान देनेके लिये वे प्रकट हुए थे ॥ २४-२५ ॥

इसके बाद परीक्षा करनेवाले ऐश्वर्यशाली उन कल्याणकरी शंकरने उन मनुपुत्र नभगके पास उत्तरकी ओरसे जाकर [उनका अभिग्राय जाननेके लिये] उनसे कहा— ॥ २६ ॥

ईश्वर बोले—हे पुरुष ! तुम कौन हो ? तुम्हें यहाँ किसने भेजा है ? यह यज्ञमण्डपसम्बन्धी धन तो मेरा है, तुम इसे क्यों ग्रहण करते हो, मेरे सामने सत्य-सत्य बताओ ॥ २७ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात ! मनुपुत्र कवि नभगने उनका वचन सुनकर अत्यन्त विनप्र होकर उन कृष्णदर्शन पुरुषसे कहा— ॥ २८ ॥

नभग बोले—यज्ञसे (अवशिष्ट) प्राप्त हुए इस धनको ऋषियोंने मुझे दिया है। हे कृष्णदर्शन ! तब आप इसे लेनेसे मुझे क्यों मना करते हैं ? ॥ २९ ॥

नन्दीश्वर बोले—नभगद्वारा कहे गये सत्य वचनको सुनकर प्रसन्नचित्त कृष्णदर्शन पुरुषने कहा— ॥ ३० ॥

कृष्णदर्शन बोला—हे तात ! हम देनेके इस विवादमें तुम्हारे पिता प्रमाण हैं, जाओ और उनसे पूछो,

वे जो कुछ भी कहेंगे, वही सत्यरूपमें प्रमाण होगा ॥ ३१ ॥
नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! उनका यह वचन सुनकर मनुपुत्र कवि नभग अपने पिताके पास आये और प्रसन्नतासे उनके द्वारा कही गयी बातके विषयमें पूछें लगे ॥ ३२ ॥

तब उन श्राद्धदेव मनुने पुत्रकी बात सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण किया और वस्तु-स्थितिको समझकर उससे कहा— ॥ ३३ ॥

मनु बोले—हे तात ! मेरी बात सुनो, वे कृष्णदर्शन पुरुष साक्षात् शिव हैं। सब वस्तु उन्होंकी है और विशेषकर यज्ञसे प्राप्त वस्तु उन्होंकी है। यज्ञसे बचा हुआ भाग रुद्धभाग कहा गया है। उनकी प्रेरणासे कहीं-कहीं बुद्धिमान् लोग ऐसा कहा करते हैं ॥ ३४-३५ ॥

वे देव ईश्वर ही यज्ञसे बची हुई सारी वस्तुके अधिकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। उन विभुकी इच्छाके परे है ही क्या ! ॥ ३६ ॥

हे नभग ! तुम्हारे ऊपर कृपा करनेके लिये ही वे प्रभु उस रूपमें आये हुए हैं, तुम वहाँ जाओ और अपने सत्यसे उन्हें प्रसन्न करो, अपने अपराधके लिये क्षमा माँगो और भलीभौति प्रणाम करके उनकी स्तुति करो। वे शिव ही सर्वप्रभु, यज्ञके स्वामी एवं अखिलेश्वर हैं। हे तात ! ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता, सिद्धगण एवं सभी ऋषि भी उनके अनुग्रहसे सभी कर्मोंको करनेमें समर्थ होते हैं। हे पुत्रश्रेष्ठ ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम वहाँ शीघ्र जाओ, विलम्ब मत करो और सर्वेश्वर महादेवको सब प्रकारसे प्रसन्न करो ॥ ३७-४० ॥

नन्दीश्वर बोले—इतना कहकर श्राद्धदेव मनुने पुत्रको शीघ्र ही शिवजीके समीप भेजा। वे महाबुद्धिमान् नभग भी शिवजीके पास शीघ्र जाकर हाथ जोड़कर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके अति प्रसन्नचित्त होकर विनयपूर्वक कहने लगे— ॥ ४१-४२ ॥

नभग बोले—हे ईश ! इन तीनों लोकोंमें जो भी वस्तु है, सब आपकी ही वस्तु है, फिर यज्ञशेष वस्तुके विषयमें कहना ही क्या—ऐसा मेरे पिताने कहा है ॥ ४३ ॥
हे नाथ ! मैंने अज्ञानवश भ्रमसे जो वचन कहा है, मेरे उस अपराधको आप क्षमा करें, मैं सिर झुकाकर

आपको प्रसन्न करता हूँ॥ ४४॥

ऐसा कहकर वे नभग अत्यन्त दीनबुद्धि होकर हाथ जोड़कर विनम्र हो उन कृष्णदर्शन महेश्वरको स्तुति करने लगे॥ ४५॥

शुद्धात्मा महाबुद्धिमान् श्राद्धदेव भी अपने अपराधके लिये क्षमायाचना करते हुए विनम्र हो हाथ जोड़कर उन शिवजीको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे॥ ४६॥

[हे मुने!] इसी बीच ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता, सिद्ध एवं मुनिगण भी वहाँ आ गये और महोत्सव करते हुए वे सब भक्तिसे हाथ जोड़कर पृथक्-पृथक् भर्तीभाँति प्रणामकर विनम्र हो उनकी स्तुति करने लगे॥ ४७-४८॥

इसके बाद कृष्णदर्शनरूपधारी सदाशिवने उन [देवताओं तथा मुनियों]-को कृपादृष्टिसे देखकर प्रेमपूर्वक हँसते हुए नभगसे कहा—॥ ४९॥

कृष्णदर्शन बोले—तुम्हरे पिताने जो धर्मयुक्त वचन कहा है, बात भी वैसी ही है और तुमने भी सारी बात सत्य-सत्य कही, इसलिये तुम साधु हो, इसमें संशय नहीं है। अतः मैं तुम्हारे इस सत्य आचरणसे सर्वथा प्रसन्न हूँ और कृपापूर्वक तुम्हें सनातन ब्रह्मका उपदेश करता हूँ॥ ५०-५१॥

हे नभग! तुम [यज्ञकर्ता] ब्राह्मणोंसहित शीघ्र ही

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दीश्वर-सनकुमार-संवादमें कृष्णदर्शन शिवावतारवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वरजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब आप नाना प्रकारकी लीला करनेवाले प्रभु शिवजी दिग्मवर, शिवजीके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन सुनिये, जो इन्द्रके घमण्डको नष्ट करनेवाला है॥ १॥

हे मुने! पूर्व समयमें बृहस्पति एवं देवताओंके सहित इन्द्र शिवजीका दर्शन करनेके लिये कैलास पर्वतपर जा रहे थे॥ २॥

अपने दर्शनके लिये निरत चित्तवाले बृहस्पति तथा इन्द्रको आते जानकर उनके भावकी परीक्षा करनेके लिये

महाज्ञानी हो जाओ, अब मेरे द्वारा प्रदत्त इस समस्त [यज्ञशेष] सामग्रीको तुम मेरी कृपासे ग्रहण करो॥ ५२॥

हे महामते! तुम निर्विकार होकर इस संसारमें सभी प्रकारका सुख भोगो, मेरी कृपासे तुम [यज्ञकर्ता] ब्राह्मणोंके सहित सदगति प्राप्त करोगे॥ ५३॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात! सत्यसे प्रेम करनेवाले वे भगवान् रुद्र ऐसा कहकर उन सबके देखते-देखते वर्होपर अनन्तधार्ण हो गये॥ ५४॥

हे मुनिसत्तम! ब्रह्मा, विष्णु आदि वे समस्त देवगण आनन्दसे उस दिशाको नमस्कारकर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये॥ ५५॥

अपने पुत्र नभगको साथ लेकर श्राद्धदेव भी प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये और वहाँ अनेक सुखोंको भोगकर अन्तमें वे शिवलोकको चले गये॥ ५६॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने नभगको आनन्द देनेवाले कृष्णदर्शन नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया॥ ५७॥

यह पवित्र आत्मान सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है, पढ़ने और सुननेवालोंको भी यह समस्त कामनाओंका फल प्रदान करता है॥ ५८॥

जो बुद्धिमान् प्रातःकाल तथा सायंकाल इस चारित्रका स्मरण करता है, वह कवि तथा मन्त्रवेत्ता हो जाता है और अन्तमें परमगति प्राप्त करता है॥ ५९॥

नाना प्रकारकी लीला करनेवाले प्रभु शिवजी दिग्मवर, महाभीमरूप तथा जलती हुई अग्निके समान प्रभावाले अवधूतके रूपमें स्थित हो गये। सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले तथा सुन्दर आकृतिवाले वे अवधूतस्वरूप शिवजी लटकते हुए बस्त्र धारण किये उनका मार्ग रोककर खड़े हो गये॥ ३-५॥

उसके बाद शिवजीके समीप जाते हुए उन बृहस्पति तथा इन्द्रने [अपने] मार्गके मध्यमें अद्वुत

आकारवाले एक भयंकर पुरुषको देखा ॥ ६ ॥

हे मुने ! यह देखकर अधिकामदमें चूर हुए इन्द्रने अपने मार्गके बीचमें खड़े पुरुषको उसे शंकर न जानकर उससे पूछा ॥ ७ ॥

शक्त बोले—दिग्मवर अवधूत वेष धारण किये हुए तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और तुम्हारा क्या नाम है ? तुम मुझे ठीक-ठीक शीघ्र बताओ ॥ ८ ॥

इस समय शिवजी अपने स्थानपर हैं अथवा कहों गये हुए हैं ? मैं देवताओं और गुरु बृहस्पतिको साथ लेकर उनके दर्शनहेतु जा रहा हूँ ॥ ९ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनकुमार !] इन्द्रके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर लीलासे [अवधूत] देहधारी तथा अहंकारको चूर्ण करनेवाले उन पुरुषरूप प्रभु शिवने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ १० ॥

इन्द्रने उनसे पुनः पूछा, किंतु अलक्षित गतिवाले महाकैंतुकी वे दिग्मवर शिव फिर भी कुछ नहीं बोले ॥ ११ ॥

जब त्रैलोक्याधिपति स्वराद् इन्द्रने पुनः पूछा, तो भी महान् लीला करनेवाले वे महायोगी मौन ही रहे । इस प्रकार वरंगवर इन्द्रके द्वारा पूछे जानेपर भी दिग्मवर भगवान् शिवजी इन्द्रका गर्व नष्ट करनेकी इच्छासे कुछ नहीं बोले ॥ १२-१३ ॥

तब तीनों लोकोंके ऐश्वर्यसे गर्वित इन्द्रको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने क्रोधसे उन जटाधारीको धमकाते हुए कहा— ॥ १४ ॥

इन्द्र बोले—रे मूढ ! रे दुर्मति ! तुमने मेरे पूछनेपर भी कुछ भी उत्तर नहीं दिया, इसलिये मैं इस वज्रसे तुम्हारा वध करता हूँ, देखें, कौन तुम्हारी रक्षा करता है । ऐसा कहकर इन्द्रने क्रोधपूर्वक उनकी ओर देखकर उन दिग्मवरको मारनेके लिये वज्र उठाया ॥ १५-१६ ॥

सदाशिव शंकरने हाथमें वज्र उठाये हुए इन्द्रको देखकर शीघ्र ही उनका स्वाम्भन कर दिया ॥ १७ ॥

तदनन्तर भयंकर तथा विकराल नेत्रोंवाले वे पुरुष कुपित होकर अपने तेजसे [मानो इन्द्रको] जलाते हुए शीघ्र ही प्रज्वलित हो उठे ॥ १८ ॥

उस समय अपनी बाहुके स्तम्भित हो जानेके कारण उत्पन्न हुए क्रोधसे इन्द्र भीतर-ही-भीतर इस

तरह जल रहे थे, जिस प्रकार मन्त्रके द्वारा अपने पराक्रमके रुक जानेसे सर्प मन-ही-मन जलता है ॥ १९ ॥

बृहस्पतिने तेजसे प्रज्वलित होते हुए उन पुरुषको देखकर अपनी बुद्धिसे उन्हें शिव जान लिया और शीघ्रतासे उन्हें प्रणाम किया ॥ २० ॥

इसके बाद उदार बुद्धिवाले वे गुरु बृहस्पति हाथ जोड़कर पुनः पृथ्वीमें [लेटकर] दण्डवत् प्रणाम करके भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

गुरु बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे शरणागत-वत्सल ! प्रसन्न होइये । हे गौरीश ! हे सर्वेश्वर ! आपको नमस्कार है । ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता भी आपकी मायासे मोहित होकर आपको यथार्थ रूपमें नहीं जान पाते हैं, केवल आपकी कृपासे ही जान सकते हैं ॥ २२-२३ ॥

नन्दीश्वर बोले—बृहस्पतिने इस प्रकार प्रभु शिवजीकी स्तुति करके इन्द्रको उन ईश्वरके चरणोंमें गिरा दिया । तदनन्तर हे तात ! उदार बुद्धिवाले विद्वान् देवगुरु बृहस्पतिने हाथ जोड़कर विनग्रातासे कहा— ॥ २४-२५ ॥

बृहस्पति बोले—हे दीननाथ ! हे महादेव ! मैं आपके चरणोंमें पड़ा हूँ, आप मेरा और इनका उदार कीजिये; क्रोध नहीं, बल्कि प्रेम कीजिये ॥ २६ ॥

हे महादेव ! आप प्रसन्न होइये और अपने शरणमें आये हुए इन्द्रकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आपके भालूसे नेत्रसे उत्पन्न हुई यह अग्नि [इन्द्रको जलानेके लिये] आ रही है ॥ २७ ॥

नन्दीश्वर बोले—देवगुरुका यह वचन सुनकर अवधूत आकृतिवाले, करुणासिन्धु, उत्तम लीला करनेवाले उन प्रभुने हँसते हुए कहा— ॥ २८ ॥

अवधूत बोले—मैं क्रोधके कारण अपने नेत्रसे निकले हुए तेजको किस प्रकार धारण करूँ ? क्या सर्प कुचुकीका त्वाग करनेके उपरान्त पुनः उसे धारण कर सकता है ॥ २९ ॥

नन्दीश्वर बोले—उन शंकरके इस वचनको सुनकर भयसे व्याकुल मनवाले बृहस्पतिने हाथ जोड़कर पुनः कहा— ॥ ३० ॥

बृहस्पति बोले—हे देव ! हे भगवन् ! भक्त सर्व अनुकम्पाके योग्य होते हैं । हे शंकर ! अपने भक्तवत्स

नामको सार्थक कीजिये ॥ ३१ ॥

हे देवेश! आप अपने इस अत्यन्त उग्र तेजको किसी अन्य स्थानपर रख सकते हैं; आप सभी भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं, अतः इन्द्रका उद्धार कीजिये ॥ ३२ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार बृहस्पति के कहनेपर भक्तवत्सल नामसे पुकारे जानेवाले तथा भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले भगवान् रुद्रने प्रसन्नचित होकर देवगुरुसे कहा— ॥ ३३ ॥

रुद्र बोले—हे सुराचार्य! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, इसलिये आपको उत्तम वर देता हूँ कि इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण आप लोकमें जीव नामसे विख्यात होंगे। मेरे भालस्थ नेत्रसे जो देवताओंके लिये असह्य अग्नि उत्पन्न हुई है, उसे मैं दूर फेंक देता हूँ, जिससे कि यह इन्द्रको पीड़ित न कर सके ॥ ३४-३५ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर शिवजीने अपने भालस्थ नेत्रसे उत्पन्न हुई उस अन्धुर अग्निको हाथमें लेकर लवणसमुद्रमें फेंक दिया ॥ ३६ ॥

उत्पश्चात् शिवके भालनेत्रसे उत्पन्न वह तेज, जो लवणसमुद्रमें फेंका गया था, शीघ्र ही बालकरूपमें परिणत हो गया ॥ ३७ ॥

वही बालक समुद्रका पुत्र तथा समस्त असुरोंका अधिपति होकर जलन्थर नामसे विख्यात हुआ, फिर देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभु शिवजीने ही उसका वध किया ॥ ३८ ॥

लोकल्याणकारी शिवजी अवधूतरूपसे इस प्रकारका सुन्दर चरित्रकर पुनः अन्तर्धान हो गये और सभी देवता

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके नन्दीश्वर-सनकुमार-संवादमें

अवधूतेश्वरशिवावतारचरित्रवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३० ॥

सुखी तथा निर्भय हो गये। बृहस्पति और इन्द्र भी



भयमुक्त होकर अत्यन्त सुखी हो गये ॥ ३९-४० ॥

जिनका दर्शन करनेहेतु इन्द्र और बृहस्पति जा रहे थे, उनका दर्शन प्राप्तकर वे कृतार्थ हो गये और प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको छले गये ॥ ४१ ॥

[हे सनकुमार!] मैंने दुष्टोंको दण्ड देनेवाले तथा परमानन्दायक परमेश्वर शिवजीके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन आपसे कर दिया ॥ ४२ ॥

यह आख्यान पवित्र, दिव्य, यशको बढ़ानेवाला, स्वर्ग, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। जो स्थिरचित हो प्रतिदिन इसे सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें शिवकी गतिको प्राप्त कर लेता है ॥ ४३-४४ ॥

इकतीसवाँ अध्याय

शिवजीके भिक्षुवर्यावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे विप्र! अब मैं प्रेम करनेवाला सत्यरथ नामक एक राजा था ॥ २ ॥ शिवजीके उस अवतारका वर्णन करूँगा, जिसे [किसी] नारीके सन्देहका निवारण करनेके लिये उन्होंने अपने भक्तपर दया करके ग्रहण किया था, उसे आप सुनिये ॥ १ ॥

विदर्भनगरमें धर्मात्मा, सत्यशील तथा शिवभक्तोंसे

हे मुने! धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते एवं शिवधर्मसे सुखपूर्वक निवास करते हुए उस राजाका बहुत समय बीत गया ॥ ३ ॥

किसी समय उसके नगरको अवरुद्ध करनेवाले,

बहुत-सी सेनासे युक्त तथा बलसे उन्नत शाल्वसंज्ञक क्षत्रिय वीरोंके साथ उस राजाका घोर युद्ध हुआ ॥ ४ ॥

उन शाल्ववीरोंके साथ भयानक युद्ध करके नष्ट हुए पराक्रमवाला वह विदर्भराज दैवयोगसे उनके द्वारा मार दिया गया । शाल्वोंके द्वारा रणभूमिमें उस राजाके मारे जानेपर उसके बचे हुए सैनिक भयसे व्याकुल होकर मन्त्रियोंके साथ भाग गये ॥ ५-६ ॥

हे मुने ! उसके बाद उस राजाकी गर्भवती रानी शत्रुओंके द्वारा घिरी होनेपर भी रात्रिके समय बड़े यत्नसे नगरसे बाहर चली गयी । शोकसे सन्ताप वह रानी [राजधानीसे] निकलकर शिवके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई पूर्व दिशाकी ओर बहुत दूर चली गयी ॥ ७-८ ॥

इस प्रकार शिवजीकी दयासे [सुरक्षित हुई] वह रानी नगरसे बहुत दूर जा पहुँची और उसने प्रातःकालके समय [वहाँपर] एक स्वच्छ सरोवरको देखा ॥ ९ ॥

वहाँ आकर राजाकी उस सुकुमार पत्नीने शोकसे व्याकुल हो विश्रामके लिये उस सरोवरके तटपर एक छायादार वृक्षका आश्रय लिया । वहाँपर रानीने दैववश शुभ ग्रहोंसे युक्त मुहूर्तमें सर्वलक्षणसम्पन्न दिव्य पुत्रको जन्म दिया ॥ १०-११ ॥

उसी समय भाग्यवश प्याससे व्याकुल हुई उस सद्गोजात शिशुकी माता वह रानी ज्यों ही जल लेनेके लिये सरोवरमें उतरी कि जलमें स्थित ग्राहने उसे पकड़ लिया । भूख एवं प्याससे अत्यधिक व्याकुल तथा पिता एवं मातासे रहित वह नवजात बालक सरोवरके किनारे रोने लगा ॥ १२-१३ ॥

हे मुने ! [उत्पन्न होते ही भूख-प्याससे व्याकुल हो] रोते हुए उस नवजात शिशुपर सर्वान्तर्यामी तथा सर्वरक्षक वे महेश्वर दयार्थ हो उठे ॥ १४ ॥

उसी समय कष्ट दूर करनेवाले भगवान्‌के द्वारा मनसे प्रेरित की गयी एक भिखारिन वहाँ अकस्मात् आ पहुँची । अपने एक वर्षके पुत्रको लिये हुए उस विश्वाने उस रोते हुए अनाथ बच्चेको वहाँ देखा ॥ १५-१६ ॥

हे मुने ! उस बालकको निर्जन वनमें देखकर वह ब्राह्मणी अत्यन्त आशर्वद्यचकित हो अपने हृदयमें बहुत विचार करने लगी ॥ १७ ॥

अहो ! मैंने इस समय बहुत बड़ा आशर्च्य देखा, जो असम्भव एवं मन तथा वाणीसे सर्वथा अकथनीय है। तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ इस बालकका अभीतक नालच्छेदन नहीं हुआ है और यह मातृविहीन हो रोता हुआ अकेला ही पृथिवीपर लेटा हुआ है ॥ १८-१९ ॥

यहाँ तो इसको सहायता करनेवाले इसके माता-पिता आदि कोई नहीं हैं, इसमें क्या कारण हो सकता है, अहो, दैवबल बड़ा प्रबल है ॥ २० ॥

यह न जाने किसका पुत्र है, इसे जाननेवाला भी यहाँ कोई नहीं है, जिससे इसके जन्मके विषयमें मैं पूछूँ। मुझे तो इसपर बहुत ही दया आ रही है ॥ २१ ॥

मैं अब इस बालकका अपने औरसपुत्रकी भाँति पालन करना चाहती हूँ, परंतु इसके कुल और जन्म आदिका ज्ञान न होनेसे इसे छूनेका साहस नहीं होता ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर बोले—जब वह श्रेष्ठ ब्राह्मणी अपने मनमें इस प्रकारका विचार कर रही थी, उसी समय भक्तवत्सल शिवजीने बड़ी दया की ॥ २३ ॥

सदैव महान् लीलाएँ करनेवाले, स्वयं उपाधिरहित तथा भक्तोंको हर प्रकारका सुख देनेवाले उन महेश्वरने [उस समय] भिक्षुकका रूप धारण कर लिया ॥ २४ ॥

भिक्षुकरूपधारी वे परमेश्वर वहाँ सहसा आये, जहाँ उस बालकके विषयमें जाननेकी इच्छावाली सन्देहग्रस्त ब्राह्मणी विद्यमान थी ॥ २५ ॥

तब अविज्ञातगति तथा दयासागर उन भिक्षुक-रूपधारी भगवान् शंकरने हँसकर उस ब्राह्मणपत्नीसे कहा— ॥ २६ ॥

भिक्षुश्रेष्ठ बोले—हे ब्राह्मणी ! तुम अपने मनमें शंका मत करो और दुखी मत होओ, तुम अपने पुत्रतुल्य इस पवित्र बालककी प्रसन्नतापूर्वक रक्षा करो थोड़े ही समयके उपरान्त इस बालकसे तुम्हारा परम कल्प्यन होनेवाला है, अतः सब प्रकारसे इस महातेजस्वी शिशुका पालन-पोषण करो ॥ २७-२८ ॥

नन्दीश्वर बोले—भिक्षुरूप धारण करनेवाले करुणासागर शिवजीने जब इस प्रकार कहा, तब ब्राह्मणीने प्रेमके साथ आदरपूर्वक उनसे पूछा— ॥ २९ ॥

ब्राह्मणी बोली— मैं आपकी आज्ञासे अपने पुत्रके समान इस बालककी रक्षा करूँगी तथा भरण-पोषण करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है, आप मेरे भाग्यसे ही यहाँ पधारे हैं। फिर भी मैं आपसे सत्य-सत्य विशेष रूपसे जानना चाहती हूँ कि यह कौन है, यह किसका पुत्र है और यहाँ आये हुए आप कौन हैं? ॥ ३०-३१ ॥

हे भिक्षुवर! हे प्रभो! मुझे बारंबार ऐसा ज्ञात हो रहा है कि आप दयासागर भगवान् शिव हैं और यह शिशु पूर्वजन्ममें आपका भक्त था ॥ ३२ ॥

किसी कर्मके दोषसे यह इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, उसे भोगकर आपकी कृपासे यह पुनः परम कल्याणको प्राप्त करेगा ॥ ३३ ॥

आपकी मायासे मोहित हुई मैं अपना मार्ग भूलकर इधर आ गयी, [जिससे ज्ञात होता है कि] इसके पालन करनेके लिये आपने ही मुझे यहाँ भेजा है ॥ ३४ ॥

नन्दीश्वर बोले— शिवजीके दर्शनसे ज्ञानको प्राप्त हुई तथा विशेषरूपसे जानेकी इच्छावाली उस ब्राह्मणीसे भिक्षुरूपधारी शिवने कहा— ॥ ३५ ॥

भिक्षुवर बोले— हे विप्रपत्नि! इस सर्वमान्य बालकका पूर्वकालीन इतिहास तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कह रहा हूँ। हे अनन्दे! तुम प्रेमपूर्वक इसे सुनो ॥ ३६ ॥

यह [बालक] शिवभक्त, बुद्धिमान् तथा अपने धर्ममें निरत रहनेवाले विदर्भारज सत्यरथका पुत्र है ॥ ३७ ॥

[हे ब्राह्मणी!] सुनो, राजा सत्यरथ शत्रु शाल्वोद्धारा युद्धमें मार डाले गये, जिससे अत्यन्त भयभीत हुई उनकी पत्नी रात्रिमें शीघ्रतासे अपने घरसे निकल गयी ॥ ३८ ॥

उन्होंने इस वनमें आकर प्रातःकाल होते-होते इस पुत्रको जन्म दिया, किंतु प्यास लगनेसे वह सरोवरमें उतरी, तब दुर्भाग्यसे ग्राहने उन्हें अपना ग्रास बना लिया ॥ ३९ ॥

नन्दीश्वर बोले— इस प्रकार उन्होंने बालककी उत्पत्ति, उसके पिताका संग्राममें मरण एवं ग्राहद्वारा उसकी माताकी मृत्युके विषयमें उससे कहा ॥ ४० ॥

हे मुनीश्वर! तब वह ब्राह्मणी अत्यन्त विस्मित हुई और उसने ज्ञानी तथा सिद्धस्वरूप उन भिक्षुकसे पुनः

पूछा— ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणी बोली— हे भिक्षो! इस राजपुत्रका श्रेष्ठ पिता उत्तमोत्तम भोग करते हुए भी इन क्षुद्र शाल्वोंके द्वारा किस प्रकार मारा गया और ग्राहने इस शिशुकी माताको शीघ्र क्यों ग्रास बना लिया, जिसके कारण यह जन्मसे अनाथ एवं बन्धुरहित हो गया है? ॥ ४२-४३ ॥

हे भिक्षो! मेरा यह पुत्र भी परम दरिद्र तथा भिक्षुक क्यों हुआ? किस उपायसे मेरे ये दोनों पुत्र सुखी होंगे, यह बताइये ॥ ४४ ॥

नन्दीश्वर बोले— उस ब्राह्मणीका यह वचन सुनकर भिक्षुरूपधारी उस परमेश्वरने प्रसन्नचित होकर हँसते हुए उससे कहा— ॥ ४५ ॥

भिक्षुवर्य बोले— हे विप्रपत्नि! मैं तुम्हारे सभी प्रश्नोंका उत्तर विशेषरूपसे दे रहा हूँ, तुम सावधान होकर इस उत्तम चरित्रका श्रवण करो ॥ ४६ ॥

विदर्भ देशका राजा, जो इस बालकका पिता था, वह पूर्वजन्ममें पाण्ड्य देशका श्रेष्ठ राजा था ॥ ४७ ॥

सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश करनेवाला वह शिवभक्त राजा सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करता हुआ अपनी प्रजाको प्रसन्न रखता था ॥ ४८ ॥

किसी समय उसने दिनमें निराहार रहकर नक्करत करते हुए त्रयोदशीके प्रदोषकालमें शिवकी पूजा की। जब वह प्रदोषकालमें शिवजीका पूजन कर रहा था, तभी नगरमें बड़ा भयानक शब्द हुआ ॥ ४९-५० ॥

उस [भयावह] ध्वनिको सुनकर वह राजा शत्रुके आक्रमणकी आशंकासे शिवार्चनका परित्यागकर घरसे बाहर निकल पड़ा ॥ ५१ ॥

इसी समय उसका महाबली मन्त्री भी शत्रुता करनेवाले सामन्तको साथ लेकर राजाके निकट आ गया ॥ ५२ ॥

अत्यधिक क्रोधसे व्याकुल राजाने उस शत्रु सामन्तको देखकर विना धर्मधर्मका विचार किये निर्दयताके साथ उसका सिर कटवा दिया ॥ ५३ ॥

उस शिवपूजाको समाप्त किये विना ही अपवित्र तथा नष्ट बुद्धिवाले राजने रातमें प्रेमपूर्वक भोजन किया, जिससे वह मंगलहीन हो गया ॥ ५४ ॥

उसके पश्चात् इस जन्ममें वह विदर्भ देशका

शिवभक्त राजा हुआ, किंतु [पूर्वजन्ममें] शिवार्चनमें होनेवाले पापके कारण शत्रुओंने राज्यसुखभोगके समय ही उसका वध कर दिया ॥ ५५ ॥

पूर्वजन्ममें जो उसका पुत्र था, वह ही इस जन्ममें भी हुआ है, किंतु शिवपूजाके व्यतिक्रमसे यह सारे ऐश्वर्यसे रहित है ॥ ५६ ॥

इसकी माताने पूर्वजन्ममें अपनी सौतको छलसे मरवा दिया था, उस पापसे इस जन्ममें उसे ग्राहने निगल लिया ॥ ५७ ॥

[हे ब्राह्मणी !] मैंने इन सबका सारा वृत्तान्त तुमसे कह दिया, भक्तिपूर्वक शिवकी अर्चना न करनेवाले मनुष्य दरिद्र हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

तुम्हारा यह पुत्र पूर्वजन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण था, इसने यज्ञादि सुकर्म किये नहीं; केवल प्रतिग्रहोंको लेनेमें ही अपना जीवन बिता दिया । हे ब्राह्मणी ! इसीलिये तुम्हारा पुत्र दरिद्र हुआ है, उन दोषोंको दूर करनेके लिये तुम शंकरकी शरणमें जाओ और इन दोनों बालकोंको लेकर शिवजीकी पूजा करो । इन दोनोंका यज्ञोपवीत हो जानेके पश्चात् शिवजी कल्याण करेंगे ॥ ५९—६१ ॥

नन्दीश्वर बोले—उसे ऐसा उपदेश देकर भिक्षुरूपधारी भक्तवत्सल भगवान् शिवने उसे अपना



उत्कृष्ट स्वरूप दिखाया ॥ ६२ ॥

इसके बाद वह ब्राह्मणी उन भिक्षुश्रेष्ठको शिव

जानकर उन्हें भलीभाँति प्रणाम करके प्रेमपूर्वक गद्गाद बाणीमें उन प्रभुकी स्तुति करने लगी ॥ ६३ ॥

उसके बाद विप्रपलीके देखते-देखते भिक्षुरूपधारी वे भगवान् शिव शीघ्र ही वहाँ अन्तर्धान हो गये ॥ ६४ ॥

भिक्षुकके चले जानेपर ब्राह्मणीको विश्वास हो गया और उस लड़केको लेकर वह अपने पुत्रसहित घर चली गयी ॥ ६५ ॥

एकचक्रा नामक रमणीय ग्राममें निवास करती हुई वह ब्राह्मणी उत्तम अन्नोंसे अपने पुत्र तथा राजपुत्रका पालन करने लगी ॥ ६६ ॥

पुनः ब्राह्मणीने उन दोनोंका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न किया, वे दोनों शिवपूजामें तत्पर हो अपने घरमें बढ़ने लगे ॥ ६७ ॥

हे तात ! वे दोनों ही शाण्डिल्य मुनिकी आज्ञासे नियममें तत्पर होकर शुभ ऋत करके प्रदोषकालमें शिवजीका पूजन करने लगे ॥ ६८ ॥

किसी समय ब्राह्मणपुत्रके बिना ही नदीमें स्नान करनेके लिये गये हुए राजपुत्रने धनसे परिपूर्ण एक सुन्दर कलश पाया ॥ ६९ ॥

इस प्रकार शिवजीकी पूजा करते हुए उन राजकुमार और ब्राह्मणकुमारके सुखपूर्वक चार महीने बीत गये ॥ ७० ॥

इसी रीतिसे अत्यन्त प्रसन्नतासे पुनः शिवजीका पूजन करते हुए उन दोनोंका उस घरमें एक वर्ष व्यतीत हुआ ॥ ७१ ॥

हे मुने ! एक वर्ष बीत जानेपर वह राजपुत्र एक दिन उस ब्राह्मणपुत्रके साथ सर्वव्यापक शिवकी कृपासे वनप्रान्तमें जा पहुँचा और अकस्मात् वहाँपर आयी हुई तथा उसके पिताद्वारा प्रदत्त गन्धर्वक-यासे विवाह करके अकण्टक राज्य करने लगा ॥ ७२—७३ ॥

जिस ब्राह्मणीने अपने पुत्रके समान उसका पालन-पोषण किया था, वही उसकी माता हुई तथा वह ब्राह्मणपुत्र उसका भाई हुआ ॥ ७४ ॥

इस प्रकार शिवजीकी आराधना करके धर्मगुप्त नामक वह राजपुत्र विदर्भनगरमें उस रानीके साथ सुखोपभोग करने लगा ॥ ७५ ॥

[हे मुने !] इस समय मैंने शिवजीके भिक्षुवर्यवतारका

वर्णन आपसे कर दिया, जो धर्मगुप्त नामक राजपुत्रको
सुख देनेवाला था ॥ ७६ ॥

यह आख्यान निष्पाप, पवित्र, पवित्र करनेवाला,
महान् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षका साधन एवं सम्पूर्ण

// इस प्रकार श्रीशिवमहायुगणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भिसुबर्याह्वशिवावतार चरित्रवर्णन
नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३१ ॥

मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है ॥ ७७ ॥

जो सावधान होकर इसे नित्य सुनता अथवा सुनाता
है, वह समस्त इच्छित भोगोंको भोगकर अन्तमें शिवपुरको
जाता है ॥ ७८ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

उपमन्युपर अनुग्रह करनेके लिये शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे तात ! परमेश्वर शिवका जो
सुरेश्वरावतार हुआ, जिसने धौम्यके ज्येष्ठ भ्राता
[उपमन्यु]-का हितसाधन किया था, मैं उसका वर्णन
करूँगा, आप श्रवण कीजिये ॥ १ ॥

व्याघ्रपादका उपमन्यु नामवाला एक पुत्र था, जो
परम बुद्धिमान् एवं सज्जनोंका प्रिय था, वह जन्मान्तरीय
[तपस्यासे] सिद्ध था और मुनिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ
था ॥ २ ॥

वह व्याघ्रपादपुत्र उपमन्यु जब बालक था, तभीसे
अपनी माताके साथ मामाके घर निवास करने लगा,
दैवयोगसे वह दरिद्र था ॥ ३ ॥

उसने कभी अपने मामाके घरमें थोड़ा-सा दूध पी
लिया था, फिर दूधके प्रति उसकी लालसा बढ़ गयी और
मातासे बारंबार दूध माँगने लगा ॥ ४ ॥

तब पुत्रका यह वचन सुनकर उस तपस्विनी माताने
घरके भीतर प्रवेश करके एक उत्तम उपाय किया ॥ ५ ॥

उसने उज्ज्वलित्वसे एकत्रित बीजोंको पोसकर उस
[आटे]-को पानीमें घोलकर पुत्रको बहला-फुसलाकर
वह कृत्रिम दूध उसे दे दिया ॥ ६ ॥

माताके द्वारा दिये गये कृत्रिम दूधको पीकर वह
बालक ‘यह दूध नहीं है’, इस प्रकार मातासे बोला और
पुनः रोने लगा ॥ ७ ॥

पुत्रका रुदन सुनकर कमलाके समान कोमलांगी
माताने हाथोंसे पुत्रके नेत्रोंको पोछकर दुखी होकर उससे
कहा— ॥ ८ ॥

माता बोली—हे पुत्र ! हम तो सदैव वनमें निवास

करते हैं, अतः यहाँ दूधकी प्राप्ति कैसे सम्भव है ?
शिवजीको प्रसन्न किये बिना तुम्हें दूधकी प्राप्ति नहीं हो
सकती ॥ ९ ॥

हे पुत्र ! पूर्वजन्ममें शिवजीको उद्देश्य करके जो
कर्म किया जाता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होता है,
इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

माताके इस प्रकारके वचनको सुनकर मातृवत्सल
वह व्याघ्रपादपुत्र शोकरहित होकर अपनी मातासे
बोला— ॥ ११ ॥

हे माता ! यदि शिवजी कल्याण करनेवाले हैं, तो
शोक करना व्यर्थ है, हे महाभागे ! शोकका त्याग करो,
सब भला ही होगा ॥ १२ ॥

हे माता ! अब मेरी बात सुनो, यदि कहीं भी वे
महादेवजी होंगे, तो मैं थोड़े अथवा अधिक कालमें उनसे
क्षीरका समुद्र प्राप्त कर लूँगा ॥ १३ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार [अपना निश्चय]
बताकर तथा ‘मेरा कल्याण हो’ ऐसा प्रेमपूर्वक कहकर
वह बालक माताको भलीभांति प्रणामकर उससे विदा ले
तप करनेके लिये चल पड़ा ॥ १४ ॥

वह बालक हिमालयपर्वतपर जाकर वायुका पान
करते हुए सावधान मनसे आठ ईंटोंसे एक मन्दिर
बनाकर उसमें मिट्टीका शिवलिंग स्थापित करके उस
लिंगमें भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्रके द्वारा पार्वतीसहित
शिवका आवाहनकर वनमें उत्पन्न पत्र, पुष्प आदिसे
उनका पूजन करने लगा ॥ १५-१६ ॥

इस प्रकार पार्वतीसहित उन शिवजीका ध्यान

करके पंचाक्षर मन्त्रका जप तथा उनकी अर्चना करते हुए उसने बहुत कालपर्यन्त घोर तप किया ॥ १७ ॥

हे मुने ! उस महात्मा बालक उपमन्युकी तपस्यासे सारा चराचर लोक प्रचलित हो उठा ॥ १८ ॥

इसी समय विष्णु आदि देवताओंके द्वारा प्रार्थित भगवान् शिवने उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये इन्द्रका रूप धारण किया । पार्वती इन्द्राणीके रूपवाली हो गयीं, सभी गण देवता हो गये और नन्दीने ऐरवत गजका रूप धारण किया । इस प्रकार जब इन्द्ररूपकी सारी सामग्री उपस्थित हो गयीं, तब गणों एवं पार्वतीसहित इन्द्ररूप शिवजी उपमन्युके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये शीघ्र ही उसके आश्रमपर गये ॥ १९—२१ ॥

हे मुनीश्वर ! इन्द्ररूपधारी शिवजीने उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये गम्भीर वाणीमें उस बालकसे कहा— ॥ २२ ॥

सुरेश्वर बोले—हे सुन्त्र ! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो । मैं तुम्हारा सारा अभिष्ट प्रदान करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥

इन्द्ररूपधारी उन शिवजीके इस प्रकार कहनेपर उसने हाथ जोड़कर कहा—मैं शिवमें भक्ति होनेका वरदान चाहता हूँ ॥ २४ ॥

यह सुनकर इन्द्र बोले—क्या तुम त्रिलोकीके स्वामी, देवगणोंके रक्षक और सभी देवगणोंसे नमस्कृत मुझ इन्द्रको नहीं पहचानते हो ॥ २५ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम मेरे भक्त हो जाओ और निरन्तर मेरी ही पूजा करो, मैं तुम्हारा सब प्रकारका कल्याण करूँगा । तुम गुणरहित शिवको छोड़ो ॥ २६ ॥

उन निर्गुण रूपसे तुम्हारा क्या कार्य हो सकता है, जो देवजातिसे बाहर होकर पिशाचत्वको प्राप्त हो गये हैं ? ॥ २७ ॥

नन्दीश्वर बोले—यह सुनकर पंचाक्षर मन्त्रका जप करता हुआ वह बालक अपने धर्ममें विज्ञ उत्पन्न करनेके लिये उनको आया हुआ जानकर बोला— ॥ २८ ॥

उपमन्यु बोले—शिवनिन्दामें रत तुमने इस प्रकार प्रसंगवश उन देवाधिदेवको निर्गुण एवं पिशाच कहा है ।

तुम अवश्य ही प्रकृतिसे परे, ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वरको उत्पन्न करनेवाले और सभी देवेश्वरोंके भी ईश्वर उन रुद्रको नहीं जानते ॥ २९—३० ॥

ब्रह्मादी लोग जिन्हें सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त, नित्य, एक तथा अनेक बताते हैं, मैं उन्होंसे वर माँगूँगा ॥ ३१ ॥

तत्त्वज्ञ लोग जिन्हें तर्कसे परे तथा सांख्ययोगके तात्पर्यर्थको देनेवाला मानते हैं, मैं उन्होंसे वर माँगूँगा ॥ ३२ ॥

विभु शम्भुसे परे कोई तत्त्व नहीं है । वे सभी कारणोंके कारण और गुणोंसे सर्वथा परे हैं, अतः ब्रह्म-विष्णु आदि देवोंसे ब्रेष्ट हैं ॥ ३३ ॥

मैं न तो आपसे, न विष्णुजीसे, न ब्रह्माजीसे और न अन्य किसी देवतासे वर माँगता हूँ, शंकरजी ही मुझे वर प्रदान करोगे ॥ ३४ ॥

बहुत कहनेसे क्या लाभ ? मैं अपना निश्चय बता रहा हूँ कि मैं पशुपति शिवजीको छोड़कर किसी अन्य देवतासे वरदान नहीं माँगूँगा ॥ ३५ ॥

हे इन्द्र ! आप मेरा अभिप्राय सुनें । मैंने आज यह अनुमान कर लिया है कि मैंने जन्मान्तरमें अवश्य कोई पाप किया है, जिससे मुझे शिवजीकी निन्दा सुननी पड़ी ॥ ३६ ॥

शिवकी निन्दाका श्रवण करते ही जो शीघ्र उस निन्दा करनेवालेका प्रतिकारकर उसी समय अपना शरीर छोड़ देता है, वह शिवलोकको जाता है ॥ ३७ ॥

हे सुराधम ! अब दूधके विषयमें मेरी यह इच्छा नहीं रही, [अब तो मैं] शिवास्त्रसे तुम्हारा वधकर अपना यह शरीर त्याग दूँगा ॥ ३८ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर उपमन्यु मरनेके लिये तैयार हो गये और दूधके प्रति भी इच्छाका त्यागकर इन्द्रको मारनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ३९ ॥

तब अग्निहोत्रसे भस्म लेकर उसे अघोरास्त्रसे अभिमन्त्रित करके इन्द्रके ऊपर उस भस्मको छोड़कर उन मुनिने घोर शब्द किया ॥ ४० ॥

उसके बाद अपने इष्टदेवके चरणयुगलका स्मरणकर अपने शरीरको जलानेहेतु अग्निकी धारणा करते हुए उपमन्यु स्थित हो गये ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण उपमन्युके इतना कर लेनेपर शक्तरूपधारी शिवजीने सौम्य [तेज]-के द्वारा उस महायोगीकी आगनेयी धारणाको रोक दिया ॥४२॥

उनके द्वारा फेंके गये उस शंकरप्रिय अवोरास्त्रको शिवजीके आदेशसे नन्दीने बीचमें ही पकड़ लिया ॥४३॥

तदनन्तर भगवान् परमेश्वरने उन ब्राह्मणके समक्ष मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्र धारण किया हुआ अपना स्वरूप प्रकट किया ॥४४॥

सर्वसमर्थ उन प्रभुने हजारों दूधके, हजारों दही आदिके तथा हजारों अन्य धक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके समुद्र उन्हें दिखाये। इसी प्रकार उन सम्मुने देवी पार्वतीके साथ बैलपर सवार हो त्रिशूल आदि आयुधोंको हाथमें धारण किये हुए गणोंके सहित अपना रूप भी उनके समक्ष प्रकट किया ॥४५-४६॥

उस समय स्वर्गलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगणों [की उपस्थिति]-से दसों दिशाएँ ढैंक गयीं। इसके बाद उपमन्यु आनन्दसागरसे उठी हुई लहरोंसे मानो घिर-से गये और भक्तिसे विनप्रचित हो शिवजीको दण्डबृत् प्रणाम करने लगे ॥४७-४८॥

इसी समय भगवान् शिवजीने मुसकराकर उपमन्युको 'आओ आओ' इस प्रकार बुलाकर उनका मस्तक सूंघकर उन्हें वर प्रदान किये ॥४९॥

शिवजी बोले—हे वत्स! हे उपमन्यो! मैं तुम्हरे इस श्रेष्ठ आचरणसे प्रसन्न हूँ। विप्रये! अब मैंने परीक्षा कर ली कि तुम हमारे दृढ़ भक्त हो ॥५०॥

तुम्हारी मुझमें इसी प्रकारकी भक्ति बनी रहेगी। तुम्हरे सभी दुःख दूर हो जायेंगे और तुम सदा सुखी रहेगे। अब तुम सर्वदा अपने भाई-बन्धुओंसहित स्वेच्छापूर्वक धक्ष्यादि भोगोंका भोग करो ॥५१॥

हे महाभायाम्बान् उपमन्यो! ये पार्वती तुम्हारी माता हैं, मैंने आजसे तुम्हें अपना पुत्र मान लिया। तुम सर्वदा कुमार बने रहेगे ॥५२॥

हे महामुने! मैंने प्रसन्न होकर दूध, दही, धी एवं मधुके हजारों समुद्र तथा भोज्य-धक्ष्यादि पदार्थोंसे पूर्ण हजारों समुद्र तुमको प्रदान किये, तुम उन्हें प्रेमपूर्वक

ग्रहण करो। मैं तुम्हें अमरत्व तथा शाश्वत गाणपत्य भी प्रदान करता हूँ ॥५३-५४॥

मैं महादेव तुम्हारा पिता हूँ तथा ये जगदम्बा तुम्हारी माता हैं। अब तुम अन्य मनोवांछित वरोंको भी प्रेमपूर्वक माँगो ॥५५॥

तुम अजर, अमर, दुःखसे रहित, यशस्वी, परम तेजस्वी, दिव्यज्ञानी तथा महाप्रभु हो जाओ ॥५६॥

इसके बाद प्रसन्नचित शिवजीने उनके घोर तपका स्मरणकर पुनः मुनि उपमन्युको दस दिव्य वरदान, पाशुपत्रत, पाशुपत ज्ञान, ब्रतयोग, भाषण-अभिक्षमता, दक्षता तथा अपना पद भी प्रदान किया ॥५७-५८॥

इस प्रकार वरदान देकर उन्हें अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर उनका मस्तक सूंघकर 'यह तुम्हारा पुत्र है'—ऐसा कहकर महादेवजीने उन्हें पार्वतीको समर्पित कर दिया। देवीने यह सुनकर उनके सिरपर प्रेमपूर्वक अपना करकमल रखकर उन्हें अक्षय कुमारपद प्रदान किया ॥५९-६०॥

दूधका स्वाद उत्पन्न करनेवाले समुद्रने स्वयं उठकर एकत्र पिण्डीभूत और अनश्वर श्वीरसमुद्र उसे प्रदान किया ॥६१॥

सन्तुष्टिचित महेश्वरने योगेश्वर्य, सदा सन्तुष्टता, अनश्वर ब्रह्मविद्या तथा परम समृद्धि उन्हें प्रदान की ॥६२॥

इस प्रकार वे उपमन्यु शिव और पार्वतीसे दिव्य वर और नित्यकुमारत्व प्राप्तकर परम प्रसन्न हुए। तदनन्तर प्रसन्नचित होकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके उन्होंने देवाधिदेव महेश्वरसे प्रीतिपूर्वक वर माँगा ॥६३-६४॥

उपमन्यु बोले—हे देवदेवेश! प्रसन्न हों, हे परमेश्वर! प्रसन्न हों और अपनी दिव्य परम तथा चिरस्थायिनी भक्ति प्रदान कीजिये। हे महादेव! अपने सम्बन्धियोंके प्रति श्रद्धाभाव अपना दात्य, परम स्नेह तथा अपना नित्य सानिध्य मुझे प्रदान कीजिये ॥६५-६६॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन द्विजोत्तम उपमन्युने प्रसन्नचित होकर हर्षसे गद्गद वाणीसे महादेवकी स्तुति की ॥६७॥

इस प्रकार उनके द्वाग स्तुति किये जानेपर सकलेश्वर प्रभु शिवने प्रसन्नचित होकर सबके सुनते-सुनते ही उपमन्युसे कहा— ॥६८॥

शिवजी बोले—हे वत्स! हे उपमन्यो! तुम धन्य हो और विशेषरूपसे मेरे भक्त हो। हे अनंथ! तुमने मुझसे जो कुछ माँगा, वह सब मैंने तुम्हें प्रदान किया ॥ ६९ ॥

तुम सर्वदा अजर, अमर, दुःखरहित, सर्वपूज्य, निर्विकार एवं भक्तोंमें श्रेष्ठ हो जाओ। हे द्विजोत्तम! तुम्हारे बान्धव, तुम्हारा गोत्र एवं कुल अक्षय बना रहेगा और मुझमें तुम्हारी शाश्वत भक्ति बनी रहेगी। हे मुने! मैं तुम्हारे आश्रममें नित्य निवास करूँगा। हे वत्स! तुम इच्छानुसार जबतक चाहो, तबतक इस लोकमें निवास करो, [किसी भी वस्तुके लिये] तुम्हें उत्कण्ठा नहों रहेगी, अर्थात् तुम सर्वदा पूर्णकाम रहोगे ॥ ७०—७२ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन्हें श्रेष्ठ वरदान देकर पार्वती एवं गणोंके सहित वे भगवान् शिव वहींपर अन्तर्हित हो गये ॥ ७३ ॥

इसके बाद प्रसन्नचित उपमन्यु शिवजीसे श्रेष्ठ वर

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसहिताये सुरेश्वराख्य शिवावतारचरितवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

प्राप्तकर अपनी माताके समीप गये और उन्होंने मातासे सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ७४ ॥

उसे सुनकर उनकी माता परम हर्षित हुई। वे उपमन्यु भी सभीके पूज्य हुए और सदा अधिकाधिक सुख प्राप्त करने लगे ॥ ७५ ॥

हे तात! इस प्रकार मैंने परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन कर दिया, जो सज्जनोंको सदा सुख प्रदान करनेवाला है ॥ ७६ ॥

यह आख्यान [सर्वथा] निष्पाप, सभी मनोरथोंके पूर्ण करनेवाला, स्वर्ग देनेवाला, यश बढ़ानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा सज्जनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥ ७७ ॥

जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सब प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ ७८ ॥

तैतीसवाँ अध्याय

पार्वतीके मनोभावकी परीक्षा लेनेवाले ब्रह्मचारीस्वरूप शिवावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब विभु परमात्मा शिवजीके परमपवित्र जटिल नामक अवतारको अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥

पूर्व समयमें दक्षकी कन्या सती अपने पितासे अनादर प्राप्तकर उनके यज्ञमें अपना शरीर त्यागकर हिमालयद्वारा मेनाके गर्भसे पार्वती नामसे उत्पन्न हुई ॥ २ ॥

वे पार्वती अपनी सखियोंसमेत घोर वनमें जाकर शिवको अपना पति बनानेकी इच्छा करती हुई अत्यन्त निर्दोष तप करने लगी ॥ ३ ॥

तब नाना प्रकारकी लीलामें प्रवीण शिवजीने उनके तपकी भलीभांति परीक्षाके लिये पार्वतीके तपःस्थानपर सप्तसिद्धियोंको भेजा ॥ ४ ॥

उन मुनियोंने वहाँ जाकर यत्नपूर्वक आदरके साथ उनके तपकी परीक्षा की, किंतु वे सफल नहीं हुए ॥ ५ ॥

तब वे पुनः लौटकर शिवजीके पास आये और

उनको प्रणामकर आदरपूर्वक सारा वृत्तान्त निवेदन किया तथा उनकी आज्ञा लेकर स्वर्गलोक चले गये ॥ ६ ॥

उन मुनियोंके अपने-अपने स्थानको चले जानेपर सुन्दर लीला करनेवाले भगवान् शंकरने पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेका विचार किया ॥ ७ ॥

उस समय शिवजीने अपनी इच्छाओंका दमन करनेके कारण साक्षात् इश्वर ही प्रतीत होनेवाले, तपोनिष्ठ तथा आश्चर्यसम्पन्न, प्रसन्नतासे परिपूर्ण ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किया ॥ ८ ॥

वे भक्तवत्सल सदाशिव शम्भु छत्र-दण्डसे युक्त तथा जटाधारी, बृद्ध ब्राह्मणके जैसा उज्ज्वल वेष धारण किये हुए, मनसे हष्ट तथा अपने तेजसे दीप्त होते हुए अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर गिरिजाके वनमें गये ॥ ९-१० ॥

वहाँ उन्होंने सखियोंसे धिरी हुई तथा वेदीके ऊपर विराजमान, चन्द्रकलाके समान शोभित होती हुई और

विशुद्ध स्वरूपवाली उन पार्वतीको देखा ॥ १ ॥

तब ब्रह्मचारीवेषधारी भक्तवत्सल शिवजी उन देवीको देखकर प्रीतिपूर्वक बड़ी उत्सुकतासे उनके समीप पहुँचे ॥ २ ॥

तब पार्वतीने भी अनुहृत तेजस्वी, गेमबहुल अंगोवाले, शान्ति प्रकट करते हुए, दण्ड तथा [मृग]-चर्मसे युक्त, कमण्डलु धारण किये हुए उन जटाधारी बूढ़े ब्राह्मणको आया देखकर पूजोपचार सामग्रीसे परम प्रेमपूर्वक उनका पूजन किया और पूजन करनेके पश्चात् आनन्दपूर्वक सादर उन ब्रह्मचारीसे कुशलक्षणम् पूछा कि आप ब्रह्मचारीका रूप धारण किये हुए कौन हैं, कहाँसे आये हैं, जो अपने तेजसे इस वनप्रदेशको प्रकाशित कर रहे हैं, हे वेदविदोंमें श्रेष्ठ ! बताइये ? ॥ ३—१६ ॥

नन्दीश्वर बोले—पार्वतीके इस प्रकार पूछेनेपर उन ब्रह्मचारी द्विजने पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेकी दृष्टिसे प्रसन्न हो शीघ्रतासे कहा— ॥ १७ ॥

ब्रह्मचारी बोले—मैं अपने इच्छानुसार इधर-उधर भ्रमण करनेवाला ब्रह्मचारी, द्विज तपस्वी तथा सबको सुख पहुँचानेवाला और दूसरोंका उपकार करनेवाला हूँ, इसमें संशय नहीं ॥ १८ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर वे भक्तवत्सल ब्रह्मचारीरूप शंकर अपना स्वरूप छिपाते हुए पार्वतीके सन्निकट स्थित हो गये ॥ १९ ॥

ब्रह्मचारी बोले—हे महादेवि ! मैं तुमसे क्या बताऊँ, कुछ कहनेयोग्य नहीं है, मुझे जो कि अनर्थकारी और अत्यन्त अशोभनीय कार्य दिखायी पड़ रहा है ॥ २० ॥

तुम्हें समस्त सुखोंकी साधनभूत भोगसामग्री प्राप्त है, किंतु इन सभी प्रकारके भोगोंके रहते हुए भी तुम इस नवीन युवावस्थामें व्यर्थ कष्ट सहती हुई तप कर रही हो ॥ २१ ॥

तुम कौन हो, किसकी कन्या हो और इस निर्जन वनमें प्रयत्नात्मा मुनियोंके लिये भी कठिन यह तप क्यों कर रही हो ? ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकारकी उनकी बात सुनकर परमेश्वरी पार्वती हँसकर प्रेमपूर्वक उन श्रेष्ठ ब्रह्मचारीसे कहने लगी— ॥ २३ ॥

पार्वतीजी बोली—हे ब्रह्मचारिन् ! हे विप्र ! हे मुने ! आप मेरा सारा वृत्तान्त सुनिये । इस समय मेरा जन्म भारतवर्षमें हिमालयके घरमें हुआ है ॥ २४ ॥

मैं इसके पूर्व प्रजापति दक्षके घरमें जन्म लेकर सती नामसे शंकरजीकी पत्नी थी । पतिकी निन्दा करनेवाले पिता दक्षके द्वारा किये गये अपमानके कारण मैंने योगके द्वारा अपना शरीर त्याग दिया था ॥ २५ ॥

हे द्विज ! इस जन्ममें मैंने अपने पुण्यसे शिवजीको प्राप्त किया था, किंतु वे कामदेवको भस्मकर मुझे त्याग करके चले गये हैं ॥ २६ ॥

शिवजीके चले जानेपर दुःखान्वित तथा लज्जित होकर मैं पिताके घरसे निकलकर गुरुके वचनानुसार संयत होकर तप करनेके लिये यहाँ आयी हूँ ॥ २७ ॥

हे ब्रह्मचारिन् ! मैंने मन-वाणी तथा कर्मसे साक्षात् शिवको पतिरूपमें भलीभांति वरण किया है । मैं सत्य कहती हूँ, इसमें किंचिन्मात्र भी असत्य नहीं है ॥ २८ ॥

मैं जानती हूँ कि यह मेरे लिये दुर्लभ है और दुर्लभ वस्तुकी प्राप्ति किस प्रकार होगी ? फिर भी मैं अपने मनकी उत्सुकतासे इस समय तपमें प्रवृत्त हूँ ॥ २९ ॥

मैं इन्द्रादि प्रमुख देवताओं, विष्णु तथा ब्रह्माको भी छोड़कर केवल पिनाकपाणि भगवान् शिवको वस्तुतः पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ ॥ ३० ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! पार्वतीके इस निश्चय-युक्त वचनको सुनकर उन जटाधारी रुद्रने हँसते हुए यह वचन कहा— ॥ ३१ ॥

जटिल बोले—हे हिमाचलपुत्रि ! हे देवि ! तुमने इस प्रकारका विचार क्यों किया है, जो कि अन्य देवोंको छोड़कर शिवके निमित्त अत्यधिक कठोर तप कर रही हो ? ॥ ३२ ॥

मैं उन रुद्रको जानता हूँ, सुनो, मैं तुमको बता रहा हूँ । वे रुद्र बैलपर सवारी करनेवाले, विकृत मनवाले तथा जटाजूट धारण करनेवाले, सदा अकेले रहनेवाले और विशेषरूपसे विरागी हैं, इसलिये उन रुद्रमें मन लगाना तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥ ३३-३४ ॥

हे देवि ! तुम्हारा और शिवका रूप आदि परम्पर एक-दूसरोंके विरुद्ध है, मुझे तो यह अच्छा नहीं लग रहा

है, अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो ॥ ३५ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर ब्रह्मचारीस्वरूपधारी शिवने उनकी परीक्षा करनेके लिये उनके आगे पुनः अनेक प्रकारसे अपनी निन्दा की ॥ ३६ ॥

विप्रके उस असद्गत वचनको सुनकर देवी पार्वतीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया और उन्होंने शिवनिन्दापरायण ब्रह्मचारीसे कहा—अभीतक तो मैंने यही समझा था कि आप कोई महात्मा होंगे, किंतु मैंने इस समय आपको जान लिया, फिर भी अवध्य होनेके कारण आपका वध नहीं कर रही हूँ ॥ ३७-३८ ॥

हे दूष! तुम ब्रह्मचारीके स्वरूपमें आये हुए कोई धूर्त हो, तुमने शिवकी निन्दा की है, उससे मुझे महान् क्रोध उत्पन्न हुआ है ॥ ३९ ॥

तुम शिवसे बहिरुम्ख हो, इसलिये शिवको नहीं जानते। मैंने तुम्हारी जो पूजा की, उसके कारण मुझे परिताप हो रहा है ॥ ४० ॥

जो मनुष्य तत्त्वको बिना जाने ही शिवकी निन्दा करता है, उसका जन्मभरका संचित पुण्य नष्ट हो जाता है। शिवद्वाहीका स्पर्शकर मनुष्यको प्रायशिच्छत करना चाहिये ॥ ४१-४२ ॥

रे दुष! तुमने कहा कि मैं शंकरको जानता हूँ, किंतु निरिचतरूपसे तुम शिवको नहीं जानते। वास्तवमें वे परमात्मा हैं। रुद्र जैसे-तैसे सब कुछ हो सकते हैं; क्योंकि वे मायासे बहुत रूप धारण करनेमें समर्थ हैं। सज्जनोंके प्रिय वे सर्वथा निर्विकार होनेपर भी मेरे मनोरथको पूर्ण करेंगे ॥ ४३-४४ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन देवी पार्वतीने उन ब्रह्मचारीसे [उस] शिवतत्त्वका वर्णन किया, जिसमें शिव ब्रह्मके रूपमें निर्णुण एवं अव्यय कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥

देवीके वचनको सुनकर वे ब्राह्मण ब्रह्मचारी ज्यों ही पुनः कुछ कहनेको उद्यत हुए, उसी समय शिवमें संसक चित्तवाली तथा शिवनिन्दासे विमुख पार्वतीने अपनी सखी विजयासे शीघ्रतासे कहा— ॥ ४६-४७ ॥

गिरिजा बोलीं—हे सर्वि! बोलनेकी इच्छावाला यह नीच ब्राह्मण अभी भी पुनः शिवकी निन्दा करेगा,

अतः प्रथलपूर्वक इसे रोको, क्योंकि केवल शिवजीकी निन्दा करनेवालेको ही पाप नहीं लगता, वरन् जो उस निन्दाको सुनता है, इस संसारमें वह भी पापका भागी होता है ॥ ४८-४९ ॥

शिवभक्तोंको चाहिये कि शिवनिन्दकका सर्वथा प्रतिकार कर दे, किंतु यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे त्याग देना चाहिये और उस स्थानसे शीघ्र चले जाना चाहिये ॥ ५० ॥

निश्चय ही यह दुष्ट पुनः शिवकी निन्दा करेगा, किंतु ब्राह्मण होनेके कारण यह अवध्य है, अतः इसे छोड़ देना चाहिये और फिर इसे कभी नहीं देखना चाहिये। अब देर मत करो, शीघ्रतासे इस स्थानको त्यागकर हम अन्यत्र चलेंगे, जिससे इस मूर्ख ब्राह्मणके साथ पुनः सम्बाधन न हो सके ॥ ५१-५२ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर ज्यों ही पार्वतीने जानेहेतु पैर उठाया, त्यों ही साक्षात् शिवजीने स्वयं उनका बस्त्र पकड़ लिया। पार्वती शिवजीके जिस स्वरूपका ध्यान करती थीं, शिवजीने वैसा ही दिव्य स्वरूप धारणकर शिवाको दिखाया और नीचेकी ओर मुख की हुई उनसे कहा— ॥ ५३-५४ ॥

शिवजी बोले—हे शिवे! तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो, मैं किसी प्रकार तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। हे अनधे! मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है, तुम मेरी दृढ़ भक्त हो। हे देवि! मैंने तुम्हारे भावको जानेकी इच्छासे ब्रह्मचारीके स्वरूपमें तुम्हारे पास आकर अनेक प्रकारके वचन कहे— ॥ ५५-५६ ॥

हे शिवे! मैं तुम्हारी इस दृढ़ भक्तिसे विशेष प्रसन्न हूँ, अब तुम अपना मनोवांछित वर माँगो, तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु [मुझे] अदेय नहीं है ॥ ५७ ॥

हे प्रेमनिधि! तुमने अपनी इस तपस्यासे आजसे मुझे अपना दास बना लिया है। तुम्हारे सौन्दर्यको बिना देखे मेरा एक-एक क्षण युगके समान बीत रहा है ॥ ५८ ॥

अब तुम लज्जाको त्यागो; क्योंकि तुम मेरी सनातन पत्नी हो। हे ग्रिये! आओ, मैं तुम्हारे साथ शीघ्र ही कैलासपर्वतपर चलता हूँ ॥ ५९ ॥

देवेशके इस प्रकार कहनेपर वे पार्वती अवश्य प्रसन्न हो उठीं और उनके तप करनेका जो क्लेश था,

वह सब दूर हो गया ॥ ६० ॥

उसके बाद शिवके उस दिव्य रूपको देखकर प्रसन्न हुई पार्वतीने लज्जासे नीचेकी ओर मुख कर लिया और वे प्रतिपूर्वक कहने लगी— ॥ ६१ ॥

शिवा बोलीं—हे देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरे कपर कृपा करना चाहते हैं तो हे देवेश! आप मेरे पति हों—ऐसा पार्वतीने शिवसे कहा ॥ ६२ ॥

नन्दीश्वर बोले—उसके बाद वे शिवजी विधि-

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अनन्तर तृतीय शतरुद्रसंहितामें ब्रह्मचारीशिवावतारवर्णन नामक तृतीयस्वार्ण अव्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

विधानसे पाणिग्रहणकर उनके साथ कैलासपर चले गये और उन पार्वतीने उन्हें पतिरूपमें प्राप्तकर देवताओंका कार्य सम्पन्न किया ॥ ६३ ॥

हे तात! इस प्रकार मैंने पार्वतीके भावकी परीक्षा लेनेवाले ब्रह्मचारीस्वरूप शिवावतारका वर्णन आपसे किया। मेरे द्वारा कहा गया यह आख्यान पवित्र तथा उत्तम है। जो इसे प्रेमपूर्वक सुनेगा, वह सुखी होकर सद्गति प्राप्त करेगा ॥ ६४-६५ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके सुनर्तक नटावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ! सनकुमार! अब सर्वव्यापी परमात्मा शिवजीके नर्तकनट नामक अवतारका श्रवण कीजिये ॥ १ ॥

जब हिमालयसुता कालिका पार्वती शिवको प्राप्त करनेके लिये बनमें जाकर अत्यन्त निर्मल तप करने लगीं, तब हे मुने! उनके कठिन तपसे शिवजी प्रसन्न हो गये और उनके भावकी परीक्षाके लिये तथा उन्हें वर देनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये ॥ २-३ ॥

हे मुने! अत्यन्त प्रसन्नचित्वाले शिवने उन्हें अपना रूप दिखाया और उन शिवासे 'वर माँगो'—इस प्रकार कहा ॥ ४ ॥

शिवजीके उस वचनको सुनकर तथा उनके उत्तम रूपको देखकर पार्वती बहुत प्रसन्न हुई और उन्हें भलीभांति प्रणामकर वे कहने लगी— ॥ ५ ॥

पार्वती बोलीं—हे देवेश! हे ईशान! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं, तो मेरे पति बनें और मेरे कपर कृपा करें ॥ ६ ॥

हे नाथ! मैं आपकी समुचित आज्ञासे पिताके घर जा रही हूँ। हे प्रभो! आपको भी मेरे पिताके पास जाना चाहिये, आप भिक्षुक बनकर अपना उत्तम यश प्रकट करते हुए मुझे माँगें और प्रेमपूर्वक मेरे पिताका गृहस्थान्रम्भ पूरी तरहसे सफल करें ॥ ७-८ ॥

उसके अनन्तर हे प्रभो! हे महेशन! आप शास्त्रोक्त विधिसे देवगणोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरा पाणिग्रहण करें ॥ ९ ॥

हे विभो! आप मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये। आप सर्वथा निर्विकार हैं तथा भक्तवत्सल नामवाले हैं और मैं सर्वदा आपकी भक्त हूँ ॥ १० ॥

नन्दीश्वर बोले—पार्वतीके इस प्रकार कहनेपर भक्तवत्सल भगवान् शिव 'ऐसा ही हो'—यह वचन कहकर अन्तर्धान होकर अपने स्थान कैलासको चले गये ॥ ११ ॥

इसके बाद पार्वती भी प्रसन्न होकर अपनी दोनों सखियोंके साथ अपने रूपको सार्थक करके पिताके घर चली गयीं ॥ १२ ॥

पार्वतीके आगमनका समाचार सुनकर हिमालय भी मेना तथा परिवारको साथ लेकर अपनी पुत्रीको देखनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक गये ॥ १३ ॥

परम आनन्दित वे दोनों पार्वतीको प्रसन्नमुख देखकर उन्हें घर लिवा लाये और प्रतीकिके साथ महोत्सव मनाया ॥ १४ ॥

मेना तथा हिमालयने ब्राह्मणादिकोंको [बहुत-सा] धन दिया और आदरके साथ वेदध्वनिपूर्वक मंगलाचार कराया ॥ १५ ॥

उसके बाद मेना अपनी कन्याके साथ आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं और वे हिमालय गंगास्नान करने चले गये ॥ १६ ॥

इसी बीच सुन्दर लीलाओंवाले भक्तवत्सल शिव नाचनेवाले नटका रूप धारणकर मेनाके पास पहुँचे ॥ १७ ॥

रक्तस्त्रधारी तथा नृत्य-गान-विशारद नटरूपधारी वे शिव अपने बायें हाथमें शृंग, दाहिने हाथमें डमरू और पीठपर कन्या धारण करके मेनाके आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकारके नृत्य तथा अत्यन्त मनोहर गान करने लगे ॥ १८-१९ ॥

उन्होंने बड़ी मनोहर ध्वनि करके डमरू तथा शृंग बजाया और प्रीतिपूर्वक विष्विध प्रकारकी मनोहर लीला प्रारम्भ की। उन्हें देखनेके लिये वहाँ नगरके सभी बालक, बृद्ध, पुरुष एवं स्त्रियाँ सहसा आ पहुँचे ॥ २०-२१ ॥

हे पुनः! उत्तम गीतको सुनकर तथा उस मनोहर नृत्यको देखकर सभी लोग उस समय सहसा मोहित हो गये और मेना भी मोहित हो उठी ॥ २२ ॥

इसके बाद उनकी लीलासे प्रसन्न मनवाली मेना शीघ्र ही स्वर्णपात्रमें रखे हुए रत्नोंको उन्हें प्रीतिपूर्वक देनेके लिये गयीं ॥ २३ ॥

उन्होंने उन रत्नोंको ग्रहण नहीं किया और उन पार्वतीको ही भिक्षाके रूपमें माँगा। वे पुनः कौतुकसे उत्तम नृत्य तथा गान करने लगे ॥ २४ ॥

उनका बचन सुनकर विस्मित हुई मेना बहुत कुँझ हो गयीं। उन्होंने भिक्षुककी भर्त्सना की और उसे बाहर निकालनेकी इच्छा की ॥ २५ ॥

इसी समय पर्वतराज हिमालय गंगा-स्नानकर वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मनुष्यरूप धारण किये हुए उस भिक्षुकको सामने आँगनमें स्थित देखा ॥ २६ ॥

तब मेनाके मुखसे वह सारा वृत्तान्त सुनकर उन्होंने भी बड़ा क्रोध किया और उस भिक्षुकको बाहर निकालनेके लिये अपने सेवकोंको आज्ञा दी ॥ २७ ॥

मुनिसत्तम! प्रलयाग्निके समान जलते हुए तेजसे

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरूपसंहितमें सुन्तरकनाटाङ्गशिवावतारवर्णन नामक चाँतीसवाँ अव्याय पूर्ण हुआ ॥ २४ ॥

अत्यन्त दुस्सह उस भिक्षुकको बाहर निकालनेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ। उसके बाद हे तात! अनेक प्रकारकी लीला करनेमें निष्ठात उस भिक्षुकने शैलराजको अपना अनन्त प्रभाव दिखालाया ॥ २८-२९ ॥

हिमालयने शीघ्रतासे उसे विष्णुरूपधारी, फिर ब्रह्मारूप और थोड़ी देरमें सूर्यरूप धारण किये हुए देखा। हे तात! इसके थोड़ी ही देर बाद उसको अत्यन्त अहृत एवं परम तेजस्वी रुद्ररूप धारणकर पार्वतीके साथ मनोहर हास करते हुए देखा ॥ ३०-३१ ॥

इस प्रकार उन्होंने वहाँ उसके अनेक सुन्दर रूपोंको देखा और वे आनन्दसे विभार हो विस्मित हो उठे ॥ ३२ ॥

इसके बाद सुन्दर लीला करनेवाले उस भिक्षुने शैल एवं मेनासे केवल पार्वतीको ही भिक्षारूपमें माँगा और अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं किया ॥ ३३ ॥

पार्वतीके वाक्योंसे प्रेरित होकर भिक्षुरूप धारण करनेवाले परमेश्वर इसके बाद अन्तर्धान हो गये और शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये ॥ ३४ ॥

तब मेना एवं हिमालयको उत्तम ज्ञान हुआ कि सर्वव्यापी शिव हम दोनोंको उत्तराकर अपने स्थानको चले गये ॥ ३५ ॥

हमें अपनी इस तपस्विनी कन्या पार्वतीको उन्हें प्रदान कर देना चाहिये था—ऐसा विचार करके शिवजीमें उन दोनोंकी उत्कृष्ट भक्ति हो गयी ॥ ३६ ॥

इस प्रकारकी महालीलाएँ करके शिवजीने पार्वतीसे भक्तोंको आनन्द देनेवाला विवाह प्रेमपूर्वक विधानके साथ किया ॥ ३७ ॥

हे तात! इस प्रकार मैंने पार्वतीके अनुरोधको पूर्ण करनेवाला शिवका सुन्तरक नट नामक अवतार आपसे कहा— ॥ ३८ ॥

[हे सनत्कुमार!] मेरे द्वारा कहा गया यह आख्यान अत्यन्त श्रेष्ठ तथा पवित्र है, जो भी इसे प्रेमपूर्वक सुनता है, वह सुखी होकर सद्गति प्राप्त कर लेता है ॥ ३९ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय

परमात्मा शिवके द्विजावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले— हे सर्वज्ञ ! सनत्कुमार ! अब साधुवेष धारण करनेवाले ब्राह्मणके रूपमें परमात्मा शिवका जिस प्रकार अवतार हुआ, उसे आप सुनें ॥ १ ॥

मेना और हिमालयकी शिवमें उत्कट भक्ति देख देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई और उन लोगोंने आदरपूर्वक परस्पर मन्त्रणा की ॥ २ ॥

यदि शिवमें अनन्य भक्ति रखकर हिमालय उन्हें कन्या देंगे, तो निश्चित रूपसे ये शिवका निर्वाणपद प्राप्त कर लेंगे। अनन्त रत्नोंके आधारभूत ये हिमालय यदि मुक्त हो जायेंगे तो निश्चय ही पृथ्वीका रत्नगर्भ—यह नाम व्यर्थ हो जायगा ॥ ३-४ ॥

शिवजीको अपनी कन्याके दानके पुण्यसे वे अपने स्थावरस्त्रपको त्यागकर दिव्य शरीर धारण करके शिवलोकको प्राप्त करेंगे, फिर शिवजीके अनुग्रहसे शिवसारूप्य प्राप्त करके वहाँ सभी प्रकारके भोगकर बादमें मोक्ष प्राप्त कर लेंगे ॥ ५-६ ॥

हे मुने ! इस प्रकार विचारकर अपने स्वार्थसाधनमें कुशल उन सभी देवताओंने गुरु बृहस्पतिके घरके लिये प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उन लोगोंने गुरुसे निवेदन किया ॥ ७ ॥

देवता बोले— हे गुरो ! आप हमलोगोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हिमालयके घर जाइये और शिवजीकी निन्दाकर हिमालयके चित्तसे शिवके प्रति आस्था दूर कीजिये। हे गुरो ! वे हिमालय श्रद्धासे अपनी कन्या शिवको देकर मुक्ति प्राप्त कर लेंगे [किंतु हमलोग ऐसा नहीं चाहते, हमारी इच्छा है कि] वे यहाँ पृथ्वीपर रहें ॥ ८-९ ॥

देवताओंका यह वचन सुनकर बृहस्पतिने विचार करके उनसे कहा— ॥ १० ॥

बृहस्पतिजी बोले— हे देवताओ ! आपलोगोंके मध्यसे ही कोई एक पर्वतराजके पास जाय और अपना अभीष्ट सिद्ध करे, मैं इसे करनेमें [सर्वथा] असमर्थ हूँ अथवा हे देवताओ ! आपलोग इन्द्रको साथ लेकर | शीघ्र हिमालयसे कहा— ॥ ११ ॥

ब्रह्मलोकको जाइये और उन ब्रह्मासे अपना सारा वृत्तान्त कहिये, वे आपलोगोंका कार्य करेंगे ॥ ११-१२ ॥

नन्दीश्वर बोले— [हे सनत्कुमार !] यह सुनकर विचार करके वे देवता ब्रह्माकी सभामें गये और उन लोगोंने ब्रह्माके आगे सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १३ ॥

उनका वचन सुनकर ब्रह्मदेवने भलीभांति विचारकर उनसे कहा—मैं तो दुःख देनेवाली तथा सर्वदा सुखापहारिणी शिवनिन्दा नहीं कर सकता । अतः हे देवताओ ! आपलोग कैलासको जाइये, शिवको सनुष्ट कीजिये और उन्हीं प्रभुको हिमालयके घर भेजिये । वे [शिव] ही पर्वतराज हिमालयके पास जायें और अपनी निन्दा करें; क्योंकि दूसरेकी निन्दा विनाशके लिये और अपनी निन्दा यशके लिये मानी गयी है ॥ १४-१६ ॥

नन्दीश्वर बोले— उसके बाद वे सभी देवगण कैलासपर्वतपर गये और शिवजीको भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन लोगोंने सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १७ ॥

देवताओंका वचन सुनकर शिवजीने हँसकर उसे स्वीकार कर लिया तथा उन देवताओंको आश्वस्तकर विदा किया ॥ १८ ॥

उसके बाद भक्तवत्सल मायापति तथा अविकारी महेश्वर भगवान् शम्भुने हिमालयके समीप जानेका विचार किया ॥ १९ ॥

दण्ड, छत्र, दिव्य वस्त्र तथा उज्ज्वल तिलकसे विभूषित हो, कण्ठमें शालग्रामशिला तथा हाथमें स्फटिकमाला धारणकर साधुवेषधारी ब्राह्मणके वेषमें भक्तिभावसे वे श्रीविष्णुके नामका जप करते हुए बन्धु-बान्धवोंसे युक्त हिमालयके यहाँ शीघ्र गये ॥ २०-२१ ॥

उन्हें देखते ही हिमालय सपरिवार उठ खड़े हुए। उन्होंने विधिपूर्वक भूमिमें साष्टांग दण्डवत्कर उन्हें प्रणाम किया ॥ २२ ॥

उसके अनन्तर शैलराजने उन ब्राह्मणसे पूछा कि आप कौन हैं ? तब उन योगी विप्रेन्द्रने बड़े आदरके साथ शीघ्र हिमालयसे कहा— ॥ २३ ॥

साधुद्विज बोले—हे शैलराज ! मेरा नाम साधु द्विज है । मैं मोक्षकी कामनासे युक्त परोपकारी वैष्णव हूँ और अपने गुरुके प्रसादसे सर्वज्ञ तथा सर्वत्र गमन करनेवाला हूँ ॥ २४ ॥

हे शैलसत्तम ! मैंने विज्ञानके बलसे अपने स्थानपर ही जो ज्ञात किया है, उसे प्रीतिपूर्वक आपसे कह रहा हूँ, आप पाखण्ड त्यागकर उसे सुनें ॥ २५ ॥

आप इस लक्ष्मीके समान परम सुन्दरी अपनी कन्याको अज्ञात कुल तथा शीलवाले शंकरको प्रदान करना चाहते हैं ॥ २६ ॥

हे शैलेन्द्र ! आपकी यह बुद्धि कल्याणकारिणी नहीं है । ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! हे नारायणकुलोद्धव ! इसपर विचार कीजिये ॥ २७ ॥

हे शैलराज ! आप ही विचार कीजिये, उनका कोई एक भी बन्धु-बान्धव नहीं है, आप इस विषयमें अपने बाथर्वों तथा अपनी पत्नी मेनासे पूछिये । आप पार्वतीको छोड़कर यत्नपूर्वक मेना आदि सबसे पूछिये; क्योंकि हे शैल ! रोगीको औपधि अच्छी नहीं लगती, उसे तो सदैव कुपथ्य ही अच्छा लगता है ॥ २८-२९ ॥

मेरे विचारसे पार्वतीको देनेके लिये शंकर योग्य पात्र नहीं है । इसे सुननेमात्रसे बड़े लोग आपका उपहास ही करेंगे ॥ ३० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतक्रसंहितामें साधुद्विजशिवतारवर्णन नामक यैतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

अश्वत्थामाके रूपमें शिवके अवतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनकुमार ! हे सर्वज्ञ ! अब आप सर्वव्यापी परमात्मा शिवके अश्वत्थामा नामक श्रेष्ठ अवतारको सुनें ॥ १ ॥

हे मुने ! महाद्विद्मान् देवर्षि वृहस्पतिके अंशसे महर्षि भरद्वाजसे अयोनिज पुत्रके रूपमें आत्मवेत्ता द्वोण उत्पन्न हुए, जो धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, पराक्रमी, विप्रोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके जाननेवाले, विशाल कीर्तिवाले, महातेजस्वी एवं सभी अस्त्रोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे, जिन

वे शिव तो निराश्रय, संगरहित, कुरूप, गुणरहित, अव्यय, श्मशानवासी, भयंकर आकारवाले, साँपोंको धारण करनेवाले, दिगम्बर, भस्म धारण करनेवाले, मस्तकपर सर्पमाला लपेटे हुए, सभी आश्रमोंसे परिप्रेष्ट तथा सदा अज्ञात गतिवाले हैं ॥ ३१-३२ ॥

ब्रह्माजी बोले—अनेक लीलाएँ करनेमें कुशल शिवजी इस प्रकार शिवनिन्दायुक्त सत्य-सत्य वचन कहकर शीघ्र ही अपने स्थानको छले गये ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणके कहे गये अप्रिय वचनको सुनकर दोनोंका स्वरूप विरुद्ध भावोंवाला एवं अनर्थसे परिपूर्ण हो गया और वे विचार करने लगे कि अब हमें क्या करना चाहिये ॥ ३४ ॥

इस प्रकार उन रुद्रने भक्तोंको प्रसन्न करनेवाली महान् लीलाएँ कौं और पार्वतीके साथ विवाहका देवकार्य सम्पन्न किया ॥ ३५ ॥

हे तात ! हे प्रभो ! इस प्रकार मैंने देवगणोंका हित करनेवाले साधुवेषधारी द्विज नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया ॥ ३६ ॥

यह आख्यान पवित्र, स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा उत्कृष्ट है । जो इसे पढ़ा अर्थवा सुनता है, वह सुखी रहकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥

द्वोणको विद्वान् लोग धनुर्विद्यामें तथा वेदमें पारंगत वरिष्ठ, आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला और अपने कुलको बढ़ानेवाला कहते हैं ॥ २-४ ॥

हे द्विज ! वे अपने पराक्रमके प्रभावसे कौरवोंके आचार्य थे एवं उन कौरवोंके छः महारथियोंमें प्रविष्ट थे ॥ ५ ॥

उन द्विजोंतम द्वोणाचार्यने कौरवोंकी सहायताके लिये पुत्रकी इच्छासे शिवजीको लक्ष्य करके बहुत बड़ा

तप किया। उसके बाद हे मुनिसत्तम! [उनके तपसे] प्रसन्न होकर भक्तवत्सल शिवजी द्रोणाचार्यके समक्ष प्रकट हुए॥ ६-७ ॥

उन्हें देखकर उन ब्राह्मण द्वारा उन्हें शीघ्रतासे प्रणाम करके हाथ जोड़कर विनम्र हो अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति की॥ ८ ॥

उनकी स्तुति तथा तपस्यासे सन्तुष्ट हुए भक्तवत्सल प्रभु शंकरने द्रोणाचार्यसे 'वर माँगो'—ऐसा कहा॥ ९ ॥

शिवजीके इस वचनको सुनकर अति विनम्र द्रोणाचार्यने कहा कि मुझे महाबली, सबसे अजेय तथा अपने अंशसे उत्पन्न एक पुत्र दीजिये॥ १० ॥

हे तात! हे मुने! द्रोणाचार्यका वचन सुनकर कौतुक करनेवाले परम सुखकारी शिवजीने 'ऐसा ही होगा'—यह कहा और वे अन्तर्धान हो गये॥ ११ ॥

द्रोणाचार्य भी निःशंक हो प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गये और उन्होंने वह सारा वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे प्रेमपूर्वक कहा। इसके बाद अवसर पाकर वे सर्वानंतक प्रभु रुद्र अपने अंशसे द्रोणके महाबलवान् पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ १२-१३ ॥

हे मुने! वे पृथ्वीपर अश्वत्थामा नामसे विख्यात हुए, वे महान् वीर थे, उनकी आँखें कमलपत्रके समान थीं और वे शत्रुपक्षका विनाश करनेवाले थे॥ १४ ॥

ये महाबली अश्वत्थामा महाभारतके संग्राममें पिताकी आज्ञासे कौरवोंके सहायकके रूपमें प्रसिद्ध हुए। उन महाबली अश्वत्थामाके आश्रय लेनेके कारण ही महाबलवान् भीष्म आदि कौरवगण देवताओंके लिये भी अजेय हो गये॥ १५-१६ ॥

उन्होंसे भयभीत होनेके कारण पाण्डवलोग कौरवोंको जीतनेमें अपनेको असमर्थ पा रहे थे और परम बुद्धिमान् तथा महान् वीर होकर भी अश्वत्थामाके भयसे असमर्थ हो गये। तब श्रीकृष्णके उपदेशसे महाबली अर्जुनने शिवकी कठोर तपस्याकर उनसे अस्त्र प्राप्त करके उन कौरवोंपर विजय प्राप्त की॥ १७-१८ ॥

हे मुने! उस समय महादेवके अंशसे उत्पन्न हुए उन अश्वत्थामाने कौरवोंकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उनके वशीभूत होकर युद्धमें यलपूर्वक शिक्षित पाण्डवपुत्रोंका

विनाश करके अपना प्रताप दिखाया, श्रीकृष्ण आदि महावीर बलवान् शत्रु भी उनके बलको रोक नहीं सके॥ १९-२० ॥

पुत्रके शोकसे सन्तप्त अर्जुनको श्रीकृष्णके साथ रथसे अपनी ओर आता हुआ देखकर वे भाग खड़े हुए॥ २१ ॥

अश्वत्थामाने अर्जुनपर ब्रह्मशिर नामक अस्त्रका प्रहर किया, उससे सभी दिशाओंमें प्रचण्ड तेज उत्पन्न हो गया। अपने प्राणोंपर आयी हुई आपत्तिको देखकर अर्जुन दुखी हुए और उनका तेज नष्ट हो गया, तब उन्होंने कलेशक्रान्त तथा भयभीत होकर श्रीकृष्णसे कहा—॥ २२-२३ ॥

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! हे कृष्ण! यह क्या है, यह दुःस्ख तेज चारों ओरसे धेरे हुए कहाँसे आ रहा है, मैं इसे नहीं जान पा रहा हूँ॥ २४ ॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनका यह वचन सुनकर महाशैव उन श्रीकृष्णने पार्वतीसहित शिवका ध्यान करते हुए आदरपूर्वक अर्जुनसे कहा—॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण बोले—यह द्रोणाचार्यके पुत्रका महातेजस्वी ब्रह्मास्त्र है, इसके समान शत्रुओंका घातक कोई दूसरा अस्त्र नहीं है, ऐसा जानना चाहिये। आप शीघ्र ही भक्तोंकी रक्षा करनेवाले अपने प्रभु शंकरका ध्यान कीजिये, जिन्होंने आपका सारा कार्य सम्पादन करनेवाला अपना सर्वोक्तृष्ट अस्त्र आपको प्रदान किया है। आप इस अस्त्रके परमतेजको अपने शैवास्त्रके तेजसे नष्ट कीजिये, इतना कहकर स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षाके लिये शिवका ध्यान करने लगे॥ २६-२८ ॥

हे मुने! श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने अपने मनमें शिवजीका ध्यान किया और इसके बाद जलसे आचमनकर शिवको प्रणाम करके उस अस्त्रको शीघ्र ही [अश्वत्थामापर] छोड़ा॥ २९ ॥

हे महामुने! यद्यपि वह ब्रह्मशिर नामक अस्त्र अमोघ है तथा इसकी प्रतिक्रिया करनेवाला कोई अन्य अस्त्र नहीं है, फिर भी वह शिवजीके अस्त्रके तेजसे उसी क्षण शान्त हो गया॥ ३० ॥

अद्भुत चरित्रवाले उन शिवके सम्बन्धमें इसे

आशर्चर्य मत समझिये, जो अजन्मा शिव अपनी शक्ति से सारे संसारको उत्पन्न करते हैं, उसका पालन करते हैं तथा संहर करते हैं ॥ ३१ ॥

हे मुने! इसके बाद शिवके अंशसे उत्पन्न हुए तथा शिवजीकी इच्छासे तुष्ट बुद्धिवाले अश्वत्थामा इस शैववृत्तान्तको जानकर कुछ भी व्यथित नहीं हुए ॥ ३२ ॥

इसके बाद अश्वत्थामाने इस सम्पूर्ण संसारको पाण्डवोंसे रहित करनेके लिये उत्तराके गर्भमें स्थित बालकको विनष्ट करनेका निश्चय किया ॥ ३३ ॥

तब उस महाप्रभावशालीने महातेजस्वी तथा अन्य अस्त्रोद्धारा रोके न जा सकनेवाले ब्रह्मास्त्रको उत्तराके गर्भपर चलाया। तब उस अस्त्रसे जलती हुई अर्जुनकी पुत्रवधू उत्तरा व्याकुलचित्त होकर लक्ष्मीपति श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगी ॥ ३४-३५ ॥

इसके बाद श्रीकृष्णने हृदयसे सदाशिवका ध्यानकर उनकी स्तुति की तथा उन्हें प्रणामकर जान लिया कि पाण्डवोंके विनाशके लिये यह अश्वत्थामाका अस्त्र है। उन्होंने शिवजीकी आज्ञासे अपनी रक्षके लिये इन्द्रद्वारा प्रदत्त अपने महातेजस्वी सुदर्शन चक्रसे उसकी रक्षा की ॥ ३६-३७ ॥

शंकरकी आज्ञासे उन महाशैव श्रीकृष्णने गर्भमें

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें अश्वत्थामाशिवावतारवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३८ ॥

उपना स्वरूप भी धारण किया, यह चरित्र जानकर अश्वत्थामा उदास हो गये ॥ ३८ ॥

उसके बाद प्रसन्नचित्त महाशैव श्रीकृष्णने अश्वत्थामाको प्रसन्न करनेके लिये सभी पाण्डवोंको उनके चरणोंमें गिराया ॥ ३९ ॥

तदनन्तर प्रसन्नचित्त द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने श्रीकृष्ण एवं समस्त पाण्डवोंपर अनुग्रह करके प्रेमपूर्वक उन्हें अनेक प्रकारके वर दिये ॥ ४० ॥

हे तात! हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अश्वत्थामाके रूपमें पृथ्वीपर अवतार लेकर प्रभु शिवजीने अत्यन्त उत्तम लीला की ॥ ४१ ॥

त्रैलोक्यको सुख देनेवाले महाप्रक्रमशाली, शिवावतार अश्वत्थामा आज भी गंगातटपर विद्यमान हैं ॥ ४२ ॥

हे मुने! इस प्रकार मैंने आपसे अश्वत्थामाके रूपमें प्रभु शिवजीके अवतारका वर्णन किया, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला तथा भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है ॥ ४३ ॥

जो [मनुष्य] भक्तिपूर्वक इस चरित्रको सुनता है अथवा सावधान होकर इसका कीर्तन करता है, वह अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है और अन्तमें शिवलोकको जाता है ॥ ४४ ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

व्यासजीका पाण्डवोंको सान्त्वना देकर अर्जुनको इन्द्रकील

पर्वतपर तपस्या करने भेजना

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! अब आप शिवजीका किरातावतार सुनिये, [जिसमें] उन्होंने प्रसन्न होकर मूक दानवका वध किया एवं अर्जुनको वर प्रदान किया ॥ १ ॥

[द्यूतक्रीडामें] जब श्रेष्ठ पाण्डवोंको दुर्योधनने जीत लिया, तब वे परम पतित्रता द्रौपदीको अपने साथ लेकर द्वैतवन चले गये। उस समय वे पाण्डव वहाँपर सूर्यके द्वारा दी गयी स्थाली (वटलोई)-का आश्रय लेकर सुखपूर्वक अपना समय बिताने लगे ॥ २-३ ॥

हे विषेन्द्र! तब दुर्योधनने महामुनि दुर्वासाको छल करनेके लिये आदरपूर्वक प्रेरित किया, तदनन्तर महामुनि दुर्वासा पाण्डवोंके निकट गये ॥ ४ ॥

वहाँ जाकर अपने दस हजार शिष्योंके साथ दुर्वासाने मनोनुकूल भोजन उन पाण्डवोंसे प्रेमपूर्वक मार्गा ॥ ५ ॥

पाण्डवोंने उनकी बात स्वीकार कर ली और उस समय दुर्वासा आदि प्रमुख तपस्वी मुनियोंको स्वाम

करनेहेतु भेज दिया ॥ ६ ॥

हे मुनीश्वर! उस समय अनके अभावसे दुखी होकर उन सभी पाण्डवोंने प्राण त्यागनेका मनमें निश्चय किया। तब द्रौपदीने शीघ्र ही श्रीकृष्णका स्मरण किया, वे उसी समय पथरे और शाकका भोग लगाकर उन सभीको तृप्त किया ॥ ७-८ ॥

तब शिष्योंको तृप्त जानकर दुर्वासा बहाँसे चले गये। इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी कृपासे पाण्डव उस समय दुःखसे निवृत हो गये ॥ ९ ॥

इसके बाद उन पाण्डवोंने श्रीकृष्णसे पूछा—हे प्रभो! [आगे] क्या होगा? यह [दुर्योधन] महान् वैरी उत्पन्न हुआ है, अब आप बताइये कि क्या करना चाहिये? ॥ १० ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उन पाण्डवोंके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर श्रीकृष्णजीने शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके पाण्डवोंसे यह कहा— ॥ ११ ॥

श्रीकृष्णजी बोले—हे श्रेष्ठ पाण्डवो! शिवोपासनासे युक्त मेरे वृत्तान्तको सुनिये और सुनकर विशेषरूपसे [शिवोपासनारूप] कर्तव्यका अनुपालन कीजिये ॥ १२ ॥

पूर्वमें मैंने अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे द्वारकामें जाकर महात्मा उत्पन्न्युके उपदेशोंका विचार करके बटुक नामक श्रेष्ठ पर्वतपर सात मासपर्यन्त शिवजीकी आग्रहना की, तब भलीभौति सेवाके किये जानेसे परमेश्वर शिवजी मुझपर प्रसन्न हो गये ॥ १३-१४ ॥

विश्वेश्वरने साक्षात् प्रकट होकर मुझे अभीष्ट वरदान दिया। उर्होंकी कृपासे मैंने सभी प्रकारका उत्तम सामर्थ्य प्राप्त कर लिया ॥ १५ ॥

[हे पाण्डवो!] मैं इस समय भी भोग एवं मोक्ष देनेवाले शिवजीकी सेवा करता हूँ, इसलिये आपलोग भी सब प्रकारका सुख देनेवाले उन शिवजीकी सेवा कीजिये ॥ १६ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर पाण्डवोंको आश्वासन देकर श्रीकृष्णी अनर्थान हो गये और शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए शीघ्र ही द्वारका चले गये ॥ १७ ॥

इधर, उत्साहयुक्त पाण्डवोंने उस दुर्योधनके गुणोंकी परीक्षाके लिये एक भीलको भेजा। वह भी दुर्योधनके सभी गुणों और पराक्रमका भलीभौति पता लगाकर अपने प्रभु पाण्डवोंके समीप लौट आया ॥ १८-१९ ॥

हे मुनीश्वर! उसकी बात सुनकर पाण्डव अत्यन्त दुखी हुए और अतीव दुःखित उन पाण्डवोंने आपसमें कहा—अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये? यद्यपि हमलोग इस समय युद्ध करनेमें समर्थ हैं, किंतु सत्यपाशसे बँधे हुए हैं ॥ २०-२१ ॥

नन्दीश्वर बोले—इसी समय मस्तकमें भस्म लगाये, रुद्राक्षकी माला धारण किये, सिरपर जटाजूटसे सुशोभित तथा शिवप्रेममें निमान, तेजोराशि, साक्षात् दूसरे धर्मके समान श्रीव्यासजी पंचाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वहाँ आये ॥ २२-२३ ॥

तब उन्हें देखकर वे पाण्डव प्रसन्न हो उठकर उनके आगे खड़े हो गये और कुशासे युक्त मृगचर्मका आसन उन्हें देकर उसपर बैठे हुए व्यासजीका हर्षित होकर पूजन किया, अनेक प्रकारसे उनकी सुन्ति की और कहा कि हम धन्य हो गये ॥ २४-२५ ॥

हमने जो कठिन तप किया, अनेक प्रकारके दान दिये, वह सब सफल हो गया। हे प्रभो! हम सब आपके दर्शनसे तृप्त हो गये ॥ २६ ॥

हे पितामह! आपके दर्शनसे दुःख दूर हो गया, कूर कर्मवाले इन दुष्टोंने हमलोगोंको बड़ा दुःख दिया है ॥ २७ ॥

आप—जैसे श्रीमानोंका दर्शन हो जानेपर जो दुःख कभी न गया, वह अब चला ही जायगा—ऐसा हमलोगोंका विचारपूर्ण निश्चय है। सब कुछ करनेमें समर्थ आप—जैसे महात्माओंके आश्रममें पधारनेपर भी यदि दुःख दूर न हुआ तो इसमें दैव ही कारण है ॥ २८-२९ ॥

बड़े लोगोंका स्वभाव कल्पवृक्षके समान माना गया है, उनके आनेपर दुःखका कारणभूत दारिद्र्य निश्चित रूपसे चला जाता है ॥ ३० ॥

हे प्रभो! महापुरुषोंके गुणोंका कथन करनेसे, उनका नामसंकीर्तनमात्र करनेसे अथवा उनका आश्रम लेनेसे व्यक्ति महत्ता या [उपेक्षा करनेसे] लघुताको प्राप्त करता है—इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥

उत्तम पुरुषोंमें स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दीनजनोंका परिपालन करते हैं ॥ ३२ ॥

निर्धनताको लोकमें परम कल्याणकारी माना गया है, क्योंकि इसके सामने अर्थात् लक्ष्यके रूपमें दूसरेका उपकार और सज्जनोंकी सेवा—ये ही रहते हैं ॥ ३३ ॥

उसके बाद जो भाग्य है, उसमें किसीको दोष नहीं देना चाहिये। इसलिये हे स्वामिन्! आपके दर्शनसे हमलोग अपना मंगल ही मानते हैं। आपके आगमन-मात्रसे हमारा मन हर्षित हो उठा है। अब आप हमलोगोंको शीघ्र ही ऐसा उपदेश दें, जिससे हमारा दुःख दूर हो ॥ ३४-३५ ॥

नन्दीश्वर बोले—पाण्डवोंका यह वचन सुनकर प्रसन्नचित हुए महामुनि व्यासजीने यह कहा— ॥ ३६ ॥

हे पाण्डवो! आपलोग दुःख मत कीजिये, आपलोग धन्य हैं और कृतकृत्य हैं, जो कि आपलोगोंने सत्यका लोप नहीं होने दिया ॥ ३७ ॥

सत्पुरुषोंका ऐसा अत्युत्तम स्वभाव होता है कि वे मृत्युपर्यन्त मनोहर फल देनेवाले सत्य तथा धर्मका त्याग नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥

यद्यपि हमरे लिये आपलोग तथा वे [कौरव] दोनों ही बराबर हैं, फिर भी विद्वानोंके द्वारा धर्मात्माओंके प्रति पक्षपात उचित कहा गया है ॥ ३९ ॥

अन्ये तथा दुष्ट धूतराष्ट्रे पहले ही धर्मका त्याग किया और लोभसे स्वयं आपलोगोंका राज्य हड्प लिया। आपलोग तथा वे [कौरव] दोनों ही उनके पुत्र हैं, इसमें सन्देह नहीं है। पिता (पाण्डु)-के मर जानेपर उन महात्माके बालकोंके ऊपर उन्हें कृपा करनी चाहिये ॥ ४०-४१ ॥

उन्होंने कभी भी अपने पुत्र [दुर्योधन]-को मना नहीं किया, यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो यह अनर्थ न होता। जो होना था, वह हो चुका; होनहार कभी मिथ्या नहीं होता। यह [दुर्योधन] दुष्ट है, आपलोग धर्मात्मा एवं सत्यवादी हैं ॥ ४२-४३ ॥

इसलिये अन्तमें निश्चित रूपसे उसका ही अशुभ होगा, जो बीज यहाँ उसने बोया है, वह अवश्य उत्पन्न होगा ॥ ४४ ॥

इसलिये निश्चय ही आपलोगोंको दुखी नहीं होना चाहिये। हर प्रकारसे आपलोगोंका अवश्य ही शुभ होगा, इसमें सन्देहकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४५ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर महात्मा व्यासजीने उन पाण्डवोंको प्रसन्न कर लिया, तब युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंने पुनः उनसे यह वचन कहा— ॥ ४६ ॥

पाण्डव बोले—हे नाथ! आपने सत्य कहा, किंतु मालिन चित्तवाले ये दुष्ट हमें इस वनमें भी बार-बार निन्नर दुःख ही दे रहे हैं ॥ ४७ ॥

इसलिये हे विभो! हमारे अशुभका नाश कीजिये और हमें मंगल प्रदान कीजिये। इसके पूर्व श्रीकृष्णने [हमलोगोंसे] कहा था कि तुमलोगोंको सर्वदा शिवजीकी आराधना करनी चाहिये, किंतु हमलोगोंने प्रमाद किया और उनकी आज्ञाके पालनमें शिखिलता की। अब आप पुनः उस देवर्मार्गका उपदेश कीजिये ॥ ४८-४९ ॥

नन्दीश्वर बोले—यह वचन सुनकर व्यासजी बहुत ही प्रसन्न हुए और शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके पाण्डवोंसे प्रेमपूर्वक कहने लगे ॥ ५० ॥

व्यासजी बोले—हे धर्मबुद्धिवाले पाण्डवो! मेरी बात सुनो। श्रीकृष्णने सत्य ही कहा था, क्योंकि मैं भी सदाशिवकी उपासना करता हूँ ॥ ५१ ॥

आपलोग भी प्रेमपूर्वक उनका सेवन कीजिये, जिससे सदा अपार सुखकी प्राप्ति होती रहे। शिवकी सेवा न करनेके कारण ही सारा दुःख होता है ॥ ५२ ॥

नन्दीश्वर बोले—उसके अनन्तर विचार करके मुनिवर व्यासजीने पाँचों पाण्डवोंमें अर्जुनको शिवपूजाके योग्य समझा और इसके बाद उन मुनिश्रेष्ठज्ञ [उनके लिये] तपस्याका स्थान निश्चितकर धर्मनिष्ठ पाण्डवोंसे पुनः यह कहा— ॥ ५३-५४ ॥

व्यासजी बोले—हे पाण्डवो! मैं तुमलोगोंके हितकी जो बात कह रहा हूँ उसे सुनो। तुमलोग सज्जनके रक्षक सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म शिवका दर्शन प्राप्त करो ॥ ५५ ॥

ब्रह्मासे लेकर त्रिपाराधर्षपर्यन्त जो भी जगत् दिवायी पड़ता है, वह सब शिवस्वरूप है, इसलिये वह पूजा तथा ध्यान करनेयोग्य है ॥ ५६ ॥

शंकरजी सभी प्रकारके दुःखोंको विनष्ट करनेवाले

हैं। अतः सभी लोगोंको उनकी सेवा करनी चाहिये। थोड़े समयमें ही भक्तिसे शिव प्रसन्न हो जाते हैं, अति प्रसन्न होनेपर महेश्वर भक्तोंको सब कुछ दे देते हैं। वे इस लोकमें भोग तथा परलोकमें मुक्ति प्रदान करते हैं— यह बात सुनिश्चित है॥ ५७-५८॥

अतः भोग एवं मोक्षका फल चाहनेवाले पुरुषोंको सर्वदा शिवजीकी सेवा करनी चाहिये। शंकरजी साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, दुष्टोंके विनाशक और सञ्जनोंके रक्षक हैं। परंतु सबसे पहले स्वस्थ मनसे शक्रविद्याका जप करना चाहिये, त्रेष्ठ कहलानेवाले क्षत्रियके लिये यही विधि है॥ ५९-६०॥

अतः दृढ़चित्त होकर अर्जुनको सर्वप्रथम शक्रविद्याका जप करना चाहिये। इन्द्र पहले परीक्षा करेंगे, उसके बाद सन्तुष्ट होंगे। सन्तुष्ट हो जानेपर इन्द्र सर्वदा विज्ञोंका विनाश करेंगे और शिवजीका उत्तम मन्त्र प्रदान करेंगे॥ ६१-६२॥

नन्दीश्वर बोले—व्यासजीने इस प्रकार कहकर अर्जुनको अपने पास बुलाकर उन्हें इन्द्रविद्याका उपदेश किया और तीक्ष्ण बुद्धिवाले अर्जुनने भी स्नानकर पूर्वाभिमुख हो उसे ग्रहण कर लिया॥ ६३॥

उस समय उदार बुद्धिवाले मुनिवर व्यासजीने अर्जुनको पार्थिव-पूजनके विधानका भी उपदेश किया और उनसे कहा—॥ ६४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुप्रसंहितामें किरातवतारवर्णनप्रसंगमें अर्जुनको व्यासका उपदेशवर्णन नामक संतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥



व्यासजी बोले—हे पार्थ! आप इसी समय शीघ्र ही यहाँसे अत्यन्त शोभासम्पन्न इन्द्रकील पर्वतपर जाइये और वहाँ गंगाके टटपर स्थित होकर भलीभाँति तपस्या कीजिये। यह अदृश्य विद्या सर्वदा आपका हित करती रहेगी—मुनिने उन्हें यह आशीर्वाद दिया। उसके बाद पाण्डवोंसे कहा—हे त्रेष्ठ राजाओ! आपलोग धर्मका आश्रय लेकर यहाँ निवास करें, आपलोगोंको श्रेष्ठ सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ६५-६७॥

नन्दीश्वर बोले—उन पाण्डवोंको यह आशीर्वाद देकर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके मुनीश्वर व्यास क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये॥ ६८॥

अड़तीसवाँ अध्याय

इन्द्रका अर्जुनको वरदान देकर शिवपूजनका उपदेश देना

नन्दीश्वर बोले—[हे सनकुमार!] उस समय शिवस्वरूप मन्त्रके कारण अतुल तेज धारण किये हुए अर्जुन भी अत्यन्त दीपितमान् दिखायी पड़े ले गे॥ १॥

उस समय उन सभी पाण्डवोंने अर्जुनको देखकर यह निश्चय कर लिया कि हमलोग अवश्य विजयी होंगे; क्योंकि अर्जुनका तेज बड़ा हुआ है॥ २॥

[उन लोगोंने अर्जुनसे कहा—हे अर्जुन!] व्यासजीके

कथनसे प्रतीत होता है कि इस कार्यको तुम्हीं सिद्ध कर सकते हो, कोई दूसरा कभी नहीं; अतः जीवनको सफल करो॥ ३॥

अर्जुनसे इस प्रकार कहकर उनके विरहसे व्याकुल हुए समस्त पाण्डवोंने न चाहते हुए भी उन्हें आदरपूर्वक वहाँ भेज दिया॥ ४॥

अर्जुनको भेजते समय दुःखसे भरी हुई पतित्रता

द्वौपदीने नेत्रोंके आँसुओंको रोककर यह शुभ वचन कहा— ॥ ५ ॥

द्वौपदी बोली—हे राजन्! व्यासजीने आपको जैसा उपदेश किया है, वैसा आपको प्रयत्नपूर्वक [कार्य] करना चाहिये। आपका मार्ग मंगलप्रद हो और भगवान् शंकरजी आपका कल्याण करें ॥ ६ ॥

उसके अनन्तर पाँचों (द्वौपदीसहित) पाण्डव अर्जुनको आदरपूर्वक विदा करके अत्यन्त दुखी होते हुए परस्पर मिलकर वहाँ निवास करने लगे ॥ ७ ॥

हे ऋषिसत्तम सनत्कुमार! सुनिये, पाण्डवोंने वहाँ रहते हुए आपसमें कहा कि दुःख उपस्थित होनेपर भी प्रियजनका संयोग बना रहे तो दुःख नहीं जान पड़ता है। किंतु प्रियजनके वियोग रहनेपर दुःख आ पड़े तो वह निरन्तर द्विगुणित होता जाता है, उस समय धैर्यवान्को भी धीरज कैसे रह सकता है ॥ ८-९ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार पाण्डवोंके दुःख प्रकट करनेपर करुणासागर ऋषिवर्य व्यासजी वहाँ आये। तब दुःखसे व्याकुल हुए वे पाण्डव व्यासजीको नमस्कार करके आसन देकर आदरपूर्वक उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर यह वचन कहने लगे— ॥ १०-११ ॥

पाण्डव बोले—हे श्रेष्ठोत्तम! हे प्रभो! सुनिये, हम दुःखसे जल रहे थे, किंतु हे मुने! आज आपका दर्शन प्राप्तकर हमलोग आनन्दित रहे हैं ॥ १२ ॥

हे प्रभो! आप हमलोगोंका दुःख दूर करनेके लिये कुछ कालपर्यन्त यहाँ निवास कीजिये; क्योंकि हे विप्रेष! आपके दर्शनमात्रसे साग दुःख नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

नन्दीश्वर बोले—उन लोगोंके इस प्रकार कहनेपर उन ऋषिवरने उनके सुखके लिये वहाँ निवास किया और वे अनेक प्रकारकी कथाओंसे उस समय उनका कष्ट दूर करने लगे। हे सन्मुने! व्यासजीके द्वारा की जाती हुई वाताकी समय उन्हें प्रणाम करके विनीतात्मा धर्मराजने उनसे यह पूछा— ॥ १४-१५ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! हे महाप्राज्ञ! [आपके वचनोंसे] मेरे दुःखकी शान्ति हो गयी, किंतु हे प्रभो! मैं आपसे जो पूछता हूँ, उसे बताइये ॥ १६ ॥

व्या इस प्रकारका दुःख पहले और किसीको प्राप्त

हुआ है अथवा यह महान् दुःख हमें ही मिला है, अन्य किसीको नहीं? ॥ १७ ॥

व्यासजी बोले—[हे युधिष्ठिर!] पूर्व समयमें निषधदेशके अधिपति महात्मा नलको आपसे भी अधिक दुःख प्राप्त हुआ था ॥ १८ ॥

राजा हरिश्चन्द्रको भी अत्यधिक दुःख प्राप्त हुआ था, जो अनिर्वचनीय और सुननेमात्रसे दूसरोंको भी दुखित करनेवाला है ॥ १९ ॥

हे पाण्डव! वैसा ही दुःख श्रीरामचन्द्रका भी जाना चाहिये, जिसे सुनकर स्त्री-पुरुषोंको अत्यधिक कष्ट होता है। मैं पुनः इसका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ अतः शरीरको दुःखोंका समूह समझकर इस समय तुम्हें शोकका त्याग करना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

जिस किसीने यह शरीर धारण किया है, वह दुःखोंसे व्याप्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। सर्वप्रथम माताके गर्भसे जन्म लेना ही दुःखका कारण होता है। फिर कुमारवस्थामें भी बालकोंकी लीलाके अनुसार महान् दुःख होता है। इसके अनन्तर मनुष्य युवावस्थामें दुःखरूपी कामनाओंका भोग करता है ॥ २२-२३ ॥

[हे युधिष्ठिर!] अनेक प्रकारके कार्यभारोंसे तथा दिनोंके गमनागमनसे पुरुषकी सारी आयु इसी प्रकार नष्ट हो जाती है और मनुष्यको उसका ज्ञान नहीं रहता ॥ २४ ॥

अन्त समयमें जब पुरुषकी मृत्यु होती है, उस समय उसे इससे भी अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। इसके बाद भी अज्ञानी मनुष्य अनेक प्रकारके नरकोंकी पीड़ा प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥

इसलिये यह सब असत्य है, आप सत्यका आचरण कीजिये। जिस प्रकार भी शिवजी सनुष्ट हों, उसी प्रकारका कार्य मनुष्यको करना चाहिये ॥ २६ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उन सभी भाइयोंने अनेक प्रकारकी वार्ताओं तथा मनोरथोंसे समय बिताना प्रारम्भ किया ॥ २७ ॥

कठिन पहाड़ी मार्गोंसे जाते हुए दृढ़ ब्रतवाले अर्जुन भी एक यक्षको प्राप्तकर उसीके साथ अनेक डाकुओंका संहार करते हुए मनमें हर्षित हो उत्तम [इन्द्रकील] पर्वतपर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने गंगाके समीप

एक सुन्दर स्थानको प्राप्त किया, जो स्वार्से भी उत्तम तथा अशोकवनसे युक्त था, वहींपर वे बैठ गये। इसके बाद स्वयं स्नान करके श्रेष्ठ गुरुको नमस्कारकर उन्होंने यथोपदिष्ट वेश धारण किया और इन्द्रियोंको वशमें करके एकाग्रचित्त हो [तपस्याके लिये] स्थित हो गये। उस समय वे अत्यन्त सुन्दर समसूत्रयुक्त पार्थिव शिवलिङ्गका निर्माण करके उसके आगे [आसनस्थ होकर] उत्तम तेजोराशि [शिवजीका] ध्यान करने लगे ॥ २८—३२ ॥

इस प्रकार अर्जुन तीनों समय स्नान करके बारंबार अनेक प्रकारसे शिवजीकी पूजा करते हुए उपासनामें तप्तर हो गये ॥ ३३ ॥

इसके बाद उस समय उनके शिरोभागसे निकले हुए तेजको देखकर इन्द्रके अनुचर भयभीत हो गये और सोचने लगे कि यह इस स्थानपर कब आ गया ? ॥ ३४ ॥

उन्होंने पुनः अपने मनमें विचार किया कि यह समाचार इन्द्रसे निवेदन करना चाहिये। परस्पर ऐसा कहकर वे शीघ्र ही इन्द्रके समीप गये ॥ ३५ ॥

चर बोले—हे देवेश! कोई देवता, ऋषि, सूर्य अथवा अग्निदेव इस वनमें घोर तप कर रहे हैं, हमलोग उन्हें नहीं जानते। उनके तेजसे सन्तप्त होकर हमलोग आपके पास आये हैं। हमने उस चरित्रको आपसे कह दिया, अब जैसा उचित हो, आप वैसा कीजिये ॥ ३६—३७ ॥

नन्दीश्वर बोले—दूरोंके ऐसा कहनेपर इन्द्रने अपने पुत्र [अर्जुन]-का अभिप्राय जानकर पर्वतरक्षकोंको विदाकर स्वयं वहाँ जानेका विचार किया ॥ ३८ ॥

हे विनेद! वे शचीपति इन्द्र ब्रह्मचारी वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर उनकी परीक्षाके लिये वहाँ पहुँचे। तब उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने उनकी पूजा की और आगे खड़े होकर स्तुति करके उनसे पूछा कि इस समय आप कहाँसे आये हैं, [कृपया] यह बताइये? तब उनके द्वारा ग्रीतिपूर्वक इस प्रकार कहे जानेपर अर्जुनके धैर्यके परीक्षणार्थ देवराज इन्द्र प्रतिप्रश्न करने लगे ॥ ३९—४१ ॥

ब्राह्मण बोले—हे तात! तुम इस समय युवावस्थामें तप क्यों कर रहे हो? क्या तुम्हारी यह तपस्या सर्वथा

मुक्तिके लिये है अथवा विजयके लिये है? ॥ ४२ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार पूछे जानेपर अर्जुनने अपना सारा समाचार कह सुनाया। तब उन ब्राह्मणने पुनः यह वचन कहा— ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण बोले—हे बीर! तुम क्षात्रधर्ममें स्थित होकर सुख पानेकी इच्छासे जो तप कर रहे हो, वह उचित नहीं है। हे कुरुत्रेष्ठ! क्षत्रिय तो मुक्तिहेतु तप करता है। हे श्रेष्ठ! इन्द्र सुख देनेवाले [देवता] हैं, वे मुक्ति नहीं दे सकते; इसलिये तुम्हें [इस सकाम तपको छोड़कर] सर्वथा श्रेष्ठ तप करना चाहिये ॥ ४४—४५ ॥

नन्दीश्वर बोले—उनके इस वचनको सुनकर दृढ़त्रत एवं विनयी अर्जुनने ब्रोध किया और उनका निरादर करते हुए कहा— ॥ ४६ ॥

अर्जुन बोले—मैं न तो राज्यके लिये और न तो मुक्तिके लिये तप कर रहा हूँ। तुम ऐसा क्यों बोल रहे हो? मैं व्यासजीकी आज्ञासे इस प्रकारका तप कर रहा हूँ। हे ब्रह्मचारिन! अब यहाँसे [शीघ्र] चले जाओ, मुझे अपने संकल्पसे मत गिराओ। तुझ ब्रह्मचारीका यहाँ क्या प्रयोजन है? ॥ ४७—४८ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहे जानेपर वे [इन्द्रदेव] प्रसन्न हो उठे और [ब्रज आदि] अपने उपस्करणोंसे युक्त अद्भुत तथा मनोहर अपना रूप उन्होंने दिखाया ॥ ४९ ॥



तब इन्द्रके रूपको देखकर अर्जुन लजित हो उठे।

इसके बाद उन्हें आश्वस्त करके इन्हने पुनः यह वचन कहा— ॥५०॥

इन्ह बोले—हे तात! हे धनंजय! हे महामते! तुम्हारा जो भी अभिलिष्ट हो, वह वर मुझसे माँगो। तुम्हरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। तब इन्हके उस वचनको सुनकर अर्जुन बोले—हे तात! हर प्रकारसे शत्रुओंसे पीड़ित मुझे विजय प्रदान करें। ५१-५२॥

शक्त बोले—[हे तात!] दुर्योधन आदि तुम्हरे शत्रु बड़े बलवान् हैं और द्रोण, भीष्म एवं कर्ण—ये सब निश्चय ही [युद्धमें] दुर्जय हैं। ५३॥

साक्षात् रुद्रका अंश द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तो अत्यन्त दुर्जय है। वे सभी (भीष्म, द्रोण आदि) मुझसे भी असाध्य हैं; तो भी अपने हितकी बात सुनो। ५४॥

हे वीर! इस (अश्वत्थामा)-पर विजय प्राप्त करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है; केवल शिव ही समर्थ हैं, इसलिये अब तुम शिव-मन्त्रका जप करो। ५५॥

सभी लोकोंके स्वामी, चराचरपति, स्वराट् और भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले शंकर सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। ब्रह्मा आदि [देवत्रेष्ठ], सबको वर देनेवाले विष्णु, मैं [स्वयं इन्ह], अन्य [देवगण] तथा विजयकी अभिलाषावाले दूसरे लोग—ये सभी भगवान् शिवकी उपासना करते हैं। ५६-५७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातावतारवर्णन-प्रसंगमें अर्जुनका तपवर्णन नामक अङ्गतीसवाँ अव्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उन्नतालीसवाँ अध्याय

मूक नामक दैत्यके वधका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार व्यासजीने जैसा कहा था, उसी प्रकार अर्जुन विधिवत् स्नान, न्यासादि करके उत्तम भक्तिसे शिवका ध्यान करने लगे। १॥

वे एक त्रेष्ठ मुनिके समान एक पैरके तलवेपर स्थित होकर अपनी एकाग्र दृष्टि सूर्यमें लगाकर विधिपूर्वक शिवके मन्त्रका जप खड़े-खड़े करने लगे। २॥

वे मनसे शिवका स्मरण करते हुए तथा शिवजीके सर्वोत्तम पंचाक्षरमन्त्रका जप करते हुए प्रीतिपूर्वक तप

हे भारत! आजसे इस मन्त्रका जप छोड़कर पार्थिव-विधानसे नानाविधि उपचारोंके द्वारा तन्मय होकर भक्तिभावसे शिवजीकी आराधना करो। इस प्रकार [पार्थिवार्चन तथा] ध्यानके द्वारा तुमको अचल सिद्धि इसी समय प्राप्त होगी, इसमें सन्देह न करो। ५८-५९॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर इन्हने अपने सभी सेवकोंको बुलाकर कहा कि तुमलोग सावधान होकर इनकी रक्षा करनेके लिये सदा यहाँ रहो। इसके बाद इन्हने अपने अनुचरोंको अर्जुनकी रक्षा आदिका आदेश देकर वात्सल्यपूर्वक अर्जुनसे पुनः कहा— ॥६०-६१॥

इन्ह बोले—हे परन्तप! हे भद्र! तुम कभी भी प्रमादपूर्वक राज्य मत करना; यह विद्या तुम्हारे कल्याणके लिये होगी। साधकको सदा धैर्य धारण करना चाहिये। रक्षक तो शिवजी हैं ही। वे तुमको सम्पत्तियोंके साथ फल (मोक्ष) भी प्रदान करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६२-६३॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार अर्जुनको वरदान देकर इन्ह शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए अपने भवनको चले गये॥ ६४॥

पराक्रमी अर्जुन भी सुरेश्वरको प्रणामकर संयत्वित होकर शिवजीको उद्देश्य करके उसी प्रकारका तप करने लगे॥ ६५॥

करने लगे॥ ३॥

उनके तपका तेज ऐसा था कि देवता भी आशर्च्यचिकित हो गये, फिर वे शिवजीके समीप गये और सावधान होकर कहने लगे॥ ४॥

देवता बोले—हे सर्वेश! एक मनुष्य आपको प्रसन्न करनेके लिये तप कर रहा है। अतः हे प्रभो! यह मनुष्य जो कुछ चाहता है, उसे आप क्यों नहीं दे देते हैं? ५॥

नन्दीश्वर बोले—तब ऐसा कहकर चिन्ताप्रस्त वे देवगण शिवजीकी अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे। वे उनके चरणोंपर दृष्टि लगाकर वर्हाँ स्थित हो गये ॥ ६ ॥

तब उदारबुद्धिवाले महाप्रभु शिव उनका वचन सुनकर हँस करके प्रसन्नचित्त होकर देवताओंसे यह वचन कहने लगे ॥ ७ ॥

शिवजी बोले—हे देवताओ! आप लोगोंकी बात निःसन्देह सत्य है। अब आपलोग अपने-अपने स्थानको जाइये; मैं आपलोगोंका कार्य सर्वथा करूँगा; इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर देवताओंको पूर्ण विश्वास हो गया और वहाँसे लौटकर वे अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ९ ॥

हे विप्रेन! इसी बीच दुरात्मा तथा मायावी दुर्योधनके द्वारा अर्जुनके प्रति भेजा गया मूक नामक दैत्य शूकरका रूप धारणकर वहाँ आया, जहाँ अर्जुन स्थित थे। वह पर्वतोंके शिखरोंको तोड़ता हुआ, अनेक वृक्षोंको उखाड़ता हुआ तथा विविध प्रकारके शब्द करता हुआ बड़े वेगसे उसी मार्गसे जा रहा था ॥ १०—१२ ॥

उस समय अर्जुन भी मूक नामक दैत्यको देखकर शिवके चरणकमलोंका स्मरणकर [अपने मनमें] विचार करने लगे ॥ १३ ॥

अर्जुन बोले—यह कौन है? कहाँसे आ रहा है? यह तो बड़ा क्रूर कर्म करनेवाला दिखायी दे रहा है! निश्चय ही यह मेरा अनिष्ट करनेके लिये मेरी ओर आ रहा है ॥ १४ ॥

मेरे मनमें तो यह आ रहा है कि यह शत्रु ही है; इसमें सन्देह नहीं है। मैंने इससे पूर्व अनेक दैत्य-दानवोंका संहार किया है। उन्हींका कोई सम्बन्धी अपना वैर साधनेके लिये [मेरी ओर] आ रहा है अथवा यह दुर्योधनका कोई हितकारी मित्र है ॥ १५—१६ ॥

जिसके देखनेसे अपना मन प्रसन्न हो, वह निश्चय ही हितीयी होता है और जिसके देखनेसे मनमें व्याकुलता उत्पन्न हो, वह अवश्य ही शत्रु होता है। सदाचारसे कुलका, शरीरसे भोजनका, वचनके द्वारा शास्त्रज्ञानका तथा नेत्रके द्वारा स्नेहका पता लग जाता है ॥ १७—१८ ॥

आकार, गति, चेष्टा, सम्भाषण एवं नेत्र तथा मुखके विकासे मनुष्यके अन्तःकरणकी बात ज्ञात हो जाती है। उज्ज्वल, सरस, टेढ़ा और लाल—ये चार प्रकारके नेत्र कहे गये हैं; विद्वानोंने उनका पृथक्-पृथक् भाव बताया है ॥ १९—२० ॥

मित्रके मिलनेपर उज्ज्वल, पुत्रको देखनेपर सरस, स्त्रीके मिलनेपर वक्र तथा शत्रुके देखनेपर नेत्र लाल हो जाते हैं। किंतु इसे देखनेपर तो मेरी सारी इन्द्रियाँ कलुषित हो गयी हैं। अतः यह अवश्य ही मेरा शत्रु है, इसका वध कर देना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१—२२ ॥

मेरे गुरुका यह कथन भी है—हे राजन्! तुम दुःख देनेवालेका सर्वथा वध कर देना, इसमें विचार नहीं करना चाहिये। निस्सन्देह इसीलिये तो ये आयुष भी हैं। इस प्रकार विचारकर अर्जुन [धनुषपर] बाण चढ़ाकर खड़े हो गये ॥ २३—२४ ॥

इसी बीच अर्जुनकी रक्षाके लिये एवं उनकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये भक्तवत्सल भगवान् शंकर अपने गणोंके सहित अत्यन्त अद्भुत सुशिक्षित भीलका रूप धारणकर उस दैत्यका विनाश करनेके लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। कच्छ (लांग-काछ) लगाये हुए, लताओंसे अपने केशोंको बाँधे हुए, शरीरपर श्वेत वर्णकी रेखा अंकित किये हुए, धनुष-बाण धारण किये हुए तथा पीठपर बाणोंका तरकस धारण किये हुए वे गणोंसहित वहाँ गये। वे शिवजी भीलराज बने हुए थे ॥ २५—२८ ॥

वे शिवजी भील सेनाके अधिपति होकर कोलाहल करते हुए निकले, उसी समय शूकरके गरजनेकी ध्वनि दर्शाओंमें सुनायी पड़ी ॥ २९ ॥

तब उस वनचारी शूकरके [धोर घर्दर] शब्दसे अर्जुन व्याकुल हो गये, साथ ही जो पर्वत आदि थे, वे सभी उन शब्दोंसे व्याकुल हो उठे ॥ ३० ॥

अहो! यह क्या है? कहाँ ये कल्याणकारी शिवजी ही तो नहीं हैं, जो यहाँ पधारे हैं; क्योंकि मैंने ऐसा पूर्वमें सुना था, श्रीकृष्णने भी मुझसे कहा था, व्यासजीने भी ऐसा ही कहा था और देवगणोंने भी स्मरणकर यही बात कही थी कि शिवजी ही सभी प्रकारका मंगल करनेवाले

तथा सुख देनेवाले कहे गये हैं ॥ ३१-३२ ॥

वे मुक्ति देनेके कारण मुक्तिदाता कहे गये हैं; इसमें सन्देह नहीं है। उनके नामस्मरणमात्रसे निश्चितरूपसे मनुष्योंका कल्याण होता है। सब प्रकारसे इनका भजन करनेवालोंको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता है। यदि कभी होता है, तो उसे कर्मजन्य समझना चाहिये ॥ ३३-३४ ॥

[शिवजीके अनुग्रहसे तो] प्रबल होनहार भी अवश्य कम हो जाता है—ऐसा जानना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है अथवा विशेषरूपसे प्रारब्धका दोष समझना चाहिये और शिवजी स्वयं अपनी इच्छासे कभी बहुत अथवा कम उस भोगको भुगताकर उस दुर्भाग्यका निवारण करते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३५-३६ ॥

वे विषयको अमृत एवं अमृतको विष बना देते हैं। वे समर्थ हैं, जैसा चाहते हैं, वैसा करते हैं, भला! उन सर्वसमर्थकों कौन मना कर सकता है? अन्य पुरातन भक्तोंके द्वारा इस प्रकार विचार किये जानेके कारण भावी भक्तोंको भी सदा शिवजीमें अपना मन स्थिर रखना चाहिये ॥ ३७-३८ ॥

लक्ष्मी रहे या चली जाय, मृत्यु भले ही सन्निकट और समक्ष खड़ी हो, लोग निन्दा करें अथवा स्तुति करें, [दुःख बना रहे या] दुःखनाश हो जाय [यह इष्ट-अनिष्टात्मक हृष्ट तो] पुण्य तथा पापके कारण उत्पन्न होता है, [इसमें शिव निमित्त नहीं है] वे तो सर्वदा अपने भक्तोंको सुख ही देते हैं। कभी-कभी वे अपने भक्तोंकी परीक्षा करनेके लिये उनको दुःख भी देते हैं; किंतु दयालु होनेके कारण वे अन्तमें सुख देनेवाले ही होते हैं। जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेपर शुद्ध होता है, उसी प्रकार भक्त भी तपानेसे निखरते हैं ॥ ३९-४१ ॥

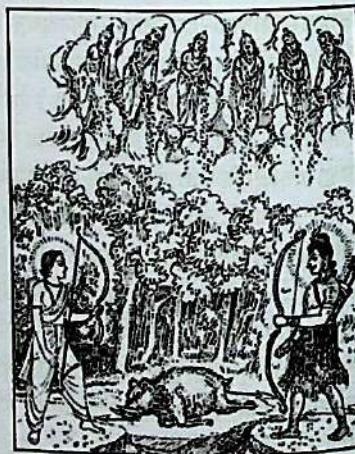
पूर्वकालमें मैंने मनुष्योंके मुखसे ऐसा ही सुना है, इसलिये मैं उनके भजनसे ही उत्तम सुख प्राप्त करूँगा, जबतक अर्जुन इस प्रकारका विचार कर ही रहे थे, तबतक शरसन्धानका लक्ष्य वह शूकर वहाँ आ पहुँचा। उधर, [भीलवेषधारी] शिवजी भी शूकरका पीछा करते हुए आ पहुँचे। उस समय उन दोनोंके बीचमें वह शूकर अद्भुत

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तुलीय शत्रुघ्नप्रसंहिताके किरातवतारवर्णनमें मूकदैत्यवध नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥

शिखरके समान दिखायी पड़ रहा था ॥ ४२-४४ ॥

अर्जुनने शिवका माहात्म्य कहा था, इसलिये भक्तवत्सल शिव उनकी रक्षा करनेके लिये वहाँ पहुँच गये ॥ ४५ ॥

इसी समय उन दोनोंने बाण चलाया; शिवजीका बाण शूकरकी पूँछमें तथा अर्जुनका बाण मुखमें लगा। शिवजीका बाण पूँछमें घुसकर मुखसे निकलकर शीत्र ही पृथ्वीमें बिलीन गया और अर्जुनका बाण [मुखमें प्रविष्ट होकर] पूँछसे निकलकर पाश्वभागमें गिर पड़ा। वह शूकररूप दैत्य उसी क्षण मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४६-४८ ॥



देवता परम हर्षित हो गये और पुष्पवृष्टि करते लगे। उन्होंने बार-बार प्रणामकर जय-जयकार करते हुए शिवजीकी स्तुति की ॥ ४९ ॥

उस दैत्यके क्लूर रूपको देखकर शिवजी प्रसन्नचित हो गये और अर्जुनको भी सुख प्राप्त हुआ। तब अर्जुनने विशेषरूपसे प्रसन्न मनसे कहा—अरे, यह महादेव अत्यन्त अद्भुत रूप धारणकर मेरे वधके लिये आया था, किंतु शिवजीने मेरी रक्षा की। शिवजीने ही आज मुझे बुद्धि प्रदान की; इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५०-५२ ॥

ऐसा विचारकर अर्जुनने 'शिव-शिव' कहकर उनका यशोगान किया और उन्हें प्रणाम किया तथा बार-बार उनकी स्तुति की ॥ ५३ ॥

चालीसवाँ अध्याय

भीलस्वरूप गणेश्वर एवं तपस्वी अर्जुनका संवाद

नन्दिकेश्वर बोले— हे सन्तकुमार! हे सर्वज्ञ! अब परमात्मा शिवकी भक्तवत्सलतासे युक्त तथा उनकी दृढ़ भक्तिसे भरी हुई लीला सुनिये ॥ १ ॥

उसके बाद उन शिवजीने अपना बाण लानेके लिये शीघ्र ही अपने सेवकको वहाँ भेजा और उसी समय अर्जुन भी अपना बाण लेनेके लिये वहाँ पहुँचे। एक ही समय शिवका गण तथा अर्जुन बाण लेने हेतु वहाँ उपस्थित हुए, तब अर्जुनने उसे धमकाकर अपना बाण ले लिया ॥ २-३ ॥

तब शिवजीका गण उनसे कहने लगा—हे मुनिसत्तम! यह बाण मेरा है, आप इसे क्यों ले रहे हैं, आप इसे छोड़ दीजिये। हे मुनिश्रेष्ठ! भीलराजके उस गणद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन अर्जुनने शिवजीका स्मरण करके उससे कहा— ॥ ४-५ ॥

अर्जुन बोले— हे बनेचर! बिना जाने तुम ऐसा क्यों बोल रहे हो? तुम मूर्ख हो; यह बाण अभी मैंने चलाया था, फिर यह तुम्हारा किस प्रकार हो सकता है? इस बाणके पिछ्छे रेखाओंसे चित्रित हैं तथा इसमें मेरा नाम अंकित है। यह तुम्हारा कैसे हो गया? निश्चय ही तुम्हारा [यह हठी] स्वभाव कठिनाईसे छूटनेवाला है ॥ ६-७ ॥

नन्दीश्वर बोले— उनकी यह बात सुनकर गणेश्वर उस भीलने महर्षिरूपधारी उन अर्जुनसे यह बचन कहा—अरे तपस्वी! सुनो, तुम तप नहीं कर रहे हो, तुम केवल बेष्टे तपस्वी हो, यथार्थरूपमें [तपोनिरत व्यक्ति] छल नहीं करते ॥ ८-९ ॥

तपस्वी व्यक्ति असत्य भाषण कैसे कर सकता है? तुम मुझ सेनापतिको यहाँ अकेला मत समझो ॥ १० ॥

मेरे स्वामी भी बनके बहुत-से भीलोंके साथ यहाँ विद्यमान हैं। वे विग्रह तथा अनुग्रह करनेमें सब प्रकारसे समर्थ भी हैं। इस समय जिस बाणको तुमने लिया है, वह उनका ही है, तुम इस बातको अच्छी तरह जान लो कि यह बाण तुम्हारे पास कभी नहीं रहेगा ॥ ११-१२ ॥ हे तापस! [तुम असत्य बोलकर] अपनी तपस्याका

फल क्यों नष्ट कर रहे हो, क्योंकि चोरीसे, छलसे, किसीको व्यथित करनेसे, अहंकारसे तथा सत्पको छोड़नेसे व्यक्ति अपनी तपस्यासे रहित हो जाता है। यह बात मैंने यथार्थ रूपसे सुनी है; तब तुम्हें इस तपस्याका फल कैसे मिलेगा? ॥ १३-१४ ॥

इसलिये यदि तुम बाणका त्याग नहीं करोगे, तो कृतज्ञ कहे जाओगे; क्योंकि मेरे स्वामीने निश्चितरूपसे तुम्हारी ही रक्षाके लिये यह बाण [शूकरपर] चलाया था। उन्होंने तुम्हारे ही शत्रुको मारा है और तुमने उनके बाणको रख लिया; अतः तुम अति कृतज्ञ हो, तुम्हारी यह तपस्या अशुभ करनेवाली है ॥ १५-१६ ॥

जब तुम [तपस्यामें निरत हो] सत्यभाषण नहीं कर रहे हो, तब तुम इस तपसे सिद्धिकी अपेक्षा कैसे रखते हो? यदि तुम्हें बाणकी आवश्यकता हो, तो मेरे स्वामीसे माँग लो ॥ १७ ॥

वे ऐसे बहुत-से बाण देनेमें समर्थ हैं। वे हमारे राजा हैं, फिर तुम उनसे क्यों नहीं माँग लेते हो? तुम्हें तो उनका उपकार मानना चाहिये, उलटे अपकार कर रहे हो, इस समय तुम्हारा ऐसा व्यवहार उचित प्रतीत नहीं होता, तुम इस चपलताका त्याग करो ॥ १८-१९ ॥

नन्दीश्वर बोले— तब उसकी यह बात सुनकर पृथगुप्त अर्जुन क्रोध कक्षे पुनः शिवजीका स्मरण करते हुए मर्यादित वाक्य कहने लगे— ॥ २० ॥

अर्जुन बोले— हे भील! मैं जो कहता हूँ, तुम उसे सुनो। हे बनेचर! जैसी तुम्हारी जाति है और जैसे तुम हो, मैं उसे [अच्छी तरह] जानता हूँ ॥ २१ ॥

मैं राजा हूँ और तुम चौर हो। दोनोंका युद्ध किस प्रकार उचित होगा? मैं बलवानोंसे युद्ध करता हूँ, अधमोंसे कभी नहीं। इसलिये तुम्हारा स्वामी भी तुम्हारे समान ही होगा। देनेवाले तो हम कहे गये हैं, तुम बनेचर तो चौर हो। मैं भीलराजसे किस प्रकार अयुक्त याचना कर सकता हूँ; हे बनेचर! तुम्हीं मुझसे बाण क्यों नहीं माँग लेते हो? ॥ २२-२४ ॥

मैं वैसे बहुत-से बाण तुम्हें दे सकता हूँ, मेरे पास बहुत-से बाण हैं। राजा होकर किससे याचना करे अथवा माँगनेपर न दे, तो कैसा राजा ? || २५ ||

हे वेनेचर! मैं क्या कहूँ? मैं बहुत-से ऐसे बाण दे सकता हूँ; यदि तुम्हारे स्वामीको मेरे बाणोंकी अपेक्षा है तो वह आकर मुझसे क्यों नहीं माँगता ? || २६ ||

तुम्हारा स्वामी यहाँ आये, वहाँसे क्यों बकवास कर रहा है? यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करे और मुझे युद्धमें पराजित करके तुम्हारा सेनापति भीलराज इस बाणको लेकर सुखसे अपने घर चला जाय, वह देर क्यों कर रहा है ? || २७-२८ ||

नन्दीश्वर बोले—महेश्वरकी कृपासे उत्तम बल प्राप्त किये हुए अर्जुनकी इस प्रकारकी बात सुनकर उस भीलने कहा— || २९ ||

भील बोला—तुम ऋषि नहीं हो, मूर्ख हो, तुम अपनी मृत्यु क्यों चाह रहे हो, बाणको दे दो और सुखपूर्वक रहो, अन्यथा कष्ट प्राप्त करोगे || ३० ||

नन्दीश्वर बोले—शिवकी त्रेष्ठ शक्तिसे शोभित होनेवाले भीलकी बात सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने शिवजीका स्मरण करते हुए उस भीलसे कहा— || ३१ ||

अर्जुन बोले—हे वेनेचर! हे भील! मेरी बातको भलीभांति सुनो; जब तुम्हारा स्वामी यहाँ आयेगा, तब मैं उसको इसका फल दिखाऊँगा || ३२ ||

तुम्हारे साथ युद्ध करना मुझे शोभा नहीं देता, अतः तुम्हारे स्वामीके साथ युद्ध करूँगा; क्योंकि सिंह और गीदड़का युद्ध उपहासास्पद होता है || ३३ ||

हे भील! तुमने मेरी बात सुन ली, अब [आगे] मेरा महावल भी देखोगे। अब तुम अपने स्वामीके पास जाओ और जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो || ३४ ||

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह भील वहाँ गया, जहाँ शिवावतार भीलराज स्थित थे। तदुपरान्त उसने अर्जुनका साय वचन भीलवरुणी परमात्मासे विस्तारपूर्वक निवेदन किया || ३५-३६ ||

किरातेश्वर शिव उसका वचन सुनकर अत्यन्त

// इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुप्रसांहिताके किरातवेषधारी महादेव सेनासहित अर्जुनके पास आये || ४८-४९ ||
गमक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण दुआ || ४० ||

हर्षित हुए, फिर भीलरूपधारी सदाशिव अपनी सेनाके साथ [जहाँ अर्जुन थे,] वहाँ आये || ३७ ||

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुन भी किरात सेनाको देखकर धनुष-बाण लेकर सामने आ गये || ३८ ||

इसके बाद किरातेश्वरने पुनः भरतवंशीय महात्मा अर्जुनके पास दूत भेजा और उसके मुखसे अपना सन्देश ठन्हें कहलवाया || ३९ ||

किरात बोला—हे दूत! तुम जाकर अर्जुनसे कहो, हे तपस्विन्! तुम मेरी इस विशाल सेनाको देखो, मेरा बाण मुझे लौटा दो और अब चले जाओ। स्वल्प कार्यके लिये इस समय क्यों मरना चाहते हो ? || ४० ||

तुम्हारे भाई दुखी होंगे, इससे भी अधिक तुम्हारी स्त्री दुखी होगी। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे हाथसे आज पृथ्वी भी चली जायगी || ४१ ||

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनकी रक्षाके लिये और उनकी दृढ़ताकी परीक्षाके लिये किरातरूपधारी परमेश्वर शिवने इस प्रकार कहा। उसके ऐसा कहनेपर शंकरके उस दूतने अर्जुनके पास जाकर सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक निवेदन किया || ४२-४३ ||

उसकी बात सुनकर अर्जुनने पुनः आये हुए उस दूतसे कहा—हे दूत! तुम अपने स्वामीसे जाकर कहो कि इसका परिणाम विपरीत होगा। यदि मैं तुम्हें अपना बाण दे दूँगा, तो मैं कुलकलंकी हो जाऊँगा; इसमें सन्देह नहीं है। भले ही हमारे भाई दुखी हों, भले ही हमारी विद्या नष्ट हो जाय, किंतु भीलराज मुझसे युद्ध करनेके लिये अवश्य यहाँ आयें। सिंह गीदड़से डर जाय, यह बात मैंने कभी नहीं सुनी, इसी प्रकार किसी वेनेचरसे राजा डरे, ऐसा नहीं हो सकता || ४४-४७ ||

नन्दीश्वर बोले—पाण्डुपुत्र अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर भीलने अपने स्वामीके पास जाकर अर्जुनद्वारा कहे गये सारे वृत्तान्तको विशेष रूपसे वर्णित किया। तब इस वृत्तान्तको सुनकर किरातवेषधारी महादेव सेनासहित अर्जुनके पास आये || ४८-४९ ||

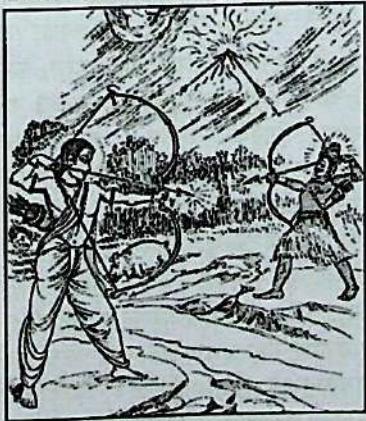
इकतालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके किरातेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले— सेनाके साथ किरातेश्वरको युद्धके लिये आया देखकर शिवजीका ध्यान करते हुए अर्जुनने वहाँ जाकर उसके साथ भर्यकर युद्ध किया ॥ १ ॥

उस भीलराजने अपने अनेक गणों तथा तीश्वर शस्त्रोंके द्वारा अर्जुनको अत्यधिक पीड़ित किया । तब उनसे पीड़ित हुए अर्जुन अपने इष्टदेव शिवका स्मरण करने लगे । अर्जुनने शत्रुओंके सारे बाण काट डाले । जब गणोंने युद्ध करना छोड़ दिया, तो अर्जुनने [किरातवेषधारी] शिवजीको ललकारा ॥ २-३ ॥

अर्जुनसे पीड़ित गण दसों दिशाओंमें भागने लगे । यद्यपि किरातपतिने उन गणस्वामियोंको ऐसा करनेसे रोका, किंतु वे अपने स्वामीके बुलानेपर भी नहीं लौटे । तब महाबली एवं पराक्रमी अर्जुन और शिवजीने नाना



प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे परस्पर युद्ध किया ॥ ४-५ ॥

यद्यपि शिवजी दया करते हुए अर्जुनके पास गये, किंतु अर्जुनने निर्दयतापूर्वक शिवपर प्रहार किया ॥ ६ ॥

तदनन्तर शिवजीने अर्जुनके समस्त शस्त्र-अस्त्रोंको काट डाला और कवचोंको भी छिन-भिन्न कर दिया; केवल उनका शरीर शेष रह गया ॥ ७ ॥

तब धैर्यशाली उन अर्जुनने भयसे व्यथित होते हुए भी शिवजीका स्मरणकर वाहिनीपतिके साथ मल्लयुद्ध ।

करना प्रारम्भ किया । उन दोनोंके संग्रामको देखकर सागरसंहित पृथ्वी काँप रही थी और देवता दुखी हो रहे थे कि अब और क्या होनेवाला है ? ॥ ८-९ ॥

इसी बीचमें शिवजी ऊपर जाकर आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे और अर्जुन भी उसी प्रकार आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे । इस प्रकार शिव एवं अर्जुन दोनों ही उड़-उड़कर आकाशमें जब युद्ध कर रहे थे, तब उस अद्भुत युद्धको देखकर देवगण विस्मित हो रहे थे ॥ १०-११ ॥

उसके पश्चात् अर्जुनने उहें अपनेसे अधिक बलवान् जानकर शिवजीके चरणोंका स्मरणकर तथा उनके ध्यानसे विशेष बल प्राप्तकर भीलके दोनों चरणोंको पकड़ लिया । ज्यों ही चरण पकड़कर अर्जुन उहें आकाशमें उमाने लगे, तभी लीला करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् शिव हँस पड़े ॥ १२-१३ ॥

हे मुने ! भक्तके अधीन रहनेवाले शिवजीने अर्जुनको अपना दास्य प्रदान करनेके लिये जो यह चरित्र किया, वह अन्यथा कैसे हो सकता है । इसके बाद भक्तवश्यतके कारण शिवजीने हँसकर अपना अद्भुत सुन्दर रूप अर्जुनके सामने प्रकट किया ॥ १४-१५ ॥

हे पुरुषोत्तम ! वेद-शास्त्रोंमें तथा पुराणोंमें उनके जिस रूपका वर्णन है और व्यासजीने अर्जुनको ध्यानके लिये जिस रूपका उपदेश दिया था, जिसके दर्शनमात्रसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । [उसी प्रकारका रूप धारणकर शिवजी प्रकट हुए] अर्जुन जिस रूपका ध्यान करते थे, उसी सुन्दर रूपको अपने सामने प्रत्यक्ष प्रकट देखकर वे अत्यन्त विस्मित तथा लज्जित हो उठे और मनमें कहने लगे—अहो ! यह तो परम कल्याणकारी वे शिवजी ही हैं, जिन्हें मैंने अपना स्वामी स्वीकार किया है । ये तो स्वयं त्रिलोकीके साक्षात् ईश्वर हैं; यह मैंने आज क्या कर डाला ॥ १६-१८ ॥

निश्चय ही भगवान् शिवकी माया बड़ी बलवती है, जो बड़े-बड़े मायाविदोंको मोह लेती है । इन्होंने

अपना रूप छिपाकर मेरे साथ इस प्रकारका छल क्यों किया; निश्चय ही मैं इनके द्वारा छला गया हूँ ॥ १९ ॥

इस प्रकार अपने मनमें विचारकर अर्जुनने हाथ जोड़कर सिर ढाकाकर और खिल मनसे भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा— ॥ २० ॥

अर्जुन बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे सर्वेश! मैं आपका अपराधी हूँ, मुझे क्षमा कीजिये। हे प्रभो! इस समय आपने यह बया किया, जो अपना रूप छिपाकर मुझसे छल किया। हे प्रभो! आप-जैसे स्वामीसे युद्ध करते हुए मुझे लज्जा नहीं आयी; मुझको धिक्कार है! ॥ २१-२२ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनकुमार!] इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुन पश्चात्ताप करने लगे और तत्काल महाप्रभु शिवजीके चरणोंमें शीघ्र गिर पड़े। तदनन्तर भक्तवत्सल महेश्वरने प्रसन्न होकर अर्जुनको अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया और उनसे कहा— ॥ २३-२४ ॥

शिवजी बोले—हे पार्थ! तुम खेद मत करो, तुम मेरे प्रिय भक्त हो; मैंने यह सारी लीला तुम्हारी परीक्षाके लिये की थी, तुम शोकका परित्याग कर दो ॥ २५ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर प्रभु सदाशिवने स्वयं अपने हाथोंसे अर्जुनको उठाया और स्वामी [शिवजी]—के जैसे गुणोंवाले गांगोद्वारा उन [अर्जुन]—की लज्जा दूर करयी। उसके अनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शिव वीरोंमें माननीय पाण्डुपुत्र अर्जुनको प्रीतिसे पूर्णतः हर्षित करते हुए कहने लगे— ॥ २६-२७ ॥

शिवजी बोले—हे पाण्डवश्रेष्ठ! हे पृथापुत्र अर्जुन! मैं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। मैंने तुम्हारे द्वारा आज किये गये प्रहरों एवं सनाड़िनोंको अपनी पूजा मान ली है। आज यह सब मैंने अपनी इच्छासे किया है, इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, मुझे तुम्हारे लिये इस समय कुछ भी अदेय नहीं है, तुम जो चाहते हो, उसे माँग लो। मैंने शनुवारोंमें तुम्हारा यश तथा राज्य प्रतिष्ठित करनेके लिये [ही यह] कल्याणकर [कृत्य] किया है। तुम इस घटनाके लिये दुःख न मानो और अपनी सारी विकलताका त्याग करो ॥ २८-३० ॥

नन्दीश्वर बोले—प्रभु शंकरजीके द्वारा इस प्रकार

कहे जानेपर अर्जुन सावधान होकर भक्तिपूर्वक शिवजीसे कहने लगे— ॥ ३१ ॥

अर्जुन बोले—हे प्रभो! आप भक्तिप्रिय हैं, आपकी इच्छाका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ। हे सदाशिव! आप कृपालु हैं [हर प्रकारसे भक्तोंपर दा करते हैं] ॥ ३२ ॥

[नन्दीश्वर बोले—] इस प्रकार कहकर वे पाण्डुपुत्र अर्जुन महाप्रभु सदाशिवकी वेदसम्पत तथा सद्भक्तियुक्त स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

अर्जुन बोले—हे देवाधिदेव! आपको नमस्कार है। कैलासवासी आपको नमस्कार है, सदाशिव! आपको नमस्कार है, पाँच मुखवाले आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥

जटा-जूटधारी आपको नमस्कार है, त्रिनेत्र आपको नमस्कार है, प्रसन्न स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। सहस्रमुख आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

हे नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। सद्योजातल्प आपके लिये नमस्कार है। हे वृषभध्वज! आपको नमस्कार है, वामभागमें पार्वतीको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। दस भुजावाले आपको नमस्कार है, परमात्मन्! आपको नमस्कार है, हाथमें डमरु तथा कपाल लेनेवाले आपको नमस्कार है, मुण्डमालाधारी आपको नमस्कार है ॥ ३६-३७ ॥

शुद्ध स्फटिक तथा शुद्ध कर्पूरके समान उज्ज्वल गौर-वर्णवाले आपको नमस्कार है। पिनाक नामक धनुष एवं श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। व्याघ-चर्मका उत्तरीय तथा गजचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सर्पसे आवेष्टित अंगोंवाले तथा सिरपंगाको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ३८-३९ ॥

सुन्दर पैरवाले आपको नमस्कार है। अरुणाम चरणोंवाले आपको नमस्कार है। नन्दी आदि प्रमुख गणोंसे सेवित आपको नमस्कार है। गणेशरूप आपको नमस्कार है। कार्तिकेयके अनुगामी आपको नमस्कार है। भक्तोंको भक्ति देनेवाले तथा [मुमुक्षुओंको] मुक्ति देनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ४०-४१ ॥

गुणरहित आपको नमस्कार है, सगुणरूपधारी आपको नमस्कार है। अरुण, सरूप, सकल एवं अक्ष

आपको नमस्कार है। किरातरूप धारणकर मुझपर अनुग्रह करनेवाले, वीरोंसे प्रीतिपूर्वक युद्ध करनेवाले एवं [नटकी भौति] अनेक प्रकारकी लीला दिखानेवाले आपको नमस्कार है॥ ४२-४३॥

इस त्रिलोकीमें जो भी रूप दिखायी देता है, वह आपका ही तेज कहा गया है। आप ज्ञानस्वरूप हैं और शरीरभेदसे रमण करते हैं। हे प्रभो! जिस प्रकार संसारमें पृथ्वीके रजकण, आकाशके तार तथा वृष्टिको बूँदें असंख्य हैं, उसी प्रकार आपके गुण भी असंख्य हैं॥ ४४-४५॥

हे नाथ! आपके गुणोंको गणना करनेमें तो वेद भी असमर्थ हैं, मैं तो मन्दबुद्धि ही हूँ। आपके गुणोंका वर्णन कैसे करूँ? हे महेश्वर! आप जो हैं, सो हैं, आपको नमस्कार है। हे महेश्वान! मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हैं, अतः मुझपर कृपा कीजिये॥ ४६-४७॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर परम प्रसन्न हुए भगवान् सदाशिवने हँसकर अर्जुनसे फिर कहा—॥ ४८॥

शिवजी बोले—हे पुत्र! बारंबार कहनेसे क्या प्रयोजन, मेरी बात सुनो। तुम शीघ्र ही मुझसे वर माँगो, मैं तुम्हें वह सब कुछ देंगा॥ ४९॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर अर्जुनने सदाशिवको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सिर इका करके प्रेमपूर्वक गदगद चाणीसे कहा—॥ ५०॥

अर्जुन बोले—हे प्रभो! आप तो सबके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं, अतः आपसे क्या कहूँ। आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी मैं आपसे जो प्रार्थना करता हूँ, उसे सुनिये। आपके दर्शनसे शत्रुओंसे उत्पन्न होनेवाला जो मेरा संकट था, वह दूर हो गया। अब मैं जिस प्रकार इस लोकमें सर्वत्रैषि सिद्धि प्राप्त करूँ, वैसा उपाय कीजिये॥ ५१-५२॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर विनम्र हो हाथ जोड़कर अर्जुन नमस्कार करके भक्तवत्सल भगवान् शिवके सन्निकट स्थित हो गये॥ ५३॥

स्वामी शिवजी भी पाण्डुपुत्र अर्जुनको इस प्रकार अपना परमभक्त जानकर बहुत सन्नुष्ट हो गये॥ ५४॥ उन्होंने प्रसन्न होकर सभीके लिये सर्वदा दुर्जेय

अपना पाशुपत अस्त्र अर्जुनको प्रदान किया और यह वचन कहा—॥ ५५॥



शिवजी बोले—मैंने अपना यह महान् पाशुपत-अस्त्र तुम्हें प्रदान किया। [हे अर्जुन!] तुम इससे दुर्जेय हो जाओगे, तुम इस अस्त्रकी सहायतासे शत्रुओंपर विजय प्राप्त करो। मैं स्वयं श्रीकृष्णसे कहूँगा कि वे तुम्हारी सहायता करें। वे मेरे भक्त तथा मेरी आत्मा हैं और कार्य करनेमें सर्वथा समर्थ हैं॥ ५६-५७॥

हे भारत! अब तुम मेरे प्रभावसे निष्कण्ठक राज्य करो और अपने भ्राता [युधिष्ठिर]-से सर्वदा नाना प्रकारका धर्माचरण करते रहो॥ ५८॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन शिवने अर्जुनके सिरपर अपना हाथ रखा और उनसे पूजित होकर वे तत्काल अन्तर्धान हो गये और प्रसन्न मनवाले अर्जुन भी प्रभुसे श्रेष्ठ पाशुपतास्त्र प्राप्तकर भक्तिपूर्वक गुरुवर शिवजीका स्मरण करते हुए अपने आश्रमको छले गये॥ ५९-६०॥

जिस प्रकार शरीरमें पुनः प्राण आ जाता है, उसी प्रकार अर्जुनको आया देख [युधिष्ठिर आदि] सभी भाई प्रसन्न हो गये और पतिव्रता द्रौपदीको भी अर्जुनके दर्शनसे सुखकी प्राप्ति हुई॥ ६१॥

सभी पाण्डव परमात्मा शिवजीको प्रसन्न जानकर आनन्दित हो गये तथा अर्जुनसे सारा समाचार सुनकर



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server

[भी उस वृत्तान्त-श्रवणसे] तप्त नहीं हुए ॥ ६२ ॥

उस समय उन महात्मा पाण्डवोंके आश्रममें उनका मंगल प्रदर्शित करनेके लिये चन्द्रनयुक्त फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ६३ ॥

उन लोगोंने भगवान् शंकरको धन्य-धन्य कहते हुए आनन्दके साथ नमस्कार किया और अपने बनवासकी अवधिको समाप्त जानकर यह समझ लिया कि अब अवश्य ही हमलोगोंकी विजय होगी ॥ ६४ ॥

इसी समय अर्जुनको आश्रमपर आया हुआ जानकर

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातेश्वरावतारवर्णनं नामक इकतालीसवाँ अथवा यूर्ण हुआ ॥ ४१ ॥

श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये आये और सारा वृत्तान्त जानकर हर्षित हुए [और कहने लगे—] ॥ ६५ ॥

इसीलिये तो मैंने कहा था कि शंकर सभी दुःखोंको नष्ट करनेवाले हैं। मैं उनकी सेवा नित्य करता हूँ, आपलोग भी नित्य उनकी सेवा करें। [हे सनकुमार!] इस प्रकार मैंने किरातेश्वर नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया, उसको सुनकर अथवा सुनाकर भी मनुष्य अपने समस्त मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है ॥ ६६-६७ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके द्वादश ज्योतिर्लिंगरूप अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वरजी बोले—[हे सनकुमार!] हे मुने! अब अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले परमात्मा शिवजीके ज्योतिर्लिंगरूप द्वादशसंख्यक अवतारोंको सुनिये ॥ १ ॥

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्ज्यविनीमें महाकाल, उम्मेकार्में अमरेश्वर, हिमालयपर केदरेश्वर, डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वनाथ, गौतमीटपर त्र्यम्बकेश्वर, चित्ताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकाबनमें नागेश्वर, सेतुबन्धमें रामेश्वर एवं शिवालयमें घुश्मेश्वर*—[ये बाह्य शिवजीके ज्योतिर्लिंगरूपरूप अवतार हैं] ॥ २-४ ॥

हे मुने! ये परमात्मा शिवके बारह ज्योतिर्लिंगावतार दर्शन तथा स्पर्शसे पुरुषोंका कल्याण करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

इन द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें प्रथम सोमनाथ नामक ज्योतिर्लिंग चन्द्रमाके दुःखका नाश करनेवाला है, उसके पूजनसे क्षय और कुष्ठ आदि रोगोंका विनाश होता है। यह सोमेश नामक शिवावतार सुन्दर सौराष्ट्रदेशमें लिंगरूपसे स्थित है, पूर्वकालमें चन्द्रमाने इसकी पूजा की थी ॥ ६-७ ॥

वहाँपर चन्द्रकुण्ड है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। बुद्धिमान् पुरुष वहाँ स्नान करनेमात्रसे सभी प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ८ ॥

शिवजीके परमात्मस्वरूप महालिंग सोमेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

हे तात! शिवका मल्लिकार्जुन नामक दूसरा अवतार श्रीशैलपर हुआ था, जो भक्तोंको मनोवांछित फल प्रदान करता है। हे मुने! वे भगवान् शिव कैलासपर्वतसे पुर [कार्तिकेय]-को देखेनेके लिये अत्यन्त प्रीतिपूर्वक श्रीशैलपर गये और वहाँ लिंगरूपसे [भक्तोंके द्वारा] संस्नृत हुए ॥ १०-११ ॥

हे मुने! उस द्वितीय ज्योतिर्लिंगकी पूजा करनेसे महान् सुखकी प्राप्ति होती है और अन्त समयमें वह निःसन्देह मुक्त प्रदान करता है ॥ १२ ॥

हे तात! शिवजीका तीसरा महाकाल नामक अवतार उज्ज्यविनीमें अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये हुआ था। पूर्वकालमें रत्नमाला [नामक स्थान]-पर निवास

सोराष्ट्रे सोमनाथश्च ग्रीष्मेते वर्षितकार्जुनः । उज्ज्यविनीं महाकाल ओङ्कारे चामरेश्वरः ॥
केदरो हिन्दूरे इक्ष्वाक्यांश्च च विश्वेश्वरश्च विश्वेश्वरश्च विश्वेश्वरश्च विश्वेश्वरश्च ॥

चैत्रायर्दिव्याभूमीं नन्देशो दर्शकवने । नन्देशो दर्शकवने । नन्देशो च रमेशो युग्मेशश्च विश्वावते ॥ (श्रीशिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता ४२ ॥ ८-९ ॥)